ांकरीय लघुग्रन्थ-पञ्चक

श्री पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ

ग्रन्थ-सूची

मुद्रक—सुरेन्द्र कुमार कपूर, रामलाल कपूर
बहालगढ़ (सोनोपत-हरयाण

मूल्य
५—००

श्री पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ

कृत

लघुग्रन्थ-पञ्चक

प्रकाशकीय

आर्यसमाज के प्रारम्भिक विद्वानों में स्व० श्री पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ का विशेष स्थान है। आप के वैदिक इतिहासार्थ-निर्णय, जाति-निर्णय, श्राद्ध-निर्णय, त्रिदेव-निर्णय, ओङ्कार-निर्णय तथा छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों के भाष्य आपके उत्कट पाण्डित्य अप्रतिम ऊहा के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ये ग्रन्थ किसी समय विद्वानों, उपदेशकों, छात्रों एवं स्वाध्यायशील आर्यजनों के कण्ठभूषण रहे हैं। अब न इन ग्रन्थों के पाठक रहे और न ये ग्रन्थ उपलब्ध ही होते हैं।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने ऋग्वेद के आठवें मण्डल से आगे का भाष्य भी किया था। आठवें मण्डल के कुछ सूक्त दो भागों में छपे थे। शेष लिखित भाष्य कहां तक था और कहां गया, यह किसी को ज्ञात नहीं। आपकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बृहत्काय कृति त्रैतावाद-निर्णय है। दैवयोग से यह ग्रन्थ पूरा नहीं हो सका। जितना भाग लिखित है वह भी फुल्स्केप आकार के लगभग ८०० पृष्ठों में लिखित पड़ा है। स्वाध्यायशील पाठकों की अति स्वल्पसंख्या के कारण बृहत्काय ग्रन्थ के न बिकने के भय से अभी तक अमुद्रित पड़ा है।

इन बड़े ग्रन्थों के साथ ही श्रद्धेय पण्डित जी ने वैदिक-रहस्य ग्रन्थमाला के अन्तर्गत वेद-विषयक कुछ छोटे छोटे ग्रन्थ (ट्रैक्ट) भी लिखे थे। ये विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए थे। ये लघु-ग्रन्थ लगभग ४० वर्ष से अप्राप्य हैं। हमारे सग्रह में उनके निम्न लघु ग्रन्थ हैं—

	वैदिक-रहस्य प्रथम भाग
१—चतुर्दश-भुवन	" " द्वितीय भाग
२—वसिष्ठ-नन्दिनी	" " तृतीय भाग
३—वैदिक-विज्ञान	" " चतुर्थ भाग
४—वैज्ञानिक-सिद्धान्त	
५—ईश्वरीय ग्रन्थ कौन ?	

हम वेदवाणी के इस विशेषाङ्क में इन पांचों लघुग्रन्थों को छाप रहे हैं। इस प्रयत्न से जहां इन पुराने अलभ्य ग्रन्थों की रक्षा होगी, वहां स्वाध्यायशील उन व्यक्तियों को जिन्हें ये ग्रन्थ देखने को भी नहीं मिले, अवश्य लाभ होगा।

इसके अतिरिक्त हमारे संग्रह में माननीय पण्डित जी द्वारा लिखित कृष्ण-मीमांसा और 'गोस्वामी तुलसीदास जी की एक अलौकिक-माला' नामक दो पुस्तिकायें भी हैं। इस का वेद के साथ सम्बन्ध न होने से हम इन्हें नहीं छाप रहे हैं। प्रश्नरामायण और प्रश्नोत्तरीय इन दो ट्रैक्टों के नाम वैज्ञानिक-सिद्धान्त के अन्त में मिलते हैं, परन्तु हमारे पास नहीं है। यदि किसी के पास होवें तो हमें सूचित करें।

—युधिष्ठिर मीमांसक

शिवशंकरीय लघुग्रन्थ-पञ्चक

चतुर्दश-भुवन

मन आदि इन्द्रिय —

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं, मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता, एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ऋग्० ६।९।५॥

(कम्+दृशये) सुखपूर्वक परमात्मा की विभूतियों के देखने के लिए (पतयत्सु+अन्तः) इन पतनशीलों अर्थात् जंगम प्राणियों के मध्य (जविष्ठम्+ध्रुवम्+मनः+ज्योतिः+निहितम्) अतिशय वेगवान् तथापि निश्चल मनः स्वरूप ज्योति स्थापित है (समनसः+सकेताः) उस मन और विज्ञान से युक्त (विश्वे+देवाः+एकम्+क्रतुम्+अभि) ये सब इन्द्रिय उस एक महान् कर्ता की ओर (साधु+वि+यन्ति) सुन्दरता और विशेषता के साथ जायं ।

शिक्षा—इस मानव शरीर में एक परम सुन्दर अविनश्वर ज्योति विद्यमान है जिसको मन कहते हैं । निस्सन्देह, मानसिक शक्ति से मनुष्यजाति अर्नामग्न हो रही है मन और वाणी अर्थात् विस्पष्टभाषा ये दो पदार्थ अद्भुत रूप से मनुष्य में स्थापित किये गए हैं इन दोनों को जो अनुचित व्यवहार में लगाकर समय बिताते हैं वे ही परमपशु हैं । अतः ऐ मनुष्यो ! जिससे तुम्हारे ज्ञानविज्ञान-सहित यह मन और मनःसहित ये इन्द्रियगण उस महान् कर्त्ता की ओर जायं वैसा उपाय करो ।

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये । ऋग्० ६।९।६॥

(मे+कर्ण+वि+पतयतः) मेरे दोनों कान इधर उधर दूर २ गिर रहे हैं (चक्षुः+वि) मेरे नयन भी इधर उधर दूर २ दौड़ रहे हैं (हृदये+यद्-इदम्+ज्योतिः) हृदय में स्थापित जो यह ज्ञान रूप ज्योति है वह भी (वि+पतयति) दूर भाग रहा है (दूरेआधीः+मे+मनः+वि+चरति) अतिदूरस्थ विषय में ध्यान लगाकर मेरा यह मन भी दूर २ विचरण कर रहा है ऐसी अवस्था में प्रभु के समीप (किम्+स्विद्+वक्ष्यामि) क्या मैं कहूंगा और (किम्+उ+नू-मनिष्ये) क्या मनन करूंगा ।

शिक्षा—प्रत्येक मनुष्य का नित्य का यह अनुभव है कि कर्ण, चक्षु, मन आदि इन्द्रिय किसी कार्य में स्थिर नहीं रहते । किञ्चिन्मात्र ही मौका मिलने पर झट से इधर उधर भागने लगते हैं । ऐसी अनवस्थित दशा में मनुष्य सूक्ष्म कार्य कदापि नहीं कर सकता अतः यहाँ प्रार्थना है कि हे परमात्मदेव! मेरे कर्ण नयन, हृदयस्थ ज्ञान और यह मन सब ही चारों तरफ भाग रहे हैं । मैं कैसे आपके गुण गाऊं कैसे मनन करूं हे भगवान्! आशीर्वाद करो जिससे मेरे सब इन्द्रिय समाहित हों और उनके द्वारा आप की परम विभु

तियां देखूं। इस पृथिवी पर अभीतक जो ज्ञान, विज्ञान, कलाएं, कौशल, शास्त्र आदि प्रकाशित हो चुके हैं, हो रहे हैं और होनेहारे हैं वे सब ही इसी आत्मा से निकले हैं, निकल रहे हैं, निकलेंगे। इस तत्त्व को जो जानता है वही पण्डित है। सो यह आत्मा मन और इन्द्रियों का अधीन है जिसके इन्द्रिय चंचल चपल हैं उसका आत्मा कुछ नहीं कर सकता इन्हीं इन्द्रियों को विवश करने के लिये वेदों से लेकर आद्यावधि सहस्रों लक्षों गाथायें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। मैं भी आज इनकी ही गाथा वेदों से दिखलाता हूं इसके साथ साथ अनेक वस्तुओं का भी वर्णन होगा।

सप्तऋषि आदि—दो नयन, दो श्रोत्र, दो घ्राण (नाकें), एक मुख ये मिलके सात ऊपर के अङ्ग होते हैं। इन्हीं सातों को सप्त ऋषि, सप्त होता, सप्त ऋत्विक्, सप्त देव, सप्त असुर, सप्त प्राण, सप्त लोक, सप्त द्वीप, सप्त सागर, सप्त सिंधु, सप्त नदियां, सप्ताचल इत्यादि नाना नामों से पुकारते हैं। दो हस्त, दो चरण, एक मलेन्द्रिय, एक मूत्रेन्द्रिय और एक मध्य शरीर अर्थात् गर्दन से नीचे कमर से ऊपर का भाग, ये मिल के सात नीचे के अवयव होते हैं, इन्हीं सातों को पुराणों में सप्त पाताल, सप्त अधोलोक, सप्त अधोभुवन, सप्त नरक इत्यादि विविध नाम देते हैं, नयन आदि सप्त और हस्त आदि सप्त, मिलके (१४) चतुर्दश होते हैं, ये ही चतुर्दश लोक चतुर्दश भुवन प्रभृति नाम से कहे जाते हैं। पुराणों में अत्यन्त विस्तार से इनका वर्णन है। शिरस्थ नयन आदि सातों को भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक जनलोक, तपोलोक, और सत्यलोक कहते हैं। और हस्त आदि सातों को अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल कहते हैं ये ही चतुर्दश भुवन हैं। यह सब वर्णन इस देहमात्र का है। इसी शरीर में ये चौदह लोक हैं इनको सब प्रकार से जाने जनावें। इसके पूर्ण ज्ञान से मनुष्य को मंगल-कल्याण होता है। पश्चात् धीरे धीरे इसके यथार्थ भावको लोग भूल गये तब इस शरीर को छोड़ बाह्य जगत् में १४ चतुर्दश भुवन खोजने लगे। स्वस्वमनोनुकूल और स्वस्वबुध्यनुसार इसकी व्याख्या होने लगी। आश्चर्य की बात है जो केवल शरीरमात्र का विवरण था वह अब इस अनन्त अनादि जगत् का विवरण बन गया। विद्वान् लोग भी इस को ऐसे ही मानने मनवाने लगे। क्यों ऐसा महापरिवर्तन वा उलट पुलट हो गया? इस प्रश्न का एकमात्र यही समाधान है कि वेदों को न पढ़ना, पढ़ाना ही इस महान् अज्ञान का कारण है—अब मैं वेदों के मन्त्रों को लेकर अतिसंक्षिप्त रूप से इस विषय का दिग्दशनमात्र करवाता हूं। आप देखते जायंगे कि कि वैदिक परिमित पदार्थों से यह लौकिक जगत् कितना विस्तीर्ण बन गया है।

सप्त ऋषि—

अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना॥ बृहदारण्यकोपनिषद् २।२।३॥

प्रथम उपनिषद् का ही प्रमाण इस हेतु लिखा है कि इस की व्याख्या स्वयं एक महर्षि याज्ञवल्क्य ने किया है और किंचित् पाठभेद के साथ वेद में भी यह मंत्र आया है आगे देखिये। अर्थ—(अर्वाग्बिलः) जिसका बिल अर्थात् छिद्र नीचे हो (उर्ध्वबुध्नः) और जिसकी जड़ ऊपर हो ऐसा (चमसः) एक चमस नाम का पात्र है (तस्मिन्+विश्वरूपम्+यशः+निहितम्) उस चमस में सब

प्रकार के रूपवाला यश स्थापित है। (तस्य+तीरे+सप्त+ऋषयः+आसते) इसके तीर पर सात ऋषि बैठे हुए हैं (अष्टमी+वाग्+ब्रह्मणा+संविदाना) और आठवीं वाणी ब्रह्म के साथ संवाद कर रही है। ये इसके पदार्थ हुए। अब इसका आशय स्वयं ऋषि इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"यह शिर ही चमस है इसकी जड़ ऊपर और मुखरूप छिद्र नीचे है। इसी में सब यश स्थित हैं। इसके तीर पर दो नयन, दो श्रोत्र, दो घ्राण और एक मुख अथवा रसना ये ही सात ऋषि बैठे हुए हैं—और आठवीं वाणी ब्रह्मका विचार कर रही है। ये दोनों कर्ण=गौतम और भारद्वाज हैं। ये दोनों आखें=विश्वामित्र=और जमदग्नि हैं। ये दोनों घ्राण (नाकें) वसिष्ठ और कश्यप हैं (रसना का कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है) वाणी=अत्रि है" यहां देखते हैं कि सप्तऋषि पद से स्वयं महर्षि कर्णआदि सात इन्द्रियों का ही ग्रहण करते हैं और इन के नाम भी गौतम भरद्वाज आदि पृथक्-पृथक् रखते हैं।

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नो यस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
अत्रासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः। अथर्ववेद। १०। ८। ६॥

यह ऋचा निरुक्त दैवतकाण्ड ६। ३८ में भी आई है। अर्थ—जिसका बिल नीचे मूल ऊपर है ऐसा एक चमच नाम का पात्र है जिसमें सब प्रकार का यश स्थापित है। यहां इसके साथ सात ऋषि हैं जो इस महान् (शरीर) के रक्षक हैं। अर्थ पूर्ववत् ही है। यहां अष्टमी वाणी की चर्चा नहीं है पुनः

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
निरुक्तदैवत काण्ड अ० ६। ३७॥

(शरीरे+सप्त+ऋषयः+प्रतिहिताः) शरीर में सात ऋषि स्थापित हैं (सप्त+अप्रमादम् सदं+रक्षन्ति) सातों प्रमादरहित हो शरीर की रक्षा करते हैं (आपः+स्वपतः+लोकम्+ईयुः) बहुत फैलने हारे सातों सोते हुए पुरुष के आत्मा के निकट जाते हैं (तत्र+अस्वप्नजौ+सत्रसदौ+च+देवौ+जागृतः) उस समय न सोने हारे सदा शरीरस्थ दो देव जागे हुए रहते हैं।

ये ही दो नयन, दो कर्ण, दो नासिकाएं और एक जिह्वा सात ऋषि हैं जो शरीर के उपरितन भाग शिर में स्थित हैं ये ही सातों शरीर की रक्षा करते हैं ये ही सुषुप्त्यवस्था में जीवात्मा से मिलकर कुछ देर शान्तिलाभ करते हैं। इस समय मुख्य प्राण और आत्मा ये दोनों देव जागते रहते हैं। यहां "शरीर में सात ऋषि स्थित हैं" इतने कहने मात्र से सिद्ध होता है कि इन इन्द्रियों का ही विवरण हैं। यास्काचार्यादिकों ने भी इसी अर्थ का ग्रहण किया है।

इतना ही नहीं किन्तु वेदों में विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि अङ्गिरा आदि जितने ऋषिवाचक शब्द आये हैं वे प्राणवाचक हैं अथवा प्राणविशिष्ठ जीवात्मवाचक है। प्राण नाम इन्द्रियों का हैं अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों में "प्राणा वै ऋषयः" शत०६।१। प्राणा वै ऋषयः। इस प्रकार का पाठ बहुत आता है। शतपथब्राह्मण के अष्टमकाण्ड के आरम्भ में लिखा है कि—प्राणो वै भौवायनः। प्राणो वै वसिष्ठ

ऋषिः। मनो वै भरद्वाजः। चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः। श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः। वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः। इत्यदि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि वेदों में जो वसिष्ठ आदि पद आये हैं वे प्राणों के नाम हैं।

पुनः बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य कहते हैं—

१—वाग्वै यज्ञस्य होता। २—चक्षुर्वै यज्ञस्याऽध्वर्युः। ३—प्राणो वै यज्ञस्य उद्गाता। ४—मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा। पुनः सप्त वै शीर्षन् प्राणाः। ऐतरेय ३।३। ॥ शिर में सात प्राण हैं सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च। वेदान्तसूत्र। २।४।५॥ इस वेदान्त सूत्र से भी शिरस्थ सात ही प्राण निर्धारित हुए हैं। इत्यादि अनेकानेक प्रमाणों से सिद्ध है कि जहाँ-जहां शरीरस्थ सप्त ऋषियों का वर्णन हैं वहाँ-वहाँ इनहीं नयनादि सातों का ग्रहण है।

शिक्षा—वेदभगवान् कहते हैं कि यह शिर चमस पात्र के समान है इस में सब यश स्थापित हैं। इसके तट पर सात ऋषि बैठे हुए है। अष्टमी ऋषिका वाणी ब्रह्म के साथ संवाद कररही है। ऐ मनुष्यो! ऐसा यह तुम्हारा शरीर परम पवित्र मैंने बनाया है। जहां एक ज्ञानी पुरुष रहता है वहाँ अन्धकार विलुप्त हो जाता तुम्हारे शरीर में तो सत्यासत्य निर्णय के लिये सप्त ऋषि स्थापित हैं तब तुम ज्ञान की ओर नहीं आते हो यह कैसा आश्चर्य है। पुनः ये नयनादिक इन्द्रिय ऋषि हैं इनकी लज्जा रक्खो इन्हें कलङ्कित मत करो। इनसे योग्य कार्य लो। देखो! तुम्हारे शिर में सब ही यश स्थापित हैं ज्ञान-विज्ञान की नदियां शिर में बह रही हैं। महाप्रकाश हो रहा है। इस प्रकाशमय शिर से जिस ने कार्य्य लिया वह सूर्यवत् जगत् में देदीप्यमान हुआ उसकी कीर्ति और यश अभीतक पृथिवी पर स्थिर है और बहुत दिनों तक रहेगा। पुनः वेद कहते हैं कि मानो यह शरीर एक महानगर है इस के नयनादि सात ऋषि रक्षक हैं। प्राण और जीवात्मा सदा जागते हुए रक्षाकर रहे हैं। किन्तु ऐ मनुष्यो! जो रक्षा के लिये है उन्हें तुम अपने आचरणों से भक्षक बना देते हो वे ही सात ऋषि तुम्हारे लिये पीछे महान् असुर व्याघ्र सिंह बन जाते हैं तुम्हारा सर्वनाश हो जाता अतः ऐ प्यारे! ऐसा यत्न करो कि ये सात ऋषि सदा ऋषि ही बने रहें। शुद्ध आचरण ज्ञान विज्ञान की ओर आने, जिज्ञासा में तत्पर होने, आलस्य के त्यागने और प्रयत्न आदि व्यापार से ये सदा ऋषि बने हुए रहेंगे अन्यथा बिगड़ के सिंहवत् राक्षसवत् पिशाचवत् तुम्हें खा जायंगे, इति।

समीक्षा—वेद के उक्त प्रमाणों से निश्चय हुआ कि नयनादि सात इन्द्रियों को सप्त ऋषि कहते हैं। वेदों के इस नियम का सदा स्मरण रखना चाहिये कि नियत संख्या का वर्णन वेदों में आता है। शिर में दो कर्ण, दो नयन, दो घ्राण और एक मुख ये सात नियत हैं परन्तु इस जगत् में न सप्त ऋषि, न सप्त नदियां, न सप्त नक्षत्र, न सप्त पर्वत, न सप्त सागर इत्यादि नियत हैं क्योंकि बाह्य जगत् में वे सब न्यून और अधिक हो सकते हैं अतः सप्तपद से नियत शीर्षण्य सप्तेन्द्रिय को त्याग अन्य मनुष्यादियों का ग्रहण करना बुद्धिमत्ता नहीं। अब आप देखेंगे कि इस सप्तर्षि को लेकर कितने प्रकार के सप्त ऋषि बनाये गये—

सप्त ब्रह्मर्षि देवर्षि महर्षि परमर्षयः। काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावरः।
इति रत्नकोषे।

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः॥
ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणोदत्तोलिर्ऋषभस्तथा। निश्चरश्चार्ववीराश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन॥
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपश्च महानृषिः। गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः॥
तथैव पुत्रौ भगवानृचीकस्य महात्मनः। जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे॥
रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान्कृप एव च। ऋष्यश्रृङ्गस्तथाद्रोणिस्त्र सप्तर्षयोऽभवन्॥

इत्यादि प्रमाण मार्कण्डेय हरिवंश विष्णु पुराण आदिकों में विद्यमान हैं यदि ऋषि सम्बन्धी सब ही सप्तकगण लिखे जायें तो उन्हीं का एक बड़ा ग्रन्थ बन जाय। ये सब धीरे धीरे अनेक सप्तकगण बन गये। व्यासादि सप्त महर्षि, भोल आदि सप्त परमर्षि॥ कर्ण आदि सात देवर्षि। वसिष्ठ आदि सप्तब्रह्मर्षि, सुश्रुत आदि सप्तश्रुतर्षि। ऋतुपर्ण आदि सप्त राजर्षि, जैमिनि आदि सप्त काण्डर्षि कहलाते हैं। यह रत्न कोष कहता है। पुराणों ने प्रत्येक स्वायंभुवस्वारोचिष इत्यादि मन्वन्तर में सप्त सप्त ऋषियों की कल्पना की है। प्रत्येक पुराण अपनी अपनी गाथा भिन्न भिन्न रूप से गाता है इसकी प्रणाली देखने से इनका काल्पनिकत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। आकाश में भी सात ऋषि मानते हैं। जिज्ञासु पुरुषो! यह सब कल्पनामात्र है। जब वेदों का अर्थ भूल गये तब नाना कल्पनाएं करके आदि कवि परमात्मा के सब भाव को कलुषित करने लगे।

सप्त होता—

एभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥ ऋग् १०।६३।७॥

(मनुः+समिद्धाग्निः) मनु समिद्धाग्नि हो अर्थात् अग्नि को जलाय (एभ्यः+प्रथमाम्+होत्राम्) इनके निमित्त सर्व श्रेष्ठ आहुति को (मनसा+सप्त+होतृभिः आयेजे) मन और सप्त होताओं के साथ अच्छे प्रकार देते हैं (आदित्याः+ते+अभयं+शर्म्म+यच्छत) हे आदित्यगण! वे आप भयरहित कल्याण भवन देवें (नः+स्वस्तये+सुपथा+सुगा+कर्त्त) और हमारे कल्याणार्थ सुकर वैदिक मार्ग को सुगन्तव्य बनावें।

शिक्षा—यहाँ मन्ता, बोद्धा, विज्ञानी, जीवात्मा का नाम मनु है वह मनु नयन आदि सात होताओं और मन के साथ सदा अध्यात्म याग किया करता है। ज्ञानविज्ञान रूप सुप्रकाश का नाम यहां आदित्य है। इस शरीर में मनुनामी जीवात्मा ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति की इच्छा से समाहित हो जो मननादि व्यापार करता है यहां महायज्ञ है। इसी से निर्भयता और शोभनपथ प्राप्त होते हैं। यहाँ मन के साथ सप्त होता शब्द के पाठ से विस्पष्टतया सिद्ध है कि यह भी इन्हीं सात इन्द्रियों का व्याख्यान है। इसी अध्यात्म यज्ञ को देख लोगों ने द्रव्यात्मक यज्ञ की रचना की। नयनादि सात होताओं की जगह में सात मनुष्य होता बनाये गए। मन के स्थान में ब्रह्मा, मनु के स्थान में यजमान

कल्पित हुए। वेदों में इस अध्यात्म यज्ञ का व्याख्यान विविध प्रकार से आये हैं इसी हेतु द्रव्यात्मक यज्ञ में भी विभिन्नता होती गई।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ यजु० ।३४।३॥

(येन+अमृतेन) जिस अमृत अर्थात् शाश्वत अविनश्वर मनने (इदम्+भूतं+भुवनं+भविष्यत्+सर्वम्+परिगृहीतम्) भूत वर्त्तमान और भविष्यत् इस सब काल का ग्रहण किया है (येन+यज्ञः+तायते) जिस मन की सहायता से अग्निष्टोमादि यज्ञ विस्तीर्ण होता है (तत्+मे+मनः+शिवसंकल्पम्+अस्तु) वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो। यज्ञ कैसा है (सप्त+होता) जिसमें सात होता हैं।

वे सात होता कौन हैं ? निस्सन्देह चक्षुरादि इन्द्रिय ही सप्त होता हैं। पश्चात् लोगों ने यजमान, होता उद्गाता अध्वर्यु, ब्रह्मा, पोता, नेष्टा ये सात प्रकार के मनुष्य कल्पित किए। पश्चात् और भी कल्पना बढ़ती गई। प्रत्येक् वेद के चार चार ऋत्विक् बनाये गये।

ऋग्वेदीय=होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत।
यजुर्वेदीय=अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता।
सामवेदीय=उद्गाता, प्रस्तोता, सुब्रह्मण्य, प्रतिहर्ता।
अथर्ववेदीय=ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंशी, पोता, आग्नीध्र।

अथर्ववेदीय=सात ऋत्विकों के और भी नाम पाये जाते हैं वे ये हैं—सदस्य, पत्नीदीक्षिता, शमिता, गृहपति, अङ्गिरा, कैवर्त्त, चमसाध्वर्यु। एवं यजमान यजमानपत्नी इत्यादि संख्या बढ़ती गई।

सप्त विप्र—

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः। सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः॥ १।६२।४॥

(इन्द्र+शक्र) हे इन्द्र ! हे शक्र ! (सः) सुप्रसिद्ध वे आप (रवेण) शब्दमात्रसे (अद्रिम्+फलिगम्+वलम्) अद्रि, फलिग और वल इन तीनों दुष्टों को (दरयः) विदीर्ण कर देते हैं। आप कैसे हैं (सप्त+विप्रैः) सात विप्रों से (स्वर्यः) स्तूयमान हैं (स्तुभा+स्वर्यः) पुनः आप उन सातों विप्रों की स्तुभ=अर्थात् स्तोत्रों से स्तूयमान हैं। वह स्तोत्र कैसा है (सुष्टुभा) जिस में सुन्दर-सुन्दर स्तोत्र हैं पुनः (स्वरेण) वह स्तोत्र स्वर से संयुक्त है। वे विप्र कैसे हैं (नवग्वैः) नवग्व हैं पुनः (दशग्वैः) हैं पुनः (सरण्युभिः) गमनशील हैं

व्याख्या=लोक में प्रसिद्ध है कि नवम अथवा दशम मास में मनुष्य उत्पन्न होता जो नवम मास में उत्पन्न हो उसका प्राण नवग्व और जो दशम मास में उत्पन्न हो उसका प्राण दशग्व कहाता है क्योंकि रजोवीर्य्य के साथ ही प्राणों का भी बीज रहता है। अत एव ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णन आता है कि अङ्गिरा ऋषि दो प्रकार के हैं एक नवग्व दूसरे दशग्व। जो नव मास में यज्ञ समाप्त करते वे

नवग्व और जो दश मास में यज्ञ समाप्त करते वे दशग्व। मातृगर्भ में नव दश मास निवासकरना ही नवदश मास का यज्ञानुष्ठान करना है। ये कर्णद्वय, नयनद्वय, घ्राणद्वय और रसना सात ही मुख्य प्राण हैं। अतः ये सात विप्र कहे गए हैं। ये सरण्यु अर्थात् गमनवान् होने से सरण्यु कहाते हैं। इन्द्र नाम जीवात्मा का है यह मैंने वारम्वार कहा है। अद्रि, फलिग और वल ये तीनों नाम मेघ के हैं निघण्टु १। १०। परन्तु यहां मेघ के समान आवरण करनेवाले अज्ञान के नाम हैं मेघ वा पर्वतवाचक जो शब्द हैं वे सर्वदा अज्ञानवाचक भी होते हैं। जैसे वृत्र, शम्बर आदि। सब सातो प्राण प्रसन्न होके जीवात्मा की स्तुति प्रार्थना करते हैं तब वह प्रशस्य जीव शारीरिक मानसिक और ऐन्द्रियिक अथवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक अथवा शिरोरूप द्युलोकव्यापी, मध्यशरीर रूपान्तरिक्षव्यापी, अधोभागशरीररूपपृथिवीव्यापी दुःखों को विदीर्ण करता है। जीवआत्मा की आज्ञा के अनुसार जब ये प्राण (इन्द्रिय) चलते रहते हैं! तब कहा जाता है कि ये प्राण जीवत्मा की स्तुति करते हैं अर्थात् यह आत्मा जितेन्द्रिय है। सप्तविप्र शब्द को लेके पिछली संस्कृतभाषा में अनेक सप्तक बनते गए। विशेष रूप से यहां विचारना यह है कि वेदों के शब्द ले-ले कर पश्चात् कितने इतिहास आख्यायिकाएं बनती गईं और वे मनुष्यों के यथार्थ इतिहास माने गए यह अद्भुत बात है।

सप्त सिन्धु—

यो हत्वाऽहिमरिणात्सप्त सिंधून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः। ऋग० २। १२। ३

(यः+अहिम्+हत्वा+सप्त+सिंधून् अरिणात्) जो अहि को मार सात नदियों को बहने के लिये प्रेरित करता है (यः+वलस्य+अपधा+गाः उदाजत्) जो वल के अवरोध=रुकावट से गौओं को निकाल लेता है (यः अश्मनोः अन्त अग्निम् जजान) जो दो प्रस्तरों के बीच में अग्नि को उत्पन्न करता है (समत्सु संवृक्) जो विविध संग्रामों में शत्रुओं के काटनेहारा होता है (जनासः सः इन्द्रः) हे मनुष्यो! वही इन्द्र है।

व्याख्या—अहि=पाप, अज्ञान। वल=पाप, अज्ञान, अन्धकार। गो=इन्द्रिय। अश्मा=शरीररूप पर्वत। इन्द्र=जीवात्मा। सप्तसिंधु=नयन आदि सात इन्द्रिय। जब अज्ञानरूप अन्धकार छा जाता है तो कर्त्तव्याकर्त्तव्य भूल जाते हैं जिन इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य विचार करता है वे इन्द्रिय विचार से अलग हो जाते हैं। महामहादुष्कर्म्म में फंसकर जीवात्मा को कलङ्कित कर देते। जब इन्द्रियों की ऐसी दशा हो जाती तब कहा जाता है कि अहि, वृत्र, शम्बर नमुचि, धुनि, चुमुरि और वल आदि असुर सप्त नदियों को बहने नहीं देते, मानो इन सप्त नदियों को चारो ओर से बांध रखते नदीरूप गौओं को हरणकर ले जाते इत्यादि। पश्चात् देवों के कल्याणार्थ इन वृत्र आदि असुरों से तुमुल संग्राम कर उन को मार सप्त नदियों को इन्द्र खोल देता है। तब वे नदियां पुनः बहने लगती हैं। वे गायें इन्द्र की कृपाद्वारा कारागार से निकल आती हैं इत्यादि यहां इन्द्रियों की दुष्ट प्रवृत्तियों के ही नाम अहि, वृत्र आदि हैं। ये असुर नाम से पुकारे जाते हैं "असुषुप्राणेषु रमते यः सोऽसुरः" जो सत्कर्मों को त्याग दुष्कर्म्मों में प्रवृत्त हो केवल प्राणों के ही भरण

पोषण में लगा रहता है। वह असुर कहाता, दुष्टेन्द्रिय असुर और शिष्टेन्द्रिय देव कहाते इन्हीं दोनों का जो अहोरात्र तुमुल युद्ध हो रहा है इसी का नाम देवासुर संग्राम है। शुद्ध जीवात्मा इन्द्र और दुष्ट जीवात्मा वृत्र है जो यह जीवात्मा ईश्वरोपासनरूप महायज्ञ करके परम बलिष्ठ होता और तब सब दुष्टताओं को छोड़ देता यही इसका महाविजय है इसी प्रकार का आशय आगे भी रहेगा—

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ ऋग् २। १२। १२॥

(यः सप्तरश्मिः) जो सप्तरश्मि नयनादि सात ज्योति वाला है (वृषभः) जो ज्ञान की वर्षा करनेहारा (तुविष्मान्) बलवान् (वज्रबाहुः) हाथ में वज्रधारी है वह, (सप्त सिंधून् सर्त्तवे असृजत्) नयनादि सात नदियों को बहने के लिये बनाता है (यः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम्) जो द्युलोक की ओर आते हुए रौहिण को (अस्फुरत्) मारता है (जनासः सः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है।

व्याख्या—इन्द्र=जीवात्मा। रौहिण=अज्ञान। द्यौ=द्युलोक, प्रकाश, ज्ञान। ज्ञानरूप महाज्योति को ढांकने के लिये जब अज्ञान दौड़ता है तब जो जीवात्मा धर्म्मनिष्ठ बलिष्ठ और पापरूप असुरों के निपात के हेतु सदा हस्त में विवेकरूप महास्त्र रखता है वह उसको मार देता है अपने समीप कदापि अज्ञान को नहीं आने देता। और ऐसे जीवात्मा की सातों इन्द्रियरूप नदियां अच्छे प्रकार अपने-अपने विषयों में निरुपद्रव रूप से प्रवाहित होती रहती हैं।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ ऋग् १। ३२। १२॥

(इन्द्र यद् एकः देवः) हे इन्द्र ! जब एक देव अर्थात् मदकारी मदोन्मत्त वृत्र नाम का एक असुर (सृके त्वा प्रत्यहन्) आप से वज्र छीन लेने के हेतु आप के ऊपर प्रहार करता है तब आप (अश्व्यः वारः अभवः) अश्व (घोड़े) के समान बलिष्ठ होते हैं (शूर गाः सोमम् अजयः) हे शूर ! अवरुद्ध गौवों को और सोम को जीते लेते हैं पश्चात् (सप्त सिंधून् अवासृजः) सप्त नदियों को बहाते हैं॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिञ्च स्रवंतीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ ऋग् १। ३२। १४ ॥

(इन्द्र जघ्नुषः तेहृदि यद् भीः अगच्छत्) हे इन्द्र ! शत्रु के हनन कर्त्ता आपके हृदय में जो भय आया है इसका क्या कारण (कम् अहेः यातारम् अपश्यः) अपने को छोड़ किस अन्य देव को अहि के मारनेहारे देखते हैं। आप को छोड़ कौन दूसरा अहि को मार सकता अतः आप क्यों डरते हैं ? (भीतः श्येनः न) भयभीत श्येन पक्षी के सदृश आप (यत् नव च नवतिञ्च) जो नौ-नौ और ९० (स्रवन्तीः रजांसि अतरः) बहती हुई नदियों के पार उतर गए हैं।

समीक्षा=यहां मैंने संक्षेप से दिखलाया कि वृत्र आदि असुरों को मार सप्त सिन्धुओं को इन्द्र प्रवाहित करता है। पृथिवी पर शतशः नदियां हैं तब सप्त पद बार-बार क्यों आते हैं ?

इन से सिद्ध है कि यह नियत संख्या किसी नियत संख्या ही की सूचना देनेंहारी हो सकती अन्य की नहीं वे नियत सात शिरस्थ नयनादिक ही हैं अन्य नहीं इन्हीं नियत सातों को ये वेदमंत्र दिखला रहे हैं पुनः एक ऋचा में देखते हैं कि यह इन्द्र भय खारहा है। उपासक कहता है कि इन्द्र ! तू मत भय कर तू ९९ नदियों को पार कर आया है अब कोई चिन्ता की बात नहीं इत्यादि। ये ९९ कौन हैं ? समाधान-पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, और एक मन ये ११ इन्द्रिय होते हैं उत्तम, मध्यम, अधम, भेद में ये ३३ होते हैं। ये ही ३३ देव हैं जिस हेतु लोक में देखते हैं कि शिष्टों की अपेक्षा दुष्ट अधिक हैं। अतः वेद भगवान् कहते हैं कि देवों की संख्या की अपेक्षा असुर गण त्रिगुणित अधिक हैं अर्थात् ३३×३=९९ हैं इसी कारण इन्द्र द्विनयन, एकशिरस्क, किन्तु वृत्र षडक्ष (छःनेत्रवाला) और त्रिमूर्धा कहाता है अर्थात् इन्द्र की अपेक्षा वृत्र त्रिगुण है अतः देवों की तैतीस-तैतीस संख्या की अपेक्षा त्रिगुण ३×३३=९९ निन्यानवे असुर हैं। ये ही निन्यानवें पापरूप नदियां हैं इनको जब तक जीवात्मा लांघता नहीं तवतक भयभीत होता रहता यहां उपासक अपने आत्मा को समझाता है अब चिन्ता की कोई बात नहीं तू इन ९९ नदियों का पार उतरआया। यहां यह ९९ संख्या भी नियत संख्या को ही सूचित कर रही है। ये तैतीस-तैतीस इन्द्रिय जब दुष्टकर्मों में प्रवृत्त रहते हैं हैं तब ये त्रिगुणित ९९ असुर कहाते हैं। ये अगाध दुस्तर ९९ नदियां हैं। इससे भी सिद्ध है कि यह सब वर्णन इसी शरीर का है इसको छोड़ बाह्य जगत् में ७ अथवा ९९ नदियों की गवेषणा करनी सर्वथा अवैदिक अर्थ और अज्ञानता की बात है।

सप्त नदियां और यश—

> अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः।
> अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम्॥ ऋग् १। १०२। २॥

(सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति) सात नदियां इसके महान् यश को धारण करती हैं (द्यावा-क्षामा पृथिवी वपुः दर्शतम्) द्युलोक और यह विस्तीर्ण पृथिवी उसका शरीर दिखला रही है (अस्मे श्रद्धे) हम लोगों की श्रद्धा के निमित्त (इन्द्र अभिचक्षे सूर्याचन्द्रमसा) हे इन्द्र ! प्रत्यक्षतया ये सूर्य और चन्द्र (कम् वितर्तुरम् चरतः) सुखपूर्वक निरन्तर विचरण कर रहे हैं। जो सात नदियां इस परमात्मा की महती कीर्ति को धारण किये हुए हैं वे कोई विलक्षण होनी चाहियें वे सात नदियां निस्सन्देह ये सप्त इन्द्रिय हैं ये ही भगवान् के परम यश को प्रख्यात कररहे हैं॥

> य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वाऽऽर्यात् सप्त सिन्धुषु।
> बधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ ऋग् ८।२४।२७॥

(यः अंहसः ऋक्षात् मुचत्) जो इन्द्र शुद्ध जीवात्मा पापरूपी रीछ से उपासक को छुड़ाता है (यः वा सप्त सिन्धुषु आर्यात्) अर्थात् जो सात नदियों के तटपर धन भेजता है (तुविनृम्ण) हे बहुधन इन्द्र ! वह आप (दासस्य वधः नीनमः) क्षयकरनेहारे दुष्ट असुरों के लिये हनन साधक आयुध को नमित कीजिये। यही नयन आदि सप्तेन्द्रिय सप्तसिन्धु हैं शुद्ध जीवात्मा पाप से उपासक को छुड़ा इन्द्रियरूप सप्त सिन्धुओं को विज्ञानरूप विविध धन भेजता है।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥ ऋग् ८।७२।७॥

(अधिस्वरे सिन्धोः तीर्थे) शब्दायमान सिन्धु के तीर्थ पर (सप्त एकाम् दुहन्ति) एक गौ को सात जन दुहते (पञ्च द्वा सृजतः) पांचों को दो कार्य में लगा रहे हैं ।

व्याख्या=वाणी वा विद्या एक गौ है । सप्त=नयन आदि सप्त इन्द्रिय । पञ्च=पांच ज्ञानेन्द्रिय स्थानभेद से सात गिनती होती है परन्तु ज्ञानभेद से पांच इन्द्रिय हैं । दोनों नयन से एक दर्शनक्रिया । दोनों कर्णों से एक श्रवणक्रिया । दोनों घ्राणों से एक सूंघने की क्रिया जिह्वा से एक स्वाद क्रिया । त्वचा से एक स्पर्शक्रिया । ये ही पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं । दो=मन और जीव ये दोनों पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को कार्य में लगाये हुए रहते हैं । सिन्धु=बहनेहारा यह शरीर । इस देह के अभ्यन्तर सदा शब्द होता रहता है । इस शब्दायमान शरीररूप सिन्धु के तट पर ये सप्तेन्द्रिय विद्यारूपा गौ को दुहा करते हैं । मन और जीवात्मा दोनों इनको कार्य्य में लगाए हुये रहते हैं । यही इसका भाव है । वेद जिज्ञासु पुरुषों ! यहां यह वारंवार विचारणीय है कि वैदिक नियत संख्या किसी नियत संख्या का ही वर्णन करेगी ॥

सप्त परिधि और पुरुष पशु—

सप्तस्याऽऽसन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ यजुः ॥३१।१५॥

(यज्ञम् तन्वानाः) यज्ञ को करते हुए (यद्) जब (देवाः) देव (पुरुषम् पशुम् अबध्नन्) पुरुष पशु को बांधते हैं तब (अस्य सप्त परिधयः आसन्) इस यज्ञ के सात परिधि होते हैं और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) त्रिगुणित सप्त अर्थात् २१ समिधायें होती हैं ॥

व्याख्या—जब इस ऋचा के अर्थ में भी किञ्चित् सन्देह न रहेगा । पुरुषपशु—प्रत्येक शरीर में रहनेहारा जीवात्मा ही यहां पुरुषपशु है । नयन आदि सात इन्द्रिय यहां परिधि हैं । चारों तरफ के घेरे का नाम परिधि है जैसे कभी कभी सूर्य और चन्द्रमा के चारों तरफ गोलाकार रेखा बनी हुई प्रतीत होती है । इनहीं सातों के उत्तम, मध्यम और अधम भेद से २१ प्रकार के जो विषय हैं ये ही यहां २१ समिधाएं हैं वेदों में भूरि भूरि ऐसा वर्णन आता है कि वत्सके समान यह जीव रस्सी में बंधा हुआ है । इसके ऊपर, मध्य और नीचे तीन स्थानों में फन्दे लगे हुए है इत्यादि । जब इन्द्रियों का अधिष्ठातारूप देव इस जगत् में आके शुभाशुभ कर्म्मरूप यज्ञ करना चाहता है तब जीवात्मा के के चारों तरफ से प्रेरनेहारे ये ही सप्तेन्द्रिय सात परिधि होते हैं । और इनकी विषय वासनाएं मानो इनके भोजन होते हैं । इस प्रकार जीवात्मरूप पशु को बांध के देवगण यज्ञ करते हैं ! ऐ वैदिक पुरुषो ! ऐसे ऐसे ही वर्णन देख के यज्ञों में गौ भैंस, छाग, मेष, आदि पशुओं को बांध मरवाने लगे । यह कैसी शोकजनक अवनति हुई । जो अध्यात्मपरक यज्ञ था वह आज घृणित द्रव्यमय हो गया ।

गङ्गा यमुना आदि सप्त नदियां—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋग् १०।७५।५॥

(गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि परुष्णि) हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे सरस्वति ! हे शुतुद्रि !

हे परुष्णि ! (मे इमम् स्तोमम् आसचत) मेरे इस स्तोत्र की सब प्रकार से सेवा करो ! (मरुद्वृधे आर्जीकीये) हे मरुद्वृधे ! हे आर्जीकीये (असिक्न्या वितस्तया सुषोमया आशृणुहि) असिक्नी, वितस्ता, और सुषोमा के साथ मेरे स्तोम को सुनो ॥

व्याख्या—गङ्गा—गमन करनेहारी । यमुना—चलनेहारी । सरस्वती—जलपूर्णा । शुतुद्री—शीघ्र दौड़नेहारी । परुष्णी—कुटिलगामिनी । मरुद्वृधा—वायु से बढ़नेहारी आर्ज्जीकीया—ऋजुगामिनि । असिक्नी—अशुक्ला, तामसी । वितस्ता—विवृद्धा विस्तीर्णा । सुषोमा—परम शान्तिप्रदा, सौम्यगुणयुक्ता । प्राचीनों ने इनकी इसी प्रकार निरुक्ति की है । सप्त नदी वा सप्त सिंधु आदि पद वेदों में बहुत आये हैं इस पुस्तक में भी दो चार उदाहरण दिए गए हैं यहां नदीवाचक सात और तीन नाम भी पाए जाते १–गङ्गा २–यमुना ३–सरस्वती ४–शुतुद्री ५—परुष्णी ६—मरुदवृधा और ७—आर्जीकीया ये सातों नाम सम्बोधनयुक्त और १—असिक्नी २—वितस्ता और सुसोमा ये तीनों पद तृतीयान्तयुक्त आये हैं । जहां जहां सप्त सिन्धु आदि पद हैं वहां वहां सायणादि भाष्यकार गङ्गादि सप्त नदियां अर्थ करते हैं । परन्तु मैंने पूर्व में अनेक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि सप्त सिन्धु पद से नयनादि सप्तेन्द्रियों का ग्रहण है । यहां उन सातों के विशेष नाम दिए हुए हैं । यही विशेषता है । अब जो असिक्नी, वितस्ता और सुसोमा ये तीन नाम हैं । वे उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीसूचक हैं वेदों की इस शैली पर सदा ध्यान देना चाहिये कि वेद भगवान् सामान्य वाचक शब्द कहते कहते नित्य व्यक्तिवाचक शब्द भी कह देते हैं और उनमें चेतनत्व का आरोप करके चेतन व्यक्तिवत् वर्णन करते हैं । वैदिक इतिहासार्थ निर्णय नाम के ग्रन्थ में यह बात विस्तृतरूप से वर्णित हैं । जैसे नयन आदिकों को वे सप्त ऋषि कहते हैं अब कहीं इनके पृथक् पृथक् सात नाम रखकर भी वर्णन करेंगे । इसी प्रकार ३३ देव, पञ्च मानव, सप्त प्राण, सप्त लोक आदि । अब यहां यह भी स्मरणीय बात है कि जब इन्द्रियों को लोक कहेंगे तब तत्सदृश ही नाम भी रक्खेंगे जैसे भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् । जब इन्हें असुर कहेंगे तब शम्बर, नमुचि, धुनि, चुमुरि, वल, अहि, वृत्र आदि नाम देवेंगे । जब इन्हें पशु कहेंगे तब गौ, मेष, अज, वृक, ऋक्ष, सिंह व्याघ्र आदि । इसी प्रकार जब इनको नदी नाम से पुकारेंगे तब गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, मरुद्वृधा, और आर्जीकीया कहेंगे । पुनः यहां सात ही नाम क्यों ? अतः सिद्ध है कि यह सप्तेन्द्रिय का वर्णन है । बाह्य नदियों का नहीं ।

प्रश्न—आपने जो अर्थ किया है वह ठीक है प्रथम गङ्गा आदि नदियों को वैदिक कवि देख तब ऐसा वर्णन किये हों ऐसा सम्भव है । समाधान—नहीं । वेदों में अनित्य और एकदेशी पदार्थ का वर्णन नहीं आता । वेदों में आकृति का वर्णन है व्यक्ति का नहीं । इस विषय को वैदिकइतिहासार्थ नि० में देखिये । यह सम्भव नहीं कि वसिष्ठ विश्वामित्र आदिकों को देख तब नयनादिकों को वसिष्ठादि कहने लगे हों किन्तु वेदों के नामों को लेकर पीछे ये नाम सब मनुष्यों के रक्खे गये हैं इसी प्रकार नदी प्रभृतियों के नाम भी वैदिक नामों पर रक्खे गए । शङ्का—इस ऋचा में असिक्नी, वितस्ता और सुसोमा ये तीन नाम भी तो आए हैं ! पुनः सात ही नदियां कैसे कही जातीं ।

समाधान—ये तीनों श्रेणीवाचक शब्द हैं। पृथक् पृथक् किसी नदी का नाम नहीं क्योंकि असिक्नी शब्दार्थ अशुक्ला अर्थात् कृष्णा, तामसी। वितस्ता शब्दार्थ विवृद्धा राजसी और सुसोमाशब्दार्थ सुसौम्या सात्विकी है अर्थात् ये सप्तेन्द्रिय उत्तम, मध्यम और अधम भेद से २१ प्रकार के हैं। इसी कारण अन्यान्य ऋचाओं में ३×७=२१ नदियों की चर्चा देखते हैं यथा—

त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपः ऋग् १०।६४।८
प्र सप्त सप्त त्रेधाहि चक्रमुः। ऋग् १०।७५।१।

नदी सम्बन्धी दो घटनायें

वसिष्ठ और नदियां—मैं अब नदियों के सम्बन्ध में केवल दो ऋषियों की घटनायें दिखलाता हूं इससे पता लगेगा कि यह केवल रूपकालङ्कारमात्र है। निरुक्त दैवतकाण्ड अ० ३।२६ में यास्क कहते हैं।

आर्जीकीयां विपाडित्याहुः।……पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्विपाडित्युच्यते।

आर्जीकीया को विपाट् को विपाट् कहते हैं क्योंकि मरने की इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पाश (फांस) इसी में टूटे थे॥ विपाट् को पौराणिक भाषा में विपाशा नदी भी कहते हैं। महाभारत के आदिपर्व में विश्वामित्र और वसिष्ठ की संग्राम सम्बन्धी अति विचित्र कथा लिखी हुई है। गौ के कारण इन दोनों में महाकलह उत्पन्न हुआ। एक समय की बात है कि वसिष्ठ के प्रायः सब सन्तानों को विश्वामित्र ने मरवा दिया। इस शोक में वसिष्ठजी अपने शरीर को पाशों से खूब मजबूत बांध किसी एक नदी में मरणार्थ गिर गये वह नदी ऋषि के सब पाशों को तोड़ स्थल में ले आई। अपनें में उन को डूबनें नहीं दिया। यह विचित्र लीला देख उस नदी का नाम विपाशा रख ऋषि आगे चले। पुनः मरने की इच्छा से किसी दूसरी नदी में जा गिरे। वह नदी भी शतमुख हो इधर उधर भाग गई। ऋषि को अपने में न मरने दिया। अतः उस नदी का नाम शतद्रु हुआ ! प्रमाण—

ततः पाशैस्तदात्मानं गाढं बध्वा महामुनिः। तस्या जले महानद्या निममज्ज सुदुःखितः॥
अथ छित्वा नदी पाशांस्तस्यारिबलसूदन। स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत्॥
……सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा। शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता॥
महा० आदि पर्व। अ० १७६॥

समीक्षा—प्रथम यहां देखते हैं कि वेद में शुतुद्री शब्द है उसको महाभारत ने शतद्रु बनाया। अब वसिष्ठ शरीर को दृढ़तर बांध नदी में कूद पड़ते किन्तु नदी इनके पाशों को तोड़ तट पर ले आती। इसी प्रकार मुमूर्षु ऋषि को देख नदी भाग जाती। इस का क्या भाव है ? क्या नदी कोई चेतन है जो इस तरह समझती ? नहीं। नदी चेतन नहीं। नदी ऐसा काम नहीं कर सकती। यह केवल आलङ्कारिक वर्णन है। ईश्वरोपासक का नाम यहाँ वसिष्ठ है। ये इन्द्रिय ही नदियां है। उत्तम बुद्धि ही यहां नन्दिनी धेनु है। विश्वामित्र—जगत् का अमित्र, शत्रु, अविवेक, अज्ञान, लोभ, मोह आदि विश्वामित्र हैं (यहां ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य्य नहीं है। ऋषि अर्थ में विश्वमित्र को ही विश्वामित्र कहते हैं) ईश्वरभक्तों को प्रथम अविद्या, अज्ञान, लोभ, मोह आदि बहुत तंग करते हैं।

इन की गोरूपा बुद्धि को हरण करना चाहते हैं। कोई उपासक बहुत विघ्न देख आत्मघात करना चाहता। विवेक मना करता है कि ऐसा मत करो। मानो, हम सब इन्द्रिय समझाते हैं कि तुम चिन्ता मत करो। अब हम सब तुम्हें क्लेशित न करेंगे तुम अब सिद्ध हो गए। समाहित हो ईश्वर की ओर जाओ। उपासक घबराता है और इन्द्रिय समझाते हैं। धीरे-धीरे इन्द्रिय वश में आते जाते हैं इसी घटना को विश्वामित्र और वसिष्ठ दो नाम मानकर कवि वर्णन करता है। इस से भी सिद्ध है कि यह किस बाह्य नदी का वर्णन नहीं। क्या ऐसी घटनाएं आप लोगों के जीवन में नहीं होती॥

नदी और विश्वामित्र—यास्क शौनक आदि ऐसी कथा कहते आये हैं कि एक समय पैजवन सुदा राजा के पुरोहित विश्वामित्र हुए। वहां से बहुत धन लेकर विपाट् (विपाशा) और शुतुद्री के संगम पर आये। इन के पीछे-पीछे लूटने को डाकू भी पहुंचे। विश्वामित्र इस असमंजस को देख शीघ्र पार उतारने के लिये नदियों को पुकार-पुकार कहने लगे। हे नदियो! तुम गाधा अर्थात् पार उतरने योग्य हो जावो इत्यादि। इस समय विश्वामित्र और नदियों में जो संवाद हुआ है वह कई एक ऋचाओं में वर्णित है कुछ ऋचाएं मैं यहां उद्धृत करता हूं॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्त्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति॥ ३।३३।४॥

(एना पयसा पिन्वमानाः) इस धारा से सींचती हुई (वयम् देवकृतम् योनिम् अनु चरन्तीः) हम नदियाँ देवकृतस्थान को जा रही हैं (सर्गतक्तः प्रसवः न वर्त्तवे) उन हम सब का आदि काल से प्रवृत्त जो उद्योग है वह निवृत्त के लिये नहीं है अर्थात् हम नदियां कदापि ठहर नहीं सकतीं। तब (किंयुः विप्रः नद्यः जोहवीति) किस इच्छा से यह विप्र नदियों को पुकार रहा है॥ ४॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्त्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥ ३।३३। ५॥

विश्वामित्र कहते हैं कि (ऋतावरीः) हे जलपरिपूर्ण नदियो! (मे सोम्याय वचसे) मेरे सुन्दर वचन के लिये (एवैः मुहूर्त्तम् उपरमध्वम्) अपने गमन से मुहूर्त्त मात्र ठहर जावें (बृहती मनीषा अवस्युः) बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति कर के रक्षा चाहने हारा (कुशिकस्य सूनुः) यह कुशिक का पुत्र (सिन्धुम् अच्छा प्र अह्वे) सिन्धु को जोर से पुकार रहा हूं॥

इन्द्रोऽस्माँ अरदद् वज्रबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः। ६।
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानाऽऽयन्नापोऽयनमिच्छमानाः॥७॥

नदियां कहती हैं हे विश्वामित्र! (वज्रबाहुः इन्द्रः अस्मान् अरदद्) वज्रबाहु इन्द्र ने हमको खोदकर तैयार किया है (नदीनाम् परिधिम् वृत्रम् अपाहन्) नदियों के चारों तरफ घेरे हुए वृत्र का इन्द्र ने हनन किया (सविता सुपाणिः देवः अनयत्) वह प्रेरक सुपाणि इन्द्रदेव ही हमको लेकर आया है

अर्थात् वृत्रको मार इन्द्र हमारी रक्षा किया करता है (तस्य प्रसवे उर्वीः वयम् यामः) उसी की आज्ञा के ऊपर हम जलसे पूर्ण हो जा रही हैं। हे कुशिकपुत्र विश्वामित्र! तब आपकी आज्ञा मानकर कैसे ठहरें (इन्द्रस्य तद् वीर्यम् कर्म्म शश्वधा प्रवाच्यम्) इन्द्र के उस वीर्य्य और कर्म्म को सदा कहना चाहिये (यद् अहिम् विवृश्चत्) जो यह इन्द्र अहि को काटा करता है (वज्रेण परिषदः विजघान) और जो वज्र से चारों तरफ बैठे हुए प्रतिबन्धकारियों का हनन किया करता है जिसके मरने से (अयनम् इच्छामानाः आपः आयन्) अपने स्थान को चाहनेहारी ये नदियां सुख से जा रही हैं।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥ ९॥

पुनः विश्वामित्र कहते हैं कि (स्वसारः सिन्धवः) ऐ भगिनी नदियो! (कारवे) स्तोत्र करनेहारे मेरे वचन को (ओ+सु...शृणोत) अच्छे प्रकार श्रवण कीजिये (दूरात् अनसा रथेन वः ययौ) दूर प्रदेश से मैं शकट और रथ के द्वारा आपके निकट आया हूं इस कारण (नि+सु+नमध्वम्) आप सब तरह से नम्र होजांय (सुपाराः भवत) सुन्दर पार होने योग होवें (स्रोत्याभिः अधोअक्षाः) धाराओं से पहिये के नीचे हो जांय॥ ९॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्य्यायेव कन्या शश्वचै ते॥ १०॥

नदियां कहती हैं (कारो) हे स्तोत्रकर्त्ता ऋषे! ते वचांसि आ शृणवाम) तेरे वचनों को अब हम सब अच्छी तरह सुन रही हैं। (अनसा रथेन ययाथ) शकट और रथ के द्वारा चले जाइये क्योंकि आप (दूराद्) दूर से आए हुए हैं (ते नि नंसै) आपके लिये हम नीचे हो जाती हैं (पीप्याना इव योषा) जैसे पुत्र को दूध पिलाती हुई माता झुक जाती है (कन्या मर्याय इव शश्वचै) जैसे कन्या पिता भ्राता आदि मनुष्य के निकट नम्र होती है तद्वत् (ते) आपके लिये हम नदियां झुक जाती हैं। आप पार उतर जांय॥ १०॥

व्याख्या—यह संवाद अति मनोहर है। एक ओर नदियां कहती हैं कि हम सब इन्द्रकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगी। हमारे प्रतिबन्धक वृत्र और अहि को मार के यह देव हमको संकट से बचा लेता है इसके कर्म्म अद्भुत हैं। इस की कृपा से स्वतन्त्र हो स्वेच्छानुसार हम अपने नियोग कर रही हैं। यह कौन विप्र है जो हमें रोकके कुछ सुनाना चाहता है हमें इतनों कब छुट्टी कि अपनी गति को रोक इसकी बात सुनें। इत्यादि। दूसरी ओर ऋषि विश्वामित्र जोर से चिल्ला के कहते हैं ऐ नदियो! आप मेरी स्वसाए अर्थात् बहिनें हैं। केवल एक मुहूर्त ठहरें। मेरे इस सुन्दर यज्ञिय वचन को सुन लेवें। मैं बहुत दूर से आया हूं। अब यदि आप कुछ नम्र न होंगी इसी तरह आगाधा रहेंगी तो मैं नष्ट होजाऊंगा। देखिये बहिनो! मैं कारु अर्थात् स्तोत्रकर्त्ता हूं आप को स्तुति सुनाया करता हूं मैं भी कुशिक का पुत्र हूं इस सम्बन्ध को देख के भी मुझ पर दया कीजिये। ऐसे विलपते हुए ऋषि को देख नदियों को दया आती है और परितुष्ट होके कहती हैं कि हे ऋषे! जाइये पार हो जाइये आप के लिये हम गाधा हो जाती हैं इसके आगे यह कथा है कि ऋषि सब को प्रथम पार उतार नदियों को धन्यवाद दे

स्वयं भी पार उतर जाते हैं। इस संवाद का क्या आशय है? क्या सचमुच ऋषि से नदियां बोली? क्या विश्वामित्र पागल थे जो जड़ नदियों को पुकार-पुकार अपनी बातें सुनाने लगे। या नदियां पूर्वकाल में मनुष्यवत् बोला करती थीं। ऐसी कथा से वेद का क्या आशय है? समाधान—इस का भाव विस्पष्ट है न नदियां चेतन थीं न यह संवाद किन्हीं विशेष नदियों और ऋषि का है। यह भी इसी इन्द्रियों का वर्णन है इन्द्र=जीवात्मा। विश्वामित्र=विश्वमित्र अपना और प्राणीमात्रका जो मित्र हो वह विश्वामित्र। कुशिक—प्रकाशकर्त्ता परमात्मा वा जीव॥ अत्र आशय इसका यह हुआ कि सर्वहितकारी जो उपासक है वह जब साधनसम्पन्न होता है तब बीच-बीच में अनेक विघ्न उपस्थित होने लगते हैं उस समय उपासक घबरा जाता है। विघ्न करने हारे कौन हैं? निस्सन्देह ये इन्द्रियगण ही हैं। जैसे नदियां जलपरिपूर्ण हो अपनी विभूतियां दिखलाती हुईं बहती हैं वैसे विषय वासनारूप जलों से परिपूर्ण हो ये इन्द्रियगण इधर उधर बराबर दौड़ते रहते हैं। उस समय यह उपासक कहता है कि ऐ इन्द्रियों! मेरा वचन सुनो तुम मुझे पार उतार दो। तुम ऐसे उद्धत मत होओ। नम्र हो जाओ मैं भी उसी परमात्मा वा जीवात्मा का पुत्र हूं। मुझे तुम क्यों क्लेश देते हो। इस प्रकार जो उपासक सदा इन्द्रियों को समझाता रहता निःसन्देह उसके लिये ये इन्द्रियगण नम्र हो जाते। वह उपासक इस शरीररूप रथ पर चढ़ कर पार उतर जाता। यदि कहा जाय कि इन्द्रियगण भी तो जड़ हैं उनको ही समझाने से कौन लाभ हो सकता है? समाधान—इन्द्रियों को अथवा मनको समझाना तो अपने को ही समझाना है यह विचारकर देखिये। यह मानव स्वभाव है कि होनहार मनुष्य अपने आप को सदा समझाता बुझाता है। यह इन्द्रियों का ही वर्णन है क्योंकि पूर्व में कहा गया है कि वृत्र अहि आदि असुरों को मार इन्द्र नदियों को बहने के लिये प्रेरित करता है इत्यादि। यहाँ वे ही नदियां कहती हैं कि हम इन्द्रकी आज्ञा को मानती हैं उसी की कीर्ति गाती हैं। वह वृत्रको मार हमारी रक्षा करता है इत्यादि। अनेक समानताओं से सिद्ध है कि यह वर्णन भी इन्द्रियों का है। पश्चात् कुशिकस्य सूनुः=विश्वामित्र आदि पद देख ऐतिहासिकों ने विविध गाथाएं कल्पित की हैं। मामतेय ऋषि दीर्घतमा की भी ऐसी ही आख्यायिका है॥

गङ्गा की उत्पत्ति—यह गाथा भी परार्थसूचक है। सगर=जलयुक्त आकाश का नाम है निघण्टु १।३। पृथिवी पर की छोटी-छोटी नदियां सगरपुत्र हैं। सूर्य का नाम भगीरथ है। तेजोरूप महान् ऐश्वर्य्ययुक्त जिस का रथ हो। वेदों में आकाश पुत्र सूर्य माना गया है। कपिल अग्नि का नाम है अर्थात् ग्रीष्मऋतु ही कपिल है अतएव पुराणों में कपिल को अग्न्यवतार भी मानते हैं। पर्जन्य (मेघ) देव का नाम रुद्र है। ग्रीष्मऋतुरूप कपिल जब सगर पुत्रों को दग्ध कर देता तब सगर शोकसंतप्त हो मानो, पुत्रों के उद्धारके लिये उपाय सोचता है। तब सगर वंशोद्भव भगीरथ (सूर्य) पर्ज्जन्य देव को प्रसन्न कर अर्थात् मेघों को बनाकर महती जलधारारूप गङ्गा को पृथिवी पर छोड़ता है पुनः नदियां जलों से भर जाती हैं। यही सगरपुत्रों का उद्धार है। मानो, सगर अर्थात् आकाश का पुत्र यह पृथिवीस्थ समुद्र है अतः इसको सागर कहते हैं (सगरस्य अपत्यम्) त्रिदेवनिर्णय में विस्तार से वर्णित कथा को देखिये। क्या ही आश्चर्य की बात है क्या था और अब क्या हो गया। हे भगवन्? इस महापरिवर्त्तन के कारण भी तो आप ही हैं!

लोक और सप्त पाताल—यह जो केवल चौदह खण्डयुक्त शरीर का विवरण था अब चौदह लोक बन गए। हजारों श्लोकों में इनका पुराण वर्णन करते हैं। विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में बहुत विस्तार से सप्त लोक की चर्चा आई है। पृथिवी से लेकर उपरिष्ठ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एवं भूमि के नीचे सम्पूर्ण प्रदेश को सात-सात भागों में बांटते हैं। ऊपर के भागों के क्रम से ये नाम हैं—भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् और नीचे के भाग अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महातल, सुतल, और पाताल। परन्तु भागवत के अनुसार अतल, वितल, सुतल, तलातल महातल रसातल, पाताल कहाते हैं। ये भूः भुवः इत्यादि लोक यही नयनादि सप्तेन्द्रिय हैं। अभीतक सन्ध्या के प्राणायाम काल में ये सातों पढ़े जाते हैं। प्राणों के आयाम=व्यायाम को प्राणायाम कहते हैं। प्राण नाम इन्द्रियों का है यह प्रसिद्ध है। इन्हीं सातों इन्द्रियों को योग्य बनाने के लिये प्राणायाम किया जाता है। प्राणायाम से ये सप्तक वशीभूत हो अपने योग्य कार्य में लगते हैं अन्यथा उच्छृंखल हो उपासक को भ्रष्ट करते हैं। विचारने की बात है कि प्राणायाम काल में ये सात प्रणव क्यों पढ़े जाते। इससे सिद्ध है कि यह सप्तेन्द्रियमात्र का वर्णन है। ये ईश्वर के नाम भी हैं। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए इन सातों को अपने वश में लावें यही प्राणायाम का उद्देश है। अब जो नीचे सप्त लोक माने जाते हैं वे दो हस्त, दो चरण, मलेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय और गर्दन से लेकर कटिपर्यन्त एक भाग ये ही सात हैं। इसीका नाम चतुर्दश भुवन है। अन्य चतुर्दश भुवन कोई नहीं। जिज्ञासुपुरुषो! नियत संख्यात पदार्थ की ओर आइये। अनियत की ओर मत जाइये। शरीर में ये चतुर्दश स्थान नियत हैं किन्तु इस विश्व में चतुर्दश स्थान कोई नियत नहीं। इस में अनन्त लोक, अनन्त भुवन हैं। इस असीम जगत् को चतुर्दश ही भागों में कैसे विभक्त कर सकते। अतः शरीरस्थ दो नयन, दो कर्ण दो घ्राण, एक मुख ये ऊपर के सप्तलोक और दो हस्त, दो चरण, एक गुदा, एक मेढ्र और एक मध्य शरीर ये सप्त अधःस्थित लोक हैं। यह शरीर ही सुमेरु अर्थात् शोभन प्रकार से मरनेहारा पर्वत है इसी के शिखर पर इधर उधर सब भुवन हैं। इसी सुमेरु नामधारी शरीर के चारों तरफ नयनाधिष्ठाता सूर्य, मनोऽधिष्ठाता चन्द्रमा, कर्णाधिष्ठाता वायु आदि सब देव परिक्रमा कर रहे हैं। इसी को अच्छे प्रकार जानने से सर्वलाभ होता है यह कवि का भाव है। जो इस बाह्य जगत् में १४ भुवन खोजते हैं वे निस्सन्देह अज्ञानी हैं वे संस्कृत साहित्य से सर्वथा विमुख हैं। पुराण कहते हैं—

> भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च ।
> सत्यलोकश्च सप्तैते लोका उपरि कीर्त्तिताः ॥

पुनः कहते हैं जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर ये सप्त द्वीप हैं। लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध और जल इन सातों पदार्थों का एक-एक सागर है अर्थात् सातों द्वीपों के चारों तरफ सात सागर हैं। इसी प्रकार सप्त पर्वत, सप्त नदियां, सप्त गङ्गाएं इत्यादि अनेक सप्तक पुराण गाते हैं! सुमेरु को मध्य में मानते हैं "इह हि मेरुगिरिः किल मध्यगः कनकरत्नमयस्त्रिदशालयः" यदि पौराणिकों से पूछा जाय कि वे सप्त लोक, सप्त पाताल वा सप्त पर्वत, वा सप्त सागर आदि सप्तकगण कहां हैं तो वे कुछ नहीं समाधान करसकते क्योंकि बाह्य जगत् का वर्णन यह नहीं।

इसी शरीरका सुमेरु नाम रख इस पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना दिखलाई गई है। पुराणों के सहस्रों श्लोक इसी भावको दिखलाते हैं। किन्तु अज्ञानी जन नहीं समझते।

सप्त नरक—दुष्कर्म्म महा महापातकों के करने से येही सप्तेन्द्रिय सप्त नरक बन जाते हैं। धीरे-धीरे पश्चात् सप्त नरक स्थान इस शरीर से पृथक् कल्पित हुए "स्मरन्ति च—अपि च सप्त १५। वेदान्तसूत्र अ० ३। पा० १। इन सूत्रों का अर्थ शङ्कराचार्य्य करते हैं कि व्यासदिकों की स्मृतियों में रौरव आदि सप्तनरक उक्त हैं। पीछे उत्तम मध्यम और अधम भेद से ७×३=२१ नरक माने गये, यथा—"तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति" भा० ५। २६॥ भागवत कहता है कि कोई २१ नरक गिनते हैं वे ये हैं १-तामिस्र २-अन्धतामिस्र, ३-रौरव, ४-महारौरव, ५—कुंभीपाक, ६-कालसूत्र, ७-असिपत्रवन, ८—सूकरमुख, ९—अन्धकूप १० कृमिभोजन ११-संदंश, १२-तप्तभूमि, १३—वज्रकण्टक, शाल्मलि, १४-वैतरणी, १५-पूयोद, १६—प्राणरोध, १७-विशसन, १८—लालाभक्ष, १९—सारमेयादन, २०-अवीची, २१-अयःपान। वे कहते हैं कि वहाँ यमराज चित्रगुप्त के साथ विराजमान हैं इत्यादि। परन्तु यह भी शरीर का ही वर्णन है। अहोरात्ररूप महाकाल ही यम है क्योंकि पुराणों में कहा गया है कि सूर्य का पुत्र यम है निःसन्देह अहोरात्र ही सूर्य का पुत्र यम है श्राद्धनिर्णय में इसका वर्णन देखिये! रात्रि यमी और दिन यम है। मन ही चित्रगुप्त है क्योंकि मनही गुप्त रीति से शुभाशुभ सब कर्मों को लिखता रहता है जो कुछ मनुष्य करता है उसका फोटो मन पर खिंच जाता है। यह मन एक अद्भुत पदार्थ है। ये सप्तेन्द्रिय-युक्त शरीर ही स्वर्ग वा नरक है अन्य नहीं। क्या इसी शरीर से नाना यातनाओं को लोग भोग नहीं रहे हैं?

अनेक सप्तकगण—यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि वेदों में सूर्य सप्तरश्मि, सप्तकिरण कहा गया है। किरणों में सात प्रकार के रङ्ग है। अतः सूर्य सप्तकिरण है। पश्चात् अज्ञानी जन सूर्य के रथ में सचमुच सात घोड़े मानने लगे। सूर्यवत् यह जीवात्मा भी सप्तरश्मि है। नयनादि कही इसके किरण हैं। एवं परमात्मा ने गायत्री, अनुष्टुप् आदि सप्त छन्दों में वेदों का उपदेश किया है। सूर्य और जीव के सप्तकिरण लेके धीरे-धीरे अनेक सप्तक बनते गये। रवि, सोम आदि दिन भी सप्त माने गये हैं। निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत, और पञ्चम ये सप्तगान स्वर हैं। व्याकरण में प्रथमा, द्वितीया आदि सप्त विभक्तियां हैं इसी प्रकार सप्त पाकयज्ञ, सप्त हविर्यज्ञ, सप्त सुत्य आदि हैं।

इन्द्र देव—मैंने इस लेख में लिखा है कि जीवात्मा का नाम इन्द्र है। यद्यपि यह शब्द अनेकार्थक है तथापि ऐसे प्रकरण में जीवात्मा को इन्द्र कहते हैं। वेदों के पढ़ने से प्रतीत होता है कि सूर्य और जीवात्मा के अर्थ में इसके भूरि भूरि प्रयोग हुए हैं १—नाम, २-कर्म, ३-और परिवार से इन्द्र जीवात्मा सिद्ध होता है १—इन्द्रिय=इन्द्र शब्द से इन्द्रिय बनता है। महर्षि पाणिनि कहते हैं कि—इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा। सू० ५।२।९३। इन्द्रिय शब्द के इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट इन्द्रजुष्ट इन्द्रदत्त ये पांच अर्थ हैं "इन्द्र आत्मा तस्य लिङ्गमिन्द्रियम्" इत्यादि। इन्द्र—

जीवात्मा इसका सूचक इन्द्रिय है अर्थात् नयनादियों के अस्तित्व से जीवात्मा के अस्तित्व का पता लगता है अतः नयनादिकों को इन्द्रिय कहते हैं इसी प्रकार इन्द्रदृष्ट आदि का अर्थ समझिये। शतक्रतु=जिसके नानाकर्म्म हैं " शतं क्रतवः कर्माणि यस्य " अथवा जीवात्मा के जो १०० वर्ष की आयु है वे ही क्रतु अर्थात् यज्ञ है। जिसके जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त १०० वर्ष जिसका शुद्ध जीवन बीता है वही यथार्थ इन्द्र है। अतः पुराणों में कहा गया है कि जो १०० यज्ञ करता है वह इन्द्र होता है। ठीक है। निश्चय जिसकी सम्पूर्ण आयु जो १०० वर्ष की है शुद्धता से बीत रही है वही जीवात्मा इन्द्रपदधारी होगा। क्योंकि "इदि परमैश्वर्य्ये" परमैश्वर्य्यशालीको इन्द्र कहते हैं। पश्चात् जब इन्द्र एक पृथक् देव माना गया तो इसके ऊपर यह लांछन लगाया कि यह इन्द्र किसी को १०० यज्ञ करने ही नहीं देता, घोड़ा चुराकर यज्ञ में विघ्न डाल देता। मरुत्वान्=मरुत्=वायु=प्राण। इन्द्र के ४९ वायु साथी हैं। यह सिद्ध करता है कि जीवात्मा का ही नाम इन्द्र है। इसी प्रकार अन्यान्य नाम भी इसी अर्थ के सूचक हैं।

इन्द्र और ४९ मरुत्—महाभारत वाल्मीकीय रामायण और भागवत आदिक ग्रन्थों में लिखा है कि देवासुर संग्राम में पुत्रों के मरने से परम दुःखिता दिति देवी एक दिन स्वामी कश्यपजी से प्रार्थना कर बोली कि इन्द्रहन्ता एक पुत्र मुझे दीजिए! कश्यपजी ने कहा कि एक वर्ष नियम धारण कीजिये वैसा ही एक पुत्र होगा। दिति व्रत करने लगी। इन्द्र ने यह खबर सुन एक दिन दिति को अशुचि जान पेट में प्रवेश कर उदरस्थ बालक के सात टुकड़े कर दिये। पुनः एक एक के सात सात टुकड़े किये वह बच्चा पेट में रोने लग, इन्द्र ने कहा कि मा रुदिहि मा रुदिहि "मत रोओ, मत रोओ। अतः उसका नाम मरुत् वा मारुत हुआ। दिति ने यह साहस देख प्रसन्न हो इन्द्र से कहा कि तुम्हारे ये भाई हैं अपने साथ इन्हें भी रक्खो। इन्द्र ने भी इसे स्वीकार किया। तब से ४९ वायु इन्द्र के गण हुए इन्द्र मरुत्वान् कहलाने लगा। यह ऐतिहासिक कल्पना है। प्रमाण—

> चकर्त्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम्।
> रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान् पुनः। भागवत ६।१८॥

समीक्षा—मा रोदीः मा रोदीः वा मा रुदिहि मा रुदिहि इत्यादि कथन से मरुत् यह नाम नहीं हुआ किन्तु यह मर मर शब्द करनेहारा है वा मारनेहारा है क्योंकि प्राण वायु के निकलने से ही आदमी मृतक समझा जाता है। समष्टि अर्थात् समुदाय ब्रह्माण्ड का नाम अदिति है (न+दिति=अखण्ड, समुदाय, अविनाश) और व्यष्टि अर्थात् पृथक् पृथक् मनुष्य पश्वादि शरीर दिति हैं (दिति=खण्ड, विनाश) प्रत्येक माता दिति है। जब गर्भ रहता तब एक ही समुदाय प्राणवायु उस जलीय गर्भ के साथ रहता है। आत्मा के प्रवेश होते ही अङ्ग प्रत्यङ्ग बन के वही प्राण सात हिस्सों में विभक्त हो नयनादि सात बन जाता है। पश्चात् एक एक नयनादिकों के जो अनन्त विषय हैं उनको ७×७=४९ उनचास नाम देते हैं यह एक वर्णन करने की प्राचीन शैली है। इस आख्यान से विस्पष्टतया सिद्ध है कि यह जीवात्मा का ही वर्णन है। क्योंकि सात नियत संख्यायें इसी शरीर में हैं इसी में जीवात्मा के प्रवेश से एक प्राण सात होते हैं और पुनः ग्रहणीय विषय करके ७×७=४९ होते हैं बाह्य जगत्

में कोई ४९ मरुद्गण नहीं। विस्तार से वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में देखिये। इस कर्म्म से भी सिद्ध है कि जीवात्मा ही इन्द्र है। पुनः—

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयः स्पृधः॥

चारों वेदों में यह ऋचा आई है (इन्द्र अपां फेनेन) हे इन्द्र! आप जल के फेन से (नमुचेः शिरः उदवर्त्तयः) नमुचि नाम के असुर के शिर को काट लेते हैं। कब? (यद्) जब विश्वाः स्पृधः अजयः) सम्पूर्ण स्पर्धमान आसुरी सेनाओं को जीतते हैं। इस पर शतपथ ब्राह्मण कहता है—

इन्द्रियस्येन्द्रियमन्नस्य रसं सोमस्य भक्षं सुरयाऽसुरो नमुचिरहरत् सोऽश्विनौ च सरस्वतीं चोपाधावत्। शेपानोऽस्मि नमुचये न त्वा दिवा न नक्तं हनानि। न दण्डेन न धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न शुष्केण नार्द्रेण अथ म इद महार्षीदिदं म आजिहीर्षथेति"। शत० ब्रा० १२।७।३।१॥

असुर नमुचि ने सुरा पिलाकर इन्द्र के ऐश्वर्य, अन्न के रस और सोमयज्ञ के भक्ष का हरण कर लिया! तब अश्विद्वय और सरस्वती के निकट जा के इन्द्र बोला कि मैंने नमुचि को वर दिया कि न दिन में न रात्रि में तुम्हें मारूंगा न दण्ड से न धनुष् न मुष्टि से न शुष्क न आर्द्र अर्थात् किसी अस्त्र से मैं तुम्हें न मारूंगा। इसने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया। हे देवो! मेरी रक्षा कीजिये। तब अश्विद्वय और सरस्वती जल के फेन को वज्र बना इन्द्र को दे बोले कि यह न शुष्क न आर्द्र है। प्रातःकाल को न दिन न रात्रि है उस समय इससे उसको मार दो। इन्द्र ने भी वैसा ही किया।

यह आख्यान भी सूचित करता है कि जीवात्मा का ही नाम इन्द्र है क्योंकि "पाप्मा वै नमुचिः।" शत० ब्रा० १२।७॥ पाप, अज्ञान, अविद्या, अन्धकार का नाम नमुचि है। "नमुञ्चति न त्यजतीति नमुचिः" इस जीवात्मा को अज्ञान वा पाप कभी नहीं छोड़ता अतः अज्ञानपाप का नाम नमुचि है। "नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ६।३।७५॥ सूत्रानुसार नमुचि सिद्ध होता है। यह नमुचि जीवात्मा की सुरा अर्थात् मदकारी पदार्थों के द्वारा मोहित कर भोगविलास में फंसा सब हरण कर लेता। पहिले जीव को भोगविलास—अतिमनोहर मालूम होते। महादुर्व्यसन में फंसना ही नमुचि का इन्द्र द्वारा वर पाना है। यह पापरूप महासुर जीव को त्रिभुवन से गिरा देता है। वही इन्द्र का त्रिलोकीराज्य से भ्रष्ट होना है। जब पुनः नाना दुःख क्लेश यातना पाके किञ्चित् विवेक होता तो घबराकर वह इन्द्र अश्विद्वय और सरस्वती के निकट पहुंचता। अहोरात्रकाल वा तेजोऽन्धकार मिश्रित प्रातः काल ही अश्विद्वय और विद्या ही सरस्वती है अर्थात् जब जीवात्मा विद्या ज्ञान विवेक आदिकों का अभ्यास करता हुआ प्रातः काल ईश्वर का चिन्तन करता है तब पापों से छूटने लगता है। विद्याएं, विवेक और प्रातःकाल के विचार इस उपासक को शुभ कर्म्म की ओर ले जाते हैं। शुभ कर्म्मों का सम्पादन करना ही आप् (जल) है। वेदों में आप् शुभकर्म्म का उपलक्षक होता है शुभकर्म्म करते करते इसको ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यही अपांफेन हैं। इस ज्ञानरूप महावज्र से प्रातःकाल अर्थात् ईश्वर के चिन्तन के परमोत्तम समय में प्रतिदिन नमुचि को पछाड़ना शुरू करता है। धीरे धीरे नमुचि के काम, लोभ, दुर्व्यसन, अज्ञान आदि गणों

को मारकर इसे भी हनन कर इन्द्र निश्चिन्त हो पूजित होने लगता है। यही इस ऋचा और आख्यान का आशय है। आप पण्डित महाशय इसे विचारें।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥ ऋग् १।८४।१३॥

यह ऋचा भी सब वेदों में आई है (अप्रतिष्कुतः इन्द्रः) अधर्षणीय अजेतव्य इन्द्र (दधीचः अस्थभिः) दध्यङ् ऋषि की हड्डियों से (नवतीः नव वृत्राणि) ९० और ९ वृत्रों को (जघान) हनन करता है। अस्थभिः=छन्दस्यपि दृश्यते इति अनजादावपि अस्थिशब्दस्य अनङादेशः।

व्याख्या—यह आख्यान भी इसी अर्थ का साधक है। वेदों में दध्यङ् और अन्यान्य ग्रन्थों में दध्यङ् और दधीचि दोनों पाठ आते हैं। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर तुलसीदास के रामायण पर्य्यन्त दधीचि की हड्डी से इन्द्र ने असुरों को मारा है यह गाथा गाई गई है। इसके पृष्ठ १०-११ में ९९ नदियों से इन्द्र पार होता है यह कहा गया है। यहाँ ९०+९=९९ वृत्रों की चर्चा देखते हैं वे वृत्र कौन हैं ? इसके रहस्य के जाने बिना इसका आशय प्रगट नहीं होता। आवरणशील मेघ, अज्ञान अन्धकार, पाप आदिकों को वृत्र कहते हैं। वे ९९ हैं। क्यों ? देवों की ३३ संख्या है यह विदित ही है। ये मनसहित एकादश इन्द्रिय उत्तम, मध्यम, अधम भेद से ३३ होते हैं। और ३३×३=९९ हैं। वेदों की एक यह शैली है कि दुष्टों की संख्या त्रिगुण अधिक दिखलाते हैं, जैसे वेदों में कहा है कि इन्द्र द्विनेत्र एक शिरस्क है किन्तु वृत्र षडक्ष (छः आंखवाला) और त्रिशीर्षा तीन शिर वाला है। अतः देवों अर्थात् शुभ इन्द्रियों की संख्या ३३ है और तद्विपरीत असुरकी के ९९ हैं अर्थात् मनुष्य में यदि शुभ कर्म्म करने की शक्ति एक है तो अशुभ कर्म्म करने की शक्ति तीन हैं। इसी भाव को ९९ यह संख्या दिखलाती है। दध्यङ् यह नाम ज्ञानी पुरुषों का है (दधातीति दधिर्धाता परमात्मा तमञ्चतीति दध्यङ्) अस्थि=विद्वानों की निकाली हुई विविध विद्यायें। विद्वानों को हड्डी भी काम आती है। यह कहावत लोक में सुप्रसिद्ध है। इन्द्र=जीवात्मा। वृत्र अर्थात् नाना पाप अज्ञान जब इन्द्र (जीवात्मा) को घेर कर विवश कर लेते हैं तब यह उद्विग्न हो विद्वानों के निकट जाता है उनसे शिक्षाए पाके मानो उन शिक्षाओं को ही अपना परमास्त्र बना वृत्रों को मार देता है। वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में विस्तार से वर्णित कथा को देखिये।

इन्द्र और संग्राम—यह भी इसी अर्थ का द्योतक है। वेदों में इन्द्र का मुख्य कार्य्य संग्राम करना और विजय के द्वारा देवों व भक्तों को लाभ पहुंचाना है। इसके वृत्र, नमुचि, शम्बर, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वल, अर्बुद, वर्चो, कुयव आदि अनेक शत्रु हैं "शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदाऽवधीर्वि पुरः शम्बरस्य। ऋग् १।१०३।८॥ इसी एक ऋचा में अनेक नाम आये हैं जिनको इन्द्र मारा करता है। जब देवगण यज्ञों में इन्द्र को अभिषिक्त करके यज्ञों के विविध भाग देते हैं तब वह बलिष्ठ हो निखिल असुरों का निपात करता है। इस वर्णन का भी भाव यह है। जब जीवात्मा शुभकर्म्मों में प्रवृत्त होता है तब ही पापरूप महान् असुरों को अपने निकट नहीं आने देता। यही इसका विजय है। **इन्द्र के परिवार**—शची इन्द्र की स्त्री मानी जाती है। कर्म्म और प्रज्ञा का नाम भी शची है निघण्टु २।१ और ३।९॥ जीवात्मा के कर्म अर्थात् प्रयत्न और ज्ञान ये दोनों मुख्य गुण हैं। अतः इन्द्र की

की स्त्री शची कहाती है। इन्द्राणी —इन्द्र की स्त्री ऐसे ऐसे स्थानों में शक्ति व गुण अर्थ में स्त्री शब्द का प्रयोग है। शची और इन्द्राणी शब्द के पाठ वेदों में बहुत हैं:—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगा महमश्रवम्।
नह्यस्या अपरञ्जन जरसा मरते पतिः। सर्वस्मादिन्द्र उत्तरः। १०। ८६।।

इन्द्र का घोड़ा उच्चैः श्रवा है। यह शरीर ही उच्चैःश्रवा है क्योंकि इस मानव शरीर का ही यश उच्च है। श्रव =यश। यह शरीर ही ऐरावत हाथी है क्योंकि यह अन्नमय है वा अन्न से पुष्ट होता है। इरा=अन्न। इत्यादि परिवार के वर्णन से भी इन्द्र जीवात्मा सिद्ध होता है।

इन्द्र और सूर्य्य—सूर्य्य को भी इन्द्र कहते हैं। इस सम्बन्ध में भी अनेकानेक वर्णन आते हैं। सहस्राक्ष, देवराज, स्वर्गाधिपति, मघवा, वृत्रघ्न, मरुत्वान् इत्यादि नामों से सूर्य्य भी पुकारा जाता था।। जब सूर्य्य से भिन्न इन्द्र एक पृथक् देव कल्पित हुआ तब इसके सम्बन्ध में अनेक इतिहास उत्पन्न होने लगे। जैसे इन्द्र को सहस्राक्ष सिद्ध करने के लिये इतिहास गढ़ा गया कि अहल्या को दूषित करते हुए इन्द्र का गौतम ने शाप दिया कि तेरा सम्पूर्ण शरीर विकृत हो जाय पश्चात् इन्द्र के पुनः पुनः विनय करने पर प्रसन्न हो गौतम ने कहा कि रामावतार में तेरा शरीर सहस्र नेत्रों से युक्त होगा। तब ही से इन्द्र सहस्राक्ष कहलाने लगा। अप्सरा— यह नाम और घृताची, मेनका, उर्वशी आदि नाम सूर्य के किरणों के अथवा प्रातःकाल के थे। पश्चात् इन्द्र पृथक् देव होने पर ये सब इन्द्र की वेश्याएं बन गईं। पर्वत, अद्रि, गिरि आदि मेघ के नाम थे। निघण्टु १। १०।। इन्द्र अर्थात् सूर्य्य मेघ को बनाता और विध्वंस भी करता है अतः सूर्य ही पर्वतघ्नपर्वतच्छेदी था। पश्चात् ये सब गुण इन्द्र में आरोपित हुए। इस प्रकार शब्दशास्त्र और संस्कृत साहित्य में महान् परिवर्तन हुआ है। मुझे शोक के साथ लिखना पड़ता है आज भारतवासियों में स्वल्प पुरुष हैं, जो इस महान् परिवर्तन से परिचित हों।

वेद और इतिहास —यद्यपि, मैत्रावरुण वसिष्ठ, कौशिक विश्वामित्र, मामतेय दीर्घतमा, अगस्त्य, लोपामुद्रा, वसिष्ठोर्वशी, उर्वशी पुरुरवा, कूपपतित त्रित, दीर्घतमा शुनःशेप, दधीचि, च्यवन, सोभरि ययाति, नहुष, भरत, रोमशा, अपाला, घोषा आदिकों की चर्चा आती है। परन्तु वेदों के देखने मात्र से प्रतीत हो जाता है कि ये परार्थद्योतक हैं। किन्हीं अनित्यमानव इतिहासों नहीं, इसी प्रकार सप्त सिन्धु, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोमती, गन्धार आदि पद देखकर जो आधुनिक ऐतिहासिक पुरुष अनुमान करते हैं कि वेदों में भारतवर्षीय इन गङ्गा, यमुना आदि नदियों का और कन्धार आदि देशों का वर्णन आता है वे सर्वथा भ्रम में पड़े हुए हैं। सर्वदा सप्त सिन्धु पद क्यों आता है वेद क्योंकर सप्तसिन्धु इस पद पर वारम्वार जोर देते हैं इत्यादि वैदिक संकेत पर यदि इतिहासवित् पुरुष दृष्टि डालेंगे तो उनका सब भ्रम दूर हो जायगा। मैं जगत् के सम्पूर्ण इतिहासप्रिय विद्वानों से निवेदन करता हूं कि मेरे वैदिक व्याख्यानों पर ध्यान देवें और इस शैली से पुनः वेदों का विचार कर देखें कि वेद भगवान् क्या कह रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन पर इस शताब्दी में ऐसा वज्रप्रहार हुआ है कि इनको स्वस्थ होने में बहुत काल लगेगा, यदि सहस्रो-सद्वैद्य विचार कर इनकी दवाई करने लग जायं।

।। इति चतुर्दश-भुवन समाप्तम्।।

वसिष्ठ-नन्दिनी

देश में अनेक त्रुटियां हैं, गवेषणा नहीं की जाती। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा महाभारत, रामायण, पुराणों में बहुत सी ऐसी आख्यायिकाएं उक्त हैं जिनसे बड़े बड़े मानवहितकारी सिद्धान्त निकलते हैं क्योंकि वेदों से वे आए हुए हैं किन्तु कथा के स्वरूप में वे वैदिक सिद्धान्त लिखे गये हैं अतः उनका आशय आज सर्वथा अस्तव्यस्त हो गया है। उदाहरण के लिये मैं वेदों के सुप्रसिद्ध वसिष्ठ और अगस्त्य दो ऋषियों को प्रस्तुत करता हूं। क्या यह सम्भव है कि दो पुरुषों के बीज मिल कर बालकों को उत्पन्न करें, वह भी साक्षात् मातृगर्भ में नहीं किन्तु स्थल और घट में उत्पत्ति हो? उर्वशी के दर्शन मात्र से मित्र और वरुण दो देवों का चित्त चञ्चल हो जाय? उनसे तत्काल ही एक या दो सुभग बालक उत्पन्न हों और तत्काल ही देवगण उन्हें कमल के पत्रों पर बिठला उनकी स्तुति पूजा करें? उनमें से एक बालक सम्पूर्ण सूर्यवंशी राजाओं का पुरोहित बन सृष्टि की आदि से प्रलय तक अजर अमर हो एक रूप में सदा स्थिर रहे? क्या यह सम्भव है कि वसिष्ठ को एक गौ जो चाहे सो करे? हजारों प्रकार की सेनाओं को वह स्वयं रचले पृथिवी के समस्त पदार्थ उसकी आज्ञा में हाथ जोड़कर खड़े रहें इस शबला गौ के लिये वसिष्ठ और विश्वामित्र में तुमुल संग्राम हो? वसिष्ठ के शतपुत्रों को विश्वामित्र मरवा दे, इस शोक में वसिष्ठ सुमेरुपर्वत के सब से ऊपर के शिखर पर से गिरें तो भी न मरें। अग्नि उन्हें न जलावे समुद्र इनसे डर जाय। हाथ पैर और सब अंगों को बांध नदियों में डूबने को जायें किन्तु नदियां भाग जायें इनके बन्धन को तोड़ डालें इत्यादि शतशः कथायें वसिष्ठ के विषय में जो कही जाती है उनका क्या आशय है? क्या सचमुच ये वसिष्ठ और अगस्त्य दो महान् ऋषि वेश्या के पुत्र हैं? उर्वशी कोई वेश्या है? क्या मित्र और वरुण कोई ऐसे तुच्छ देव हैं? जो झट स्त्री पर मोहित जाते? इत्यादि। क्या इनकी सत्यता के अन्वेषण के लिये कभी हम प्रयत्न करते हैं? निःसन्देह यह अद्भुत कथा है। इससे अति गूढ़ बातें निकलती हैं। मित्र और वरुण के पुत्र वसिष्ठ और अगस्त्य की आख्यायिका से राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी एक परम उपयोगी वैदिक सिद्धान्त विनिःसृत होता है। अतः मैं इस भाग में इसको प्रथम दर्शा पश्चात् वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं का आशय प्रकट करूंगा। इसको ध्यान से आप लोग पढ़ें॥

इसके लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वतन्त्र और अज्ञानी राजा से देश की कितनी हानि हुई है और हो रही है। अतएव पृथिवी पर के सभ्य देशों में आजकल दो प्रकार के राज्य हैं। एक प्रजाधीन दूसरा सभाधीन अर्थात् जिसमें राजा को सभा की आज्ञा का वशवर्त्ती होना पड़ता है। सर्व विद्वानों की प्रायः इसमें एक सम्मति है कि प्रजाधीन ही राज्य चाहिये और यही मनुष्यता है ज्यों ज्यों मनुष्यता की वृद्धि होगी त्यों त्यों स्वयं राज्य व्यवस्था शिथिल होती जायगी क्योंकि प्रत्येक मानव निज कर्त्तव्य को अच्छे प्रकार निबाहेगा। इतिहास से विदित होता है कि जब जब राजा उच्छृङ्खल हुआ है तब तब महती आपत्ति प्रजाओं में आई हैं। अतः वेद में ऐसा वर्णन आता है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु० २०।२५॥

ब्रह्म=ज्ञान, विज्ञान, परमज्ञानी जन, धर्म्मतत्त्वज्ञ,धर्म्माध्यक्ष पुरुषों की महती सभा इत्यादि। क्षत्र=बल, प्रजाशासक वर्ग, धार्मिक बली, प्रजाशासकों की महती सभा इत्यादि। प्रज्ञेषम्=प्रजानामि जानता हूं। देव=प्रजावर्ग, शास्य प्रजाएं। अग्नि=परमात्मा, ब्राह्मण, अग्नि होत्रादि कर्म्म। यद्यपि वैदिक शब्द लोक में भी प्रयुक्त हुए है परन्तु लोक में उन वैदिक शब्दों के अर्थ में बहुत कुछ परिवर्तन होगया है वेदों के अर्थों के विचार से वे २ अर्थ अच्छे प्रकार भासित होने लगते हैं। अर्थ मन्त्रार्थ—(तम्+लोकम्+पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) उस लोक को मैं पुण्य समझता हूं। (यत्र+ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) जहाँ ज्ञान और बल अथवा ज्ञानी और बली अथवा धर्म्मव्यवस्थापक विद्वद्वर्ग और उस व्यवस्था के अनुसार शासन करहारे राजगण (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार मिलकर परस्पर सत्कार करते हुए (सह+चरतः) साथ विचरण करते हैं, साथ ही सर्व व्यवहार करते हैं। (यत्र+देवाः) और जहां प्रजावर्ग (अग्निना+सह) ईश्वर, ज्ञानी और अग्निहोत्रादि शुभ कर्म्म के साथ विचरण करते हैं अर्थात् जहां सर्व प्रजाएं आस्तिक हो शुभ कर्म्मों को यथा विधि करते हैं और ज्ञानियों के पक्ष में रहते हैं। वही देश वही लोक पवित्र है पुनः—

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ यजु ३२।१६॥

यह भी एक प्रार्थना है (इदम्+ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) यह ज्ञानी और शासक वर्ग (उभे+मे+श्रियम्+अश्नुताम्) दोनों ही मिलकर मेरी सम्पत्ति को भोग में लावें (मयि+देवाः+उत्तमाम्+श्रियम्+दधतु) मुझ में समस्त शुभाभिलाषी प्रजावर्ग उत्तम श्री सम्पत्ति स्थापित करें (तस्यै+ते+स्वाहा) हे सम्पत्ति! तुम्हारे लिये मेरा सर्वस्वत्याग है स्वाहा=स्व+आहा। स्व=धन। आहा सब प्रकार से त्याग। अपने स्वत्त्व को सर्वप्रकार से त्याग करने का नाम स्वाहा है। उन पूर्वोक्त ही दो मन्त्रों में नहीं किन्तु यजुर्वेद के बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र दोनों को मिलकर व्यवहार करने का वर्णन आता है दो चार उदाहरण ये हैं —

स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु। यजु० १८।३८॥

वह ब्रह्म और क्षत्र हमको पाले। यही वाक्य इस अध्याय की ३९, ४०, ४१, ४२, ४३ वीं कण्डिकाओं में आया है॥

सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय। ७।२१॥

परमात्मा इस ब्रह्म और क्षत्र को पवित्र करता है॥

ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व। ३८।१४॥

हे भगवन्! ब्रह्म और क्षत्र को उन्नत करो। पुनः प्रार्थना आती है कि—

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा । यजु० १८।४४ ॥

(भुवनस्य+पते+प्रजापते) हे सम्पूर्ण—विश्वाधिपति प्रजापति परमात्मन्! (यस्य+ते उपरि+गृहाः) जिस आप के गृह ऊपर हैं। (यस्य+वा+इह) जिस आप के गृह इस लोक में हैं अर्थात् जो आप सर्वव्यापक हैं (सः+नः+अस्मै+ब्रह्मणे+अस्मै+क्षत्राय) सो आप मेरे इस परम ज्ञानी वर्ग को और शासक वर्ग को (महि+शर्म्म+यच्छ) बहुत कल्याण देवें। (स्वाहा) हे परमात्मन्! आपके लिये मेरा सर्व त्याग है ॥

अब अनेक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं वेदों को विचारिये मालूम होगा कि जब ज्ञान और बल दोनों मिलकर कार्य करते हैं तब ही परम कल्याण होता है । अतएव मनुजी बहुत जोर देकर कहते हैं कि—"दशावरा वा परिषद् यं धर्म्मं परिकल्पयेत् । त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्म्मं न विचालयेत् ।" न्यून से न्यून दश विद्वानों की अथवा बहुत न्यून हो तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उसका उल्लंघन कोई भी न करे ।।

ब्रह्म क्षत्र ही मित्र और वरुण हैं।

जिस ब्रह्म और क्षत्र का विवरण ऊपर दिखलाया है उनको ही वेदों में मित्र और वरुण कहते हैं। ब्रह्म मित्र है और क्षत्र वरुण है। इसमें यद्यपि अनेक प्रमाण मिलते हैं तथापि मैं केवल शतपथ का एक प्रबल प्रमाण यहां लिखता हूं यजुर्वेद ७ । ९ की व्याख्या करते हुए शतपथ कहता है—

क्रतूदक्षौ ह वा अस्य मित्रावरुणौ । एतन्न्वध्यात्मं स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुरथ यदस्मै तत्समृध्यते स दक्षो मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्म कर्त्ता क्षत्रियः ॥ १ ॥ ते हैते अग्रे नानेवासतु । ब्रह्म च क्षत्रं च । ततः शशाकैव ब्रह्म मित्र ऋते क्षत्राद्वरुणात्स्थातुम् ॥ २ ॥ न क्षत्रं वरुणः । ऋते ब्रह्मणो मित्राद्यद्ध किं च वरुणः कर्म चक्रेऽप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न हैवास्मै तत्समानृधे ॥३॥ स क्षत्रं वरुणः । ब्रह्म मित्रमुपमन्त्रयाँ चक्र उपमावर्तस्व सं सृजावहै पुरस्त्वा करवै त्वत्प्रसूतः कर्म करवा इति तथेति तौ समसृजेतां तत एष मैत्रावरुणो ग्रहोऽभवत् ॥४॥ सो एव पुरोधा । तस्मान्न ब्राह्मणः सर्वस्येव क्षत्रियस्य पुरोधां कामयते सं ह्येतौ सृजेते सुकृतं च दुष्कृतं च नो एव क्षत्रियः सर्वमिव ब्राह्मणं पुरोदधीत सं ह्येवैतौ सृजेते सुकृतं च दुष्कृतं च स यत्ततो वरुणः कर्म चक्रे प्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण सं है वास्मै तदानृधे ॥ शतपथ । ४ । १ । ४ ॥

क्रतु और दक्ष ही इसके मित्र और वरुण हैं। यह अध्यात्म विषय है। सो यह यजमान मनसे जो यह कामना करता है कि यह मुझे हो और यह कर्म मैं करूं इसी का नाम क्रतु है और जो इस कर्म से उसको समृद्धि प्राप्त होती है वही दक्ष है। मित्र ही क्रतु है और वरुण ही दक्ष है। ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी न्यायीवर्ग ही मित्र है और क्षत्र अर्थात् न्यायीशासकवर्ग ही वरुण है। मन्ता ही ब्रह्म है और कर्त्ता ही क्षत्रिय है ॥१॥ पहले ब्रह्म और क्षत्र ये दोनों पृथक् पृथक् रहते थे ब्रह्म जो मित्र है वह तो क्षत्र वरुण के बिना पृथक् रह सका किन्तु क्षत्र जो वरुण है वह ब्रह्म मित्र के बिना न रह सका ॥ २ ॥ क्योंकि ब्रह्म मित्र की आज्ञा बिना क्षत्र वरुण जो जो कर्म्म

किया करता था वह वह उसके लिये वृद्धि प्रद नहीं होता था ॥ ३ ॥ सो इस क्षत्र वरुण ने ब्रह्म मित्र को बुलाया और कहा कि मेरे समीप आप रहें (संसृजावहै) हम दोनों मिल जायं। मिलकर सर्व व्यवहार करें। मैं आपको आगे करूंगा और आपकी आज्ञानुसार मैं कर्म्म करूंगा। ब्राह्मण इस को स्वीकार कर दोनों मिल गए ॥४॥ तबसे ही मैत्रावरुण नाम का एक ग्रह अर्थात् एक पात्र होता है ॥४॥ इस प्रकार पौरोहित्य चला। इस कारण सब ब्राह्मण, सब क्षत्रिय की पौरोहित्य—वृत्ति की कामना नहीं करता क्योंकि ये दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत कर्म करते हैं अर्थात् दोनों ही पाप पुण्य के भागी होते हैं। वैसा ही सब क्षत्रिय सब ब्राह्मण को पुरोहित नहीं बनाता क्योंकि दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत करते हैं। तबसे क्षत्रिय वरुण जो जो कर्म्म ब्राह्मण मित्र से आज्ञा पाकर किया करता था वह वह कर्म उसको वृद्धिप्रद हुआ। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि ब्रह्म को मित्र और क्षत्र को वरुण कहते हैं और इन दोनों को मिलकर ही व्यवस्था करनी चाहिये। इसमें यदि शासकवर्ग, ज्ञानीवर्ग की अधीनता को स्वीकार नहीं करे तो उसका निर्वाह कदापि न हो। अत्र आप वसिष्ठ और अगस्त्य दोनों मैत्रावरुण क्यों कहलाते हैं यह समझ सकते हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर जिस सर्व हितकारी नियम को बनाते हैं उसी का नाम वसिष्ठ है और ब्राह्मण क्षत्रिय सभा की आज्ञा पाकर इस व्यवस्थित नियम को जो ग्राम ग्राम में जा प्रजाओं में चलाया करता है उसका नाम अगस्त्य है। राज्यसम्बन्धी निखिल संस्थाओं का एक नाम उर्वशी है। अब मैं क्रमशः उत्पत्ति आदि बतलाता हुआ इस विषय को विस्पष्ट करूंगा ॥

वसिष्ठ की उत्पत्ति

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार। ऋ० ७।३३।१०॥

(वसिष्ठ) हे वसिष्ठ—सत्य=हे सत्यधर्म्म! (यद्+मित्रावरुणा) जब जब मित्र और वरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलके (विद्युतः+ज्योतिः+परि+संजिहानम्) देदीप्यमान ज्योति को सर्वथा परित्याग करते हुए (त्वा+अपश्यताम्) आपको देखते हैं (तत्+ते+एकम्+जन्म) तब तब आपका प्रसिद्ध जन्म हुआ है। (उत) और (यद्) जब (अगस्त्य) ब्रह्म क्षत्र सभा से नियुक्त मान्य प्रचारक (त्वा+विशः+आजभार) आपको प्रजाओं के निकट चारों ओर ले जाते हैं तब तब आपका जन्म होता है अर्थात् आपको प्रसिद्धि हुआ करती है। परि संजिहानम्=परित्यजन्तम्। सायण विश शब्द प्रजावाचक है यह प्रसिद्ध ही है अतएव विशांपति राजा कहाता है। यह ऋचा बहुत विस्पष्ट कर देती है कि सत्य नियम का नाम वसिष्ठ है। क्योंकि जब जब धर्म्म की हानि होने लगती है तब तब ब्राह्मण क्षत्रिय सभा पुनः उसको अच्छे प्रकार देख भाल कर उसको ठीक सुधार देश में प्रचार करवाती है अतः ऋचा कहती है कि जब जब वसिष्ठ विद्युत्स्वरूप को त्यागने लगता है तब तब मित्र और वरुण उसे देखते हैं और पुनः वसिष्ठ का जन्म होता है। ठीक है। जब जब धर्म्म अपने प्रकाशमय रूप को छोड़ देता है तब तब प्रजाओं में अति कोलाहल मचने लगती है। तब पुनः ब्रह्म क्षत्र एकत्रित हो धर्म्म व्यवस्था बांधते हैं। पुनः उसका प्रचार होता है। ऋचा में विस्पष्ट रूप से कहा गया है कि

वसिष्ठ को अगस्त्य प्रजाओं के समीप चारों तरफ भेजता है। इसका तात्पर्य्य केवल सुप्रचार से हैं। पुनः—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ऋ० ७।३३।११॥

(उतासि+वसिष्ठ+मैत्रावरुणः+असि) और भी हे वसिष्ठ! हे सत्यधर्म्म! आप इस प्रकार मैत्रावरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्रों के विचार से उत्पन्न हुए हैं केवल इतना ही नहीं किन्तु (ब्रह्मन्) हे महान्! पूज्य दृढ़ (उर्वश्याः+मनसः+अधि+जातः) उर्वशी के मन से अधिकतया आप उत्पन्न होते हैं (स्कन्नम्+द्रप्सम्+त्वा) इस प्रकार उत्पन्न सुभग आपको (दैव्येन+ब्रह्मणा) दैव्य=प्रजाहितकारी अर्थात् प्रजाओं के परमसुखकारी वेद की आज्ञानुसार वा सर्व हितकारी परम-ज्ञानी सभापति की आज्ञानुसार (विश्वे+देवाः) निखिल प्रजायें (पुष्करे+अददन्त) हृदयरूप कमल के ऊपर वा हृदयस्थ आकाश में अथवा ग्राम रक्षक पुरुष में जिसको ग्रामणी कहते हैं धारण कर लेती है। अददन्त=अधारयन्त। देव=ऐसे २ स्थल में देव शब्द सकल प्रजावाचक हैं। पुष्कर=पुर्+कर। पुर्=ग्राम। कर=कर्त्ता ग्राम का नायक। कमल आकाश आदि। उर्वशी=पाठशाला, धर्म्म शाला, न्यायालय आदि संस्थाएं। जब २ व्यवस्थित सस्थाएं बिगड़ने लगती हैं तब २ उसे देखकर मित्र और वरुण बड़े घबराने लगते हैं अर्थात् उस २ संस्थाओं को स्थिर रखने के लिये अपना पूरा सामर्थ्य लगाते हैं। तब पुनः वसिष्ठ=धर्म्मनियम का जन्म होने लगता है। जब इस प्रकार से धर्म्म नियम उत्पन्न होता है तब सब मनुष्य मिलकर दैव्य ब्रह्म अर्थात् परमज्ञानी न्यायशील सभापति के साथ उस नियम को पुष्कर अर्थात् प्रत्येक ग्राम के नायक के ऊपर स्थापित करते हैं। पुष्कर=ग्रामनायक तब कदापि कोई अन्याय नहीं कर सकता। यह ऋचा कैसी सुगम राज्यव्यवस्था बतला रही है। जब २ संस्थाएं बिगड़ने लगें तब २ उचित है कि ब्रह्म और क्षत्र मिलकर उनको संभालें और उस समय के लिये विशेष नियम बनावें। तब सब प्रजाओं की ओर से स्वीकृत होने पर वे प्रजाएं स्वयं दैव्य ब्रह्म की आज्ञा से ग्राम २ के नायक को वे २ नियम सौंपे तदनुसार सब कोई चलें। इससे महान् सुख उत्पन्न होता है। ऐसा नियम स्थापित होने से कैसा सुख आनन्द वैभव फैलता है इस पर स्वयं वेद भगवान् कहते हैं—

स प्रकेत उभयस्य विद्वान् सहस्रदान उत वा सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः॥ ऋ० ७।३३।१२॥

वेदों में एक यह भी रीति है कि गुण में भी चेतनत्व का आरोप कर गुणिवत् वर्णन करने लगते हैं। राज्य नियम से लोक ज्ञानी विद्वान महाधनाढ्य होते हैं अतएव वह नियम ही ज्ञानी, विद्वान् महाधनाढ्य आदि कहा जाता है। (सः+प्रकेतः) वह परम ज्ञानी (उभयस्य+विद्वान्) और ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों को जानता हुआ वसिष्ठ (सहस्रदानः) बहुत दानी होता है (उत वा+सदानः) अथवा सर्वदा दान देता ही रहता है। कब? सो आगे कहते हैं—(यमेन) ब्रह्म क्षत्रों

के प्रबल दण्डधारा से (ततम्+परिधिम्) विस्तृत व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयिष्यन्) बुनता हुआ (वसिष्ठः) वह सत्य धर्म्म (अप्सरसः+परि जज्ञे) सर्वं संस्थाओं को लक्ष्य करके उत्पन्न होता है। अब आगे सार्वजनीन परम हितकारी सिद्धान्त कहते हैं—

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥
उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्रवदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥७।३३।१४॥

सत्र=सतांत्रः सत्रः। सज्जनों की जो रक्षा करे उस यज्ञ का नाम सत्र है। अथवा जो सत्य यज्ञ है वही सत्र है। सम्पूर्ण प्रजाओं के हितसाधक उपायों के बनाने के लिये जो अनुष्ठान हैं वही महासत्र है। कुम्भ=वासतीवर कलश अर्थात् सुन्दर उत्तम उत्तम जो बसने के ग्राम नगर हैं वेही यहां कुम्भ हैं। जैसे कुम्भ में जल स्थिर रहता है। तद्वत् ग्राम में वसने पर मनुष्य स्थिर हो जाता है। अतः सर्व भाष्यकार इस कुम्भ का नाम वासतीवर रक्खा है। मान=माननीय। जिसका सम्मान सब कोई करे। मापनेहारा, परीक्षक इत्यादि। अथ मन्त्रार्थ—(सत्रे+ह+जातौ) यह प्रसिद्ध बात है कि जब बहुत सम्मति से सत्र में दीक्षित होते हैं और (नमोभिः+इषिता) सत्कार से जब अभिलषित होते हैं अर्थात् जब ब्रह्मसमूह और क्षत्रसमूह को बड़े सत्कार के साथ सर्व हितसाधक धर्म्मप्रणेतृ सभारूप महायज्ञ में प्रजाएं बुलाकर धर्म्म नियम बनवाती हैं तब (समानम्+रेतः+कुम्भे+सिषिचतुः) वे मित्र और वरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलकर समानरूप से रेत=रमणीय धर्म्मरूप प्रवाह को प्रत्येक ग्रामरूप कलश में सींचते हैं (ततः+ह+मानः+उदियाय) तब सबका मापनेहारा सर्व को एक दृष्टि से देखनेहारा एक मानने योग्य नियम उत्पन्न होता है। (ततः+मध्यात्+वसिष्ठम्+ऋषिम्+जातम् आहुः) और उसी के मध्य से वसिष्ठ ऋषि को उत्पन्न कहते हैं॥१३॥ इसका आशय विस्पष्ट है अब आगे उपदेश देते हैं कि प्रजामात्र को उचित है कि इस वसिष्ठ का सत्कार करे (प्रतृदः) हे अत्यन्त हिंसक पुरुषों! हे प्रजाओं में उपद्रवकारी नरो! (वः+वसिष्ठः+आगच्छति) तुम्हारे निकट राष्ट्रनियम आता है। (सुमनस्यमानाः) प्रसन्न मन होके तुम (एनम्) इस धर्मनियम को (उप+आध्वम्) अपने में देववत् आदर करो। वह वसिष्ठ कैसा है (उक्थभृतम्+सामभृतम्) उक्थभृत्=ऋग्वेदीय होता। सामभृत्=उद्गाता। (बिभर्ति) इन दोनों को धारण किये हुए है और (ग्रावाणम्+बिभ्रत्) उग्र प्रस्तर अर्थात् दण्ड को लिए हुए है। यजुर्वेदी अध्वर्यु को भी साथ में रक्खे हुए है (अग्रे+प्रवदति) और वह आगे आगे निज प्रभाव को कह रहा है॥१४॥ जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा है कि "त्र्यवरा चापि वृत्तस्था" न्यून से न्यून ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी तीन मिलकर जिस धर्म को नियत करें उसको कोई भी विचलित न करने पावे। इसी ऋचा से यह नियम बना है। प्रतृद=उतृदिर् हिंसानादरयोः। हिंसा और अनादर अर्थ में तृद् धातु आता है अर्थात् जो राष्ट्रीय नियमों को हिंसित और अनादर करते हैं वेही यहां प्रतृद हैं। अब और भी अर्थ विस्पष्ट हो जाता है। धर्म्म नियम किसके लिए बनाए जाते हैं निःसन्देह उन दुष्ट पुरुषों को नियम में लाने के लिये ही धर्म की स्थापना होती है अतः वेद भगवान् यहां कहते हैं कि हे दुष्ट हिंसकों! और निरादरकारी जीवो! देखो तुम्हारे

निकट धर्म्म आ रहे हैं। इनका प्रतिपालन करो। यह नियम तीनों वेदों की आज्ञानुसार स्थापित हुआ है यदि इसका निरादर तुमने किया तो तुम्हारे ऊपर महादण्ड पतित होगा। इस से यह भी विस्पष्ट होता है कि वसिष्ठ नाम धर्म्म नियम का ही है जो ब्रह्मक्षत्र सभा से सर्वदा सिक्त होता रहता है॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः। ७। ३३। ९॥

वसिष्ठाः=यहां वसिष्ठ शब्द बहुवचन है। इस मंडल में बहुवचनान्त वसिष्ठ शब्द कई एक स्थान में प्रयुक्त हुआ है (ते वसिष्ठाः) वे-वे धर्म्म नियम (इत्) ही (निण्यम्) अज्ञानों से तिरोहित=ढंके हुए (सहस्रवल्शम्) सहस्र शाखायुक्त उस-उस स्थान में (हृदयस्य+प्रकेतैः) हृदय के ज्ञान-विज्ञान रूप महाप्रकाश के साथ (संचरन्ति) विचरण कर रहे हैं (यमेन+ततम्+परिधिम्) दण्ड की सहायता से व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयन्तः) बुनते हुए (अप्सरसः+उपसेदुः) उस-उस संस्था के निकट पहुंचते हैं॥

अब मैंने यहां कई ऋचाएं उद्धृत की हैं विद्वद्गण विचार करें कि वसिष्ठ शब्द के सत्यार्थ क्या हैं। इन्हीं ऋचाओं को लेकर सर्वानुक्रमणी बृहद्देवता और निरुक्त आदिकों में जो-जो आख्यायिकाएं प्रचलित हुई हैं उनसे भी यही अर्थ निःसृत होते हैं। तद्यथा बृहद्देवता—

उतासि मैत्रावरुणः। ऋ० ।७।३३।११॥

ऋचा की सायण व्याख्या में बृहद्देवता की आख्यायिका उद्धृत है। वह यह है—

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम्। रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वसातीवरे॥
तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्य्यवन्तौ तपस्विनौ। अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः॥
बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले। स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः॥
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः। उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः।
मानेन संमितो यस्मात् तस्मात् मान इहोच्यते॥ इत्यादि॥

अदिति के पुत्र मित्र और वरुण हुए। वे दोनों किसी यज्ञ में गए। वहां उर्वशी को देख साथ ही दोनों का रेत गिर गया। वह रेत कुछ घड़े में और कुछ स्थल में जा गिरा। स्थल में जो गिरा उससे वसिष्ठ और कलश में जो गिरा उससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। अतएव इन दोनों को मैत्रावरुण कहते हैं क्योंकि ये दोनों मित्र और वरुण के पुत्र हैं अगस्त्य जिस कारण घट से उत्पन्न हुए अतः इनका घटयोनि, कलशज आदि भी नाम हैं॥

भागवत

भागवतादि पुराणों ने वसिष्ठ को शुद्ध दिखलाने के लिये एक विचित्र कथा गढ़ी है। इक्ष्वाकु-पुत्र निमि राजा ने वसिष्ठ को बुलाकर यज्ञ करवाने को कहा परन्तु वसिष्ठ को पहले इन्द्र ने बुलाया था। अतः "मैं इन्द्र को प्रथम यज्ञ करवा आप का यज्ञ आरम्भ करूंगा" ऐसा कह वसिष्ठजी इन्द्र के के यज्ञ में चले गए। इधर निमि ने अन्य ऋत्विकों को बुला यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। लौटने पर

अपने यजमान का ऐसा अधैर्य्य देख वसिष्ठ ने निमि को शाप दिया कि तुझ से शरीर गिर जाय। निमि ने भी गुरु को अधर्मी देख शाप दिया कि तेरी भी यही गति हो—"अशपत्पताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः" । निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्म्मवर्तिने । तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्म्ममजानतः। भाग० ६।१३।५।। इस प्रकार शापग्रस्त हो वसिष्ठजी मित्र और वरुण के वीर्य्य से उर्वशी में पुनः उत्पन्न हुए "मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः" । भागवत ६ । १३ । ६ ॥ वसिष्ठ के पुत्र शक्ति । शक्ति के के पराशर । पराशर के व्यास । व्यास के पुत्र शुक । अतः शुकाचार्य परीक्षित् से कहते हैं कि हे राजन्! मित्र और वरुण के रेत से उर्वशी में मेरे पितामह उत्पन्न हुए ॥

समीक्षा=यद्यपि वेद में जल स्थल और वसातीवर आदि का वर्णन नहीं तथापि बृहद्देवता ऐसा कहता है। वेदो के एक ही स्थान कुम्भ में दोनों ऋषियों की उत्पत्ति कही गई है । इसका भी भाव यह है कि क्या जल और क्या स्थल दोनों स्थानो में धर्म्म नियम तुल्य रूप से प्रचलित होते हैं । अब पुराणों की बात पर दृष्टि दीजिये। पुराण सर्वदा एक न एक भूल करते ही रहते हैं। पुराण ब्रह्मा से सारी उत्पत्ति मानते हैं। परन्तु बहुतसी बातें प्राचीन चली आती हैं जहां ब्रह्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं किन्तु पौराणिक समय में वे बातें इतनी प्रचलित थीं कि उनको दूर नहीं कर सकते थे। उर्वशी में मित्रावरुण द्वारा वसिष्ठ की उत्पत्ति और वही सूर्यवंशीय राजाओं का गुरु है यह बात अति प्रसिद्ध थी इस कथा को पुराण लोप नहीं कर सकते थे। अतः इनको एक नवीन कथा गढ़नी पड़ी। पुराणों की दृष्टि में असम्भव कोई बात नहीं। अतः ब्रह्मा से लेकर केवल छः पीढ़ियों में हजारों चौयुगी काल को समाप्त कर देते हैं। कहां सृष्टि की आदि में ब्रह्मा का पुत्र वसिष्ठ! और कहां केवल छठी पीढ़ी में शुकाचार्य के कलियुगस्थ परीक्षित् को कथा सुनाना। कितना लम्बा चौड़ा कह गप्प है ॥

यास्ककी सम्मति—उर्वशी शब्द का व्याख्यान करते हुए यास्क भी "तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द" उसके दर्शन से मित्र और वरुण का रेत स्खलित हो गया ऐसा लिखते हैं। आश्चर्य की बात है कि वे भाष्यकार निरुक्तकार आदि भी ऐसी-ऐसी जटिल कथा का आशय न बतला गए ।।

वसिष्ठ पुरोहित—यही उर्वशीपुत्र मैत्रावरुण वसिष्ठ राजवंशों के पुरोहित थे। यही आशय सर्वकथाओं से सिद्ध होता है। वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में यों लिखा है—

"कस्य चित्त्वथ कालस्य मैत्रावरुणसंभवः" । वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम् ।।७।।
तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम् । वव्रे पुरोधसं सौम्यं वंशस्यास्य हिताय नः ।।८।।
रा० । उ० सर्ग ५७ ।।

सूर्यवंशी के आदि राजा इक्ष्वाकु हैं। इन्होंने इसी उर्वशी सम्भव मैत्रावरुण वसिष्ठ को अपने पुरोहित बनाया। शुकाचार्य बड़े आदर के साथ इनको ही अपना प्रपितामह कहते हैं अब विचार करने की बात है कि इस सबका यथार्थ तात्पर्य क्या है ? मैं अभी जो पूर्व में लिख आया हूं यही इसका वास्तविक तात्पर्य है। वसिष्ठ कोई आदमी नहीं हुआ न उर्वशी आदि ही कोई देहधारी जीव है। एवं मित्र और वरुण सामान्य वाचक शब्द है किसी खास व्यक्ति वाचक नहीं। अब मैं नामार्थ से भी उस विषय को दृढ़ करता हूं ॥

वसिष्ठादि नामों के अर्थ—'वसु' शब्द से यह वसिष्ठ बना है। जो सब के हृदय में बसे वह वसु, जो अतिशय वास करने हारा है वह वसिष्ठ। मैं लिख आया हूं कि यहां धर्म्म नियम का नाम वसिष्ठ है। निःसन्देह वेही धर्म्म नियम संसार में प्रचलित होते हैं जो सबके रुचिकर हों जिन्हें सब कोई अपने हृदय में वास दे सकें। अतः धर्म्म नियम का नाम यहां वसिष्ठ रक्खा है। वसु शब्द, धन सम्पत्ति आदि अर्थ में भो आया है अतः जो नियम अतिशय सम्पत्तियों को उत्पन्न करने हारा हो प्रजाओं में जिनसे चारों तरफ अभ्युदय हो उसी नियम का नाम वसिष्ठ है। अगस्त्य=अग+पर्वत, यहां अचल रूप से स्थिर जो प्रजाओं में नाना अज्ञान, उपद्रव विघ्न हैं वेही अग रूप हैं उन्हें जो विध्वंस करे वह अगस्त्य **"अगान् विघ्नान् अस्यति विध्वंसयति यः सोऽगस्त्यः"** वेद में आया है कि **अगस्त्यो यत्त्वा विश आजभार। ७। ३३। १०॥** वसिष्ठ को अगस्त्य प्रजाओं के निकट ले जाते हैं अर्थात् ब्रह्मक्षत्रसभा से निश्चित धर्म्म नियम को साथ ले अगस्त्य (प्रचारकगण) प्रजाओं के समस्त विघ्नों को विध्वस्त कर देते हैं अतः प्रचार वा प्रचारकमण्डल का नाम यहां अगस्त्य कहा है। उर्वशी जिस को बहुत आदमी चाहें वह उर्वशो **"याम् उरवो बहव उशन्ति कामयन्ते सा उर्वशी"**। पाठशाला, न्यायशाला आदि संस्थाओं को जहां-जहां बहुत आदमी मिलकर स्थापित करना चाहते हैं वहां-वहां ब्रह्मक्षत्रसभा को ओर से वह-वह संस्था स्थापित होती है। अतः यहां संस्था का नाम उर्वशी है॥

आवश्यक नियम—वसिष्ठ अगस्त्य और उर्वशी आदि शब्द वेदों में अनेकार्थ प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु अपने-अपने प्रकरण में वही एक अर्थ सदा स्थिर रहेगा अर्थात् जहां मैत्रावरुण वसिष्ठ कहा जायगा उस प्रकरण भर में यही अर्थ होगा और ऐसे ही अर्थ को लेकर संगति भी लगती है॥

वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे हुए—अब आप इस बात को समझ सकते हैं कि वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे बने। यह प्रत्यक्ष बात है कि नियम बनाने वाले का ही प्रथम शासक नियम होता है अर्थात् जो विद्वान् नियम बनाता है वही प्रथम पालन करता है यदि ऐसा न हो तो वह नियम कदापि चल नहीं सकता मित्र वरुण अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर नियम बनाते हैं अतः प्रथम इनकाही वह शासक होता है। जिस कारण ब्रह्मवर्ग में स्वभावतः नियम पालन करने की शक्ति है। वे उपद्रवी कदापि नहीं हो सकते क्योंकि परम धर्म्मात्मा पुरुष का ही नाम ब्रह्म है। क्षत्रवर्ग सदा उद्दण्ड उच्छृंखल आततायी अविवेकी हुआ करते हैं अतः इनके लिये धर्म्म नियमों की बड़ी आवश्यकता है जिनसे वे सुदृढ़ होकर अन्याय न कर सकें। आजकल भी पृथिवी पर देखते हैं कि क्षत्रवग ही परम उद्दण्ड हो रहे हैं, इन को ही वश में लाने के लिये बड़ा बड़ी सभा कर प्रजाओं से मिल ब्रह्मवर्ग नियम स्थापित कर रहे हैं अतः वह वसिष्ठ नामो नियम विशेषकर क्षत्रियकुलों का ही पुरोहित हुआ। पुरोहित शब्द का यही प्राचीन अर्थ है कि जो सदा आगे में रहे जिससे सम्राट् भी डरे। जिसका अनिष्ट महा सम्राट् भी न कर सकता हो। जिसके पक्ष में सब प्रजायें हों, जो प्रजाओं के प्रतिनिधि होकर सदा उनकी हित की बात करे और राजा को कदापि उच्छृङ्खल न होने दे। जैसे आजकल रक्षित राज्यों को वश में रखने के लिये रेजिडेण्ट हुआ करता है।

मित्र और वरुण

जैसे बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र शब्द साथ आते हैं तद्वत् मित्र और वरुण शब्द भी पचासों मन्त्रों में साथ प्रयुक्त हुए हैं। कहीं असमस्त और कहीं समस्त। समस्त होने पर मित्रावरुण ऐसा रूप बन जाता है। मित्र और वरुण के दो एक उदाहरण मात्र से आप को ज्ञात हो जायगा कि यह ब्रह्म-क्षत्र का वर्णन है। यथा—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिसादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता। ऋ०। १। २। ६॥

पूतदक्ष=पवित्र बल, जिस का बल परम पवित्र है। रिसादस=रिस+अदस्। रिस=हिंसक+पुरुष। अदस्=भक्षक। हिंसकों का भी भक्षक। धी—कर्म्म ज्ञान। घृताची=घृतवत् शुद्ध घृतवत् पुष्टिकारक आदि। अथ मन्त्रार्थ—(पूतदक्षं+मित्रम्+रिसादसम्+वरुणञ्च+हुवे) पवित्र बलधारी मित्र और दुष्ट हिंसकों के विनाशक वरुण को बुलाता हूं जो दोनों (घृताचीं+धियं+साधन्ता) घृतवत् पवित्र ज्ञान को फैला रहे हैं। घृतवत् विचाररूप दूध से उत्पन्न ज्ञान घृताची है॥

मित्र और वरुण के सम्बन्ध में राजा सम्राट् आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं यथा—

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा। ऋतावाना वृतमा घोषतो बृहत्॥४॥

ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू। घृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः॥८॥ ऋ० ८।२५॥

(मित्रावरुणा+महान्ता) ये मित्र और वरुण महान् हैं (सम्राजा) सम्राट् हैं (देवौ+असुरा) देदीप्यमान और असुर=निखिल अज्ञान के निवारक हैं (ऋतावानौ) सत्यवान् हैं और (बृहत्+ऋतम् आघोषतः) महान् सत्य की ही घोषणा करते हैं॥४॥ (ऋतावानौ+सुक्रतू) स्वयं सत्य नियम में बद्ध और सदा शोभन कर्म्म में परायण मित्र और वरुण (साम्राज्याय+निषेदतुः) साम्राज्य सम्बन्धी विचार के लिये बैठते हैं। पुनः वे कैसे हैं (धृतव्रता) सत्यादि व्रतधारी पुनः (क्षत्रिया) परमबलिष्ठ और (क्षत्रम्+आशतुः) जो परमबल का अधिष्ठाता है॥८॥ पुनः केवल वरुण के विषय में वर्णन आता है॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥१०॥
परि स्पशो निषेदिरे॥ ऋ०१।२५।१३॥

(पस्त्यासु) पस्त्या=प्रजा। प्रजाओं के मध्य (साम्राज्याय) राज्य नियम स्थापित करने के लिये वरुण व्रतधारी हो बैठता है। इसके चारों तरफ दूतगण बैठते हैं॥

यहाँ देखते हैं कि धर्म्म के नियमों को बनाने हारे व्यवस्थापकों को जिस-जिस योग्यता की आवश्यकता है उस-उस का यहां निरूपण है। प्रथम सत्य की बड़ी आवश्यकता है अतः मित्र और वरुण के विशेषण में जितने ऋत वा सत्यवाचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं उतने अन्य इन्द्रादिकों के लिये नहीं हुए। पुनः अपने व्रत में दृढ़ होना चाहिये अतः धृतव्रत शब्द के प्रयोग भी भूयोभूयः आता है। पुनः व्यवस्थापकों को अध्यात्म बल भी अधिक चाहिये अतः क्षत्रिय शब्द आता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों विचारते हैं

त्यों-त्यों यही प्रतीत होता है कि मित्र और वरुण नाम ब्रह्म-क्षत्र का है। इसी ब्रह्म क्षत्र का पुत्र वसिष्ठ है। पुनः वेदों को देख मीमांसा कीजिये भ्रम में मत पड़िये। वसिष्ठ कोई व्यक्ति विशेष नहीं, किन्तु सत्यार्थ का ही नाम वसिष्ठ है। सत्य नियम ही क्षत्रिय का भी शासक है ॥

एक बात और यहां दिखाने के लिये परम आवश्यक है कि धर्म्म ही क्षत्र का भी क्षत्र है अर्थात् परम उद्दण्ड राजाओं को वश में करने हारा केवल धर्म्मनियम है। वह यह है—

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्म्मं तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मस्तस्माद्धर्म्मात्परं नास्त्य अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्त-माहुर्धर्म्मं वदतीति धर्म्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति ॥ बृ० उ० १।४।१४॥

आशय—बृहदारण्यकोपनिषद् में यह वर्णन आता है कि जब ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणवर्ग, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र को बना चुके तो भी देश की वृद्धि नहीं हुई। तब अत्यन्त कल्याणस्वरूप जो धर्म्म है उस को सबसे बढ़िया बनाया। क्षत्र का भी शासक वही धर्म्म हुआ अतः धर्म से परे कोई पदार्थ नहीं। जैसे राज्य की सहायता से वैसे ही धर्म्म को सहायता से एक महादुर्बल पुरुष भी परम बलिष्ठ पुरुष का साम्मुख्य करता है। वह धर्म्म सत्य ही है। अतः सत्य बोलनेहारे को देखकर लोग कहते हैं कि यह धर्म्म कह रहा है। इसी प्रकार धर्म्म के व्याख्याता को सत्यवादी कहते हैं ॥

यहां पर यह वर्णन आता है कि क्षत्रियों के भी शासक धर्म्मनियम हैं। इन नियमों में बद्ध होकर यदि कोई क्षत्रिय अन्याय करे तो प्रजाएं उस को तत्काल रोक देती हैं। अब आप समझ सकते हैं कि वसिष्ठ के अधीन समस्त राजवंश कैसे हुए। निःसन्देह ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्गों से निर्धारित जो धर्म्म व्यवस्था है उस का पालन यदि कोई न करे तो कब उसे कल्याण है। अतः सर्वराजाओं ने वसिष्ठ नामधारी धर्मनियम को ही अपना पुरोहित बनाया ॥

वसिष्ठ और चोरी

ऋग्वेद के सम्पूर्ण सप्तम मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ हैं। बहुत थोड़े से मन्त्रों के द्रष्टा वसिष्ठपुत्र भी माने जाते हैं। इसी मण्डल में वसिष्ठ सम्बन्धी बहुतसी प्रचलित वार्त्ताओं का बीज पाया जाता है। "अमीवहा वास्तोष्पते" इत्यादि ५५ वें सूक्त को प्रस्वापिनी उपनिषद् नाम से अनुक्रमणिकाकार लिखते हैं। बृहद्देवता इसके विषय में विलक्षण कथा गढ़ती है वह यह है—"एक समय वरुण के गृह पर वसिष्ठ गए। इनको काटने के लिये भौंकता हुआ एक महाबलिष्ठ कुत्ता पहुंचा। तब वसिष्ठ ने "यदर्जुन" इत्यादि दो मन्त्रों को पढ़कर उस को सुलाया और पश्चात् अन्यान्य मन्त्रों से वरुणसम्बन्धी सब मनुष्यों को भगा दिया" कोई आचार्य्य इस सूक्त पर यह आख्यायिका कहते हैं। एक समय तीन रात्रि तक वसिष्ठ को भोजन न मिला तब चौथी रात्रि चोरी करने को वरुण के गृह पहुंचे द्वार पर बहुतसे आदमी और कुत्ते सोए हुए थे। इन को सुलाने के लिये वसिष्ठजी ने इस ५५ वें सूक्त को देखा और उसका जप किया" इत्यादि बातें सायण ने इस सूक्त के भाष्य के आरम्भ में ही दी हैं अतः प्रथम सूक्त के शब्दार्थ कर आशय बतलाऊंगा ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः ॥१॥ ऋ० ७।५५॥

अमीवहा=अमीव+हा । अमीव=रोग । हा=नाशक । वास्तोष्पते=वास्तोः+पते । =वास्तु गृह । संसाररूप गृहपति परमात्मा । यहां कोई उपासक कहता है कि (वास्तोः+पते) हे गृहाधिदेव ! समस्त गृहों में निवास करने हारे परमात्मन् ! (अमीवहा) आप मानसिक आत्मिक तथा दैहिक सर्व रोग के निवारक हैं (विश्वा+रूपाणि+आविशन्) आप सर्व रूपों में प्रविष्ट हैं । हे भगवान् ! (सखा) मित्रवत् परमप्रिय और (सुशेवः) परम सुखकारक (नः+एधि) हमारे लिये हूजिये । इतनी ईश्वर से प्रार्थना कर अब आगे कहते हैं कि—

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो निषु स्वप ॥२॥
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि स्वप ॥३॥
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः । स्तोतॄनिन्द्रस्य० ॥४॥ ऋ० ७।५५॥

अर्जुन=श्वेत, सफेद । सारमेय=सरमा का पुत्र । देवशुनी का नाम सरमा है, दत्=दांत ऋष्टि=आयुध अस्त्र । राय=जाओ । रायसि=गच्छसि=जाते हो । अथ मन्त्रार्थ–(अर्जुन+सारमेय) हे श्वेत सारमेय ! (पिशङ्ग) हे कहीं-कहीं पिंगलवर्ण ! कुत्ते (यद्+दतः+यच्छसे) जब तुम अपने दांतों को दिखलाते हो तब वे दांत (स्रक्वेषु+उप) ओष्ठ के कोने में (ऋष्टयः–इव+वि+भ्राजन्ते) आयुध के समान चमकने लगते हैं और (बप्सतः) हम को खाने के लिये दौड़ते हो ।२॥ (सारमेय+पुनःसर) हे सारमेय ! हे पुनःसर ! पुनःपुनः मेरी ओर आने हारे कुत्ते ! (स्तेनं+तस्करम्+राय) तू चोर की ओर जा । (इन्द्रस्य+स्तोतॄन्+अस्मान्+किम्+रायसि) परमात्मा के स्तुतिपाठक हमारी ओर तू क्यों आता है और (दुच्छुनायसे) क्यों हम को बाधा देता है (नि+सु+स्वप) हे कुत्ते ! तू अत्यन्त सोजा ॥३॥ (त्वम्+सूकरस्य+दर्दृहि) तू सूकर को काटखा (सूकरः+तव+दर्दर्तु) और सूकर तुझ को काट खाय (इन्द्रस्य+स्तोतॄन्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥४॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५॥
य आस्ते यश्चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां संहन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६॥ ऋ० ७।५५॥

(माता+सस्तु+पिता+सस्तु) हे सारमेय ! तेरे माता पिता सोजांय । जो यह बड़ा कुत्ता है वह भी सोजाय । (विश्पतिः) जो गृहपति है वह भी सोजाय इस प्रकार सबही ज्ञाति और चारों तरफ के आदमी सोजांय । जो बैठा है जो चल रहा है जो हम को देखता है उन सब की आंखों को हम फोड़ते हैं । वे सब राज्यगृह के समान अचल होवें ॥६॥

प्रोष्ठेशयाः वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ।८। ऋ० ७।५५ ॥

(याः+नारीः+प्रोष्ठेशयाः) जो स्त्रियां आंगन में सोगई हैं (वह्येशयाः) जो किसी बिछौने

पर सोई हुई हैं (तल्पशीवरीः) जो पलंग पर सोई हुई हैं (याः+स्त्रियः+पुण्यगन्धाः) जो स्त्रियां पुण्य गन्धवाली हैं (ताः+सर्वाः+स्वपयामसि) उन सब को मैं सुलाता हूं ॥८॥

आशय—सरतीति सरमा। भोगविलास की ओर दौड़नेहारी जो यह महातृष्णा है यही शुनी यानें कुत्ती है और इसी कुत्ती के ये आंख कान आदि इन्द्रिय गुलाम हैं अतः इस का नाम सारमेय है। अर्जुन=श्वेत। इन इन्द्रियों में कोई श्वेत=सात्त्विक और कोई पिशंग अर्थात् राजस तामस नाना वर्ण के हैं। ये दोनों प्रकार के इन्द्रिय परम दुःखदायी हैं। और यह भी प्रत्यक्ष है कि इन्द्रियों का व्यवहार कुत्ते के समान है। अतः कोई उपासक प्रार्थना करता है कि हे कुत्ते के समान इन्द्रियगण! मुझे तुम क्यों दुःख देते हो। तुम सोजाओ अर्थात् शिथिल हो जाओ। तुम जानते नहीं कि हम परमात्मा के उपासक हैं फिर तुम कैसे हम को काट सकते हो तुम सो ही जाओ। मैं इन सब कुत्तों की आंखें फोड़ डालता हूं इत्यादि। इस से जो कोई सचमुच कुत्ते को सुलाने का भाव समझते हैं वे बड़े अज्ञानी हैं। क्या मन्त्र पढ़ने से कुत्ते सो जायंगे? वेद के गूढ़-गूढ़ आशय को न समझ कैसी अज्ञानता लोगों नें फैलाई है। यहां सारमेय आदि शब्द इन्द्रिय-वाचक है। और "मैं स्त्रियों को सुलाता हूं" इस का आशय यह है कि जब इन्द्रियगण अति प्रबल होते हैं तब सबसे पहले स्त्रियों को ओर दौड़ते हैं। विषयी पुरुषों के लिये यह एक महाविषवल्ली है। अतः उपासक कहता है कि "मैं सब स्त्रियों को भी सुलाता हूं" अर्थात् परमात्मा से प्रार्थना है कि स्त्रियों की ओर भी मेरा मन न जाय इत्यादि इस का सुन्दर भाव है। इससे चोरी की कथा गढ़नेंहारे कदापि वेद नहीं समझ सकते। इसमें वसिष्ठ की कहीं भी चर्चा नहीं। यदि मान लिया जाय कि इस मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ होनें से वसिष्ठ ही ऐसी प्रार्थना करते हैं तो भी कोई क्षति नहीं। वैदिक-इतिहासार्थ-निर्णय में विस्तार से दिखला चुका हूं कि वैदिक पदार्थानुसार ऋषियों के नाम दिये जाते हैं जिस कारण वसिष्ठ अर्थात् सत्यधर्म की व्यवस्था का विषय इस मण्डल में है। अतः इसके द्रष्टा का नाम भी वसिष्ठ हुआ। सब को ऐसी प्रार्थना नित्य ही करनी चाहिये इत्यलम्॥

वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं के बीज—सर्वानुक्रमणी, बृहद्देवता, यास्ककृत निरुक्त और ताण्डय महाब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी बहुतसी कथाओं के बीज पाये जाते हैं। एक स्थल में यास्क कहते हैं कि—

"वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव। तं मण्डूका अन्वमोदन्त।
स मण्डूका ननुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव"। निरुक्त ९। ६।

वर्षा की इच्छा से वसिष्ठ मेघ की स्तुति करने लगे, मण्डूकों ने अर्थात् मेंडकों ने उनके वचन का अनुमोदन किया, अनुमोदन करते हुए मेंडकों को देख वसिष्ठजी उन की ही स्तुति करने लग गए। और इनकी स्तुति में १०३ वें सूक्त को देखा। हाँ, इस सूक्त में मण्डूकों का वर्णन तो अवश्य ही है कि वसिष्ठजी मण्डूकों की स्तुति करने लग गए, यह कथा इसमें कहीं भी नहीं है॥

दूसरी जगह यास्क कहते हैं कि "पाशा अस्यां व्यपाशयन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्

विपाडुच्यते" मरने की इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पाश इस नदी में टूटे थे। अतः इसको विपाट् कहते हैं। ऋग्वेद ७। ३२ सूक्त की अनुक्रमणिका में लिखा है कि—

"सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरन्त्यं प्रगाथमालेभे। सोऽर्धर्चं उक्तेऽदह्यत।
तं पुत्रोक्तं वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकम्। वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम्।

शाट्यायन ब्राह्मण के अनुसार जब सुदा राजा के पुत्रों ने वसिष्ठ पुत्र शक्ति को अग्नि में फेंक दिया तब इसने इस सूक्त के अन्तिम प्रगाथ को पाया। किन्तु वह आधी ऋचा की समाप्ति पर स्वयं दग्ध हो गया पश्चात् पुत्रोक्त को वसिष्ठ ने समाप्त किया। और ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार इस अन्तिम प्रगाथ के भी ऋषि वसिष्ठ ही हैं। जब वसिष्ठ के पुत्र हत हुए तब इन्होंने इसको देखा। ऋ० ७। १०४ वें सूक्त को लक्ष्य कर वृहद्देवता में लिखा है कि "ऋषिर्ददर्श रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः। हते पुत्रे शते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा"। जब वसिष्ठ के १०० सौ पुत्र मारे गये तब ऋषि ने इस १०४वें रक्षोघ्न सूक्त को देखा। इस प्रकार की बहुतसी बातें प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं। इस में सन्देह नहीं कि वेदों के यथार्थ तात्पर्य नष्ट होने पर विविध आख्यायिकाएं रची गईं। बहुतसी कथाएं रूपक में लिखी गई थी उनका भी आशय समय पा कर अज्ञात हो गया। मैं अब महाभारतादि में जो वसिष्ठ सम्बन्धी वार्त्ता पाई जाती है उसको दिखलाऊंगा। वह भी गूढ़ आशय प्रगट करती है अतः ध्यान से पढ़िये और इसके तात्पर्य को अच्छे प्रकार विचारिये॥

विश्वामित्र का वंश—वेदों में विश्वामित्र शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं[1]। जैसे लोक में विश्वामित्र कौशिक कहाते हैं वैसे वेद में "कुशिकस्य सूनुः" ऐसा प्रयोग है किन्तु वैदिक आशय क्या है इस का संक्षेप वर्णन चतुर्दशभुवन में देखिये। वेदों में विश्वामित्रादिकों की न कोई वंशावली और न कोई अनित्य इतिहास है। वसिष्ठ और विश्वामित्र की शत्रुता का गन्ध भी वेदों में नहीं पाया जाता। सुप्रसिद्ध ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन दोनों के वैर की कोई चर्चा नहीं। महाभारत वाल्मीकीय रामायण से लेकर आधुनिक ग्रन्थ तक वैसी चर्चा पाई जाती है। मैं वारम्वार लिख चुका हूं कि महाभारत पुराणादि में भी शतशः गाथायें केवल रूपकालङ्कार में लिखी गई हैं जिनको आज के

---

१. महां ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहद् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
विश्वामित्रा अरासत महेन्द्राय वज्रिणे ॥१३॥ ऋग्वेद ३।५३।
जन्मन् जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः॥ ऋ० ३।१।२१।

इत्यादि यहां भी कुशिक और विश्वामित्र का सम्बन्ध देखते हैं। एक सूक्त के विश्वामित्र और जमदग्नि दोनों ऋषि हैं और ऋचा में भी दोनों नाम आए हैं यथा "सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे" ऋ० १०।१६७।४। पुराणों के अनुसार विश्वामित्र की बहिन सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हैं अर्थात् विश्वामित्र के भागिनेय (भांजा) जमदग्नि हैं। किन्तु वेदों में इसका अध्यात्म तात्पर्य है। 'विश्वामित्र ऋषिः" ऐसा पद यजुर्वेद १३।५७ में आया है शतपथ इसका अर्थ करता है "श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः' ८।१।२।६॥

कतिपय पुरुष तथ्य मान इतिहास समझते हैं। इस में भी किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि उन रूपितालङ्कारों का स्वरूप बहुत परिवर्तित होता चला आया है जिस से झटिति सत्यता का पता नहीं लगता। महाभारत आदि पर्व अध्याय १७५ में लिखा है—

"कान्यकुब्जे महानासीत् पार्थिवो भरतर्षभ। गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः ॥३॥
तस्य धर्म्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः। विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥४॥

कान्यकुब्ज देश के राजा कुशिक के पुत्र गाधि[१] हुए और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। परन्तु वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड सर्ग ३४ में[२] लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र कुश के वैदर्भी नाम की स्त्री में कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरजा और वसु नाम के चार पुत्र हुए। कुशनाभ के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध १५ वें तथा प्रथम अध्याय में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि। मरीचि के पुत्र कश्यप। कश्यप के पुत्र विवस्वान्। विवस्वान् के पुत्र मनु। मनु के पुत्र सुद्युम्न। सुद्युम्न के पुत्र पुरूरवा। पुरूरवा के पुत्र विजय। विजय के पुत्र भीम। भीम के पुत्र काञ्चन। काञ्चन के पुत्र होत्र। होत्र के पुत्र जह्नु। जह्नु के पुत्र पुरु। पुरु के पुत्र बलाक। बलाक के पुत्र अजक। अजक के पुत्र कुश। कुश के पुत्र कुशाम्बु। कुशाम्बु के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हैं। महाभारत रामायण और भागवत को मिलाइये वंशावली में कितना भेद है। तब किस प्रकार यह इतिहास माना जाय और ये ग्रन्थ सत्य माने जायें। महाभारत का झुकाव वेदार्थ की ओर रहता है। भागवत आदि उसका यथार्थ इतिहास बना देते हैं।

कान्यकुब्ज देश—इस देश का कान्यकुब्ज नाम कैसे हुआ, इसकी कथा वाल्मीकि रामायण में विस्तार से उक्त है।

"कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्।
जनयामास धर्म्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥११॥ रा० बा० सर्ग ३४॥

राजा कुशनाभ की घृताची नाम की स्वर्गवेश्या में १०० एक सौ कन्याएं उत्पन्न हुईं। वायु देवता शत कन्याओं को एक समय उद्यान भूमि में देख अति व्याकुल हो इन से बोले कि आप सब ही मेरे साथ विवाह कर लीजिये। कन्याओं ने मिलकर कहा कि "अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां किल मारुत। प्रभावज्ञाः स्म ते सर्वाः किमस्मानवमन्यसे॥ ३८। १८। हे मारुत! आप सब प्राणियों के भीतर विचरण कर रहे हैं आप का प्रभाव हम जानती हैं। हमारा निरादर क्यों आप करते हैं। कुशनाभ की हम कन्याएं हैं। अपने कुलमर्य्यादा की रक्षा कर रही हैं। पिताजी हम को जिन के हाथों में समर्पित करेंगे वेही हमारे स्वामी होंगे। इत्यादि बहुत वादानुवाद करने से वायु देव कुपित होके "तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परमकोपनः। प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः" ॥ २२ ॥

१. प्राचीन ग्रन्थों में गाधि के स्थान में गाथी शब्द आता है।

२. सर्ग अध्याय आदि का पता आज कल बड़ा गड़ बड़ हो रहा है अतः ग्रन्थ देखकर पता लगा लेना उचित है।

उन कन्याओं के गात्रों में पैठ तोड़ मरोड़ कर उन कन्याओं को कुब्जाएं बनादीं।

"यद्वायुना च ताः कन्यास्तत्र कुब्जीकृताः पुरा।
कान्यकुब्जमितिख्यातं ततः प्रभृति तत्पुरम्" ॥३९॥

जिस कारण वायु ने उन कन्याओं को वहाँ कुब्जाएं कर दीं अतः नगर का नाम कान्यकुब्ज हुआ। पश्चात् इन १०० शत कन्याओं का विवाह चूली राजा के पुत्र ब्रह्मदत्त से हुआ। ऐसे ऐसे शतशः गप्प रामायण महाभारत में भी बहुत से भरे पड़े हुए हैं। यह ब्रह्मदत्त भी किसी गन्धर्वी के उदर से व्यभिचार से उत्पन्न हुआ था।

विश्वामित्र और वसिष्ठ का आश्रम—महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४ में लिखा है कि एक समय विश्वामित्र अरण्य में शिकार करते हुए प्यास से अति व्याकुल हो वसिष्ठ जी के आश्रम में पहुंचे। वाल्मीकि-रामायण में भी बालकाण्ड अध्याय ५१ से इस कथा को देखो। राजा को आए हुए देख वसिष्ठ जी यथाविधि सत्कार कर बोले कि हे राजन् विश्वामित्र! आज रात्रि आप ससेन मेरी कुटी को सुशोभित कीजिये, विश्वामित्र ने कहा कि आप वन में तपस्वी हो सत्य की उपासना कर रहे हैं। मेरे साथ बहुत से आदमी हैं अतः क्षमा मांगता हूं इस समय मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। वसिष्ठ के वारम्वार हठ करने पर विश्वामित्र ठहर गये। सब कोई चिन्ता करने लगे कि ऋषि के निकट इतनी धन सामग्री कहां से आवेगी, कैसे इतनी सेना को खिला सकेंगे। न कहीं किसी को पकाते हुए देखते न आग न पानी न आसन न वासन। क्या यह ऋषि दिल्लगी तो नहीं कर रहे हैं। रात्रि में हम सब भूखे तो नहीं मरेंगे। इस प्रकार के संकल्प विकल्प से व्याकुल हो ही रहे थे कि वसिष्ठजी की आज्ञा से यथायोग्य आसन पर विश्वामित्र और सेना के सब पुरुष बैठाए गए। वे आश्चर्य से देखते हैं कि जिस की जिस पदार्थ पर रुचि है वही पदार्थ उस की पत्तल पर परोसा हुआ है। राजा विश्वामित्र को भी विस्मय हो रहा है, ऐसे ऐसे त्रिलोक दुर्लभ, विविध प्रकार के लेह्य, चोष्य, पेय, भोज्य, भोजन कहां से आते हैं। भोजन कर वे सुसंतुष्ट हुए। किन्तु ऋषि की ऐसी अचिन्त्य विभूतियों को देख विश्वामित्र अति अस्तव्यस्त हो गये। जब शबला नन्दिनी कामधेनु की सिद्धि का पता लगा वसिष्ठ जी के निकट जा बोले कि हे ऋषे!

'अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः।
नन्दिनीं सं प्रयच्छस्व भुंक्ष्व राज्यं महामुने'। महाभारत॥
'ददाम्येकां गवां कोटीं शबला दीयतां मम'। रामायण॥

आप एक अर्बुद गायें लेवें। सम्पूर्ण मेरा राज्य ही लेकर भोग करें किन्तु यह नन्दिनी गौ मुझे दे दीजिये। मैं राजा हूं। मैं इस गौ से बहुत उपकार कर सकूंगा आप को ऐसी गाय से क्या प्रयोजन। वसिष्ठ ने बहुत समझा कर कहा कि यह नन्दिनी कदापि मुझ से अलग नहीं हो सकती आप जैसा चाहें सो करें।

विश्वामित्र उवाच—क्षत्रियोऽहं भवान् विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः। ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशा-

न्तेषु धृतात्मसु। अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम्। स्वधर्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम्॥ वसिष्ठउवाच—बलस्थश्चासि राजा च बाहुवीर्यश्च क्षत्रियः। यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय॥ महा०॥ विश्वामित्र ने कहा कि मैं क्षत्रिय हूं आप ब्राह्मण हैं। आप में वीर्य कहां! एक अर्बुद गौ देने पर भी यदि आप इस नन्दिनी को नहीं देते हैं तो मैं भी अपना धर्म न छोड़ूंगा बलात् गौ ले जाऊंगा। यह सुन वसिष्ठ ने कहा एवमस्तु आप जैसा चाहें शीघ्र ही वैसा कीजिये। विश्वामित्र बहुत विवाद के पश्चात् नन्दिनी को खोल कोड़े से खूब पीटते हुए अपनी सेना से लिवा चले। वह नन्दिनी हुंकार भरती हुई वसिष्ठ के पास आकर बोली कि क्या आप मुझे त्यागते हैं। इस पर वसिष्ठ ने कहा कि—

क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्। क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते"। म० आ०। १७५॥ क्षत्रियों के बल तेज और ब्राह्मणों का बल क्षमा है। मुझे क्षमा प्राप्त है। यदि तेरी रुची हो तो जा। मैं तुझे त्यागता नहीं यदि तू अपने बल पर ठहर सकती हैं तो रहजा। मैं इसमें कुछ नहीं कहता। ऐस इच्छा वसिष्ठ की देख क्रोधाग्नि से सूर्य की ज्वाला के समान देदीप्यमाना हो वह नन्दिनी अपनो सिद्धि के बल से पह्लव, द्राविड, शक, यवन, शबर, कांचि, शरभ, पौण्ड्र, किरात, सिंहल, वर्बर, वश, चिबक, पुलिंद, चीन, हून, केरल और म्लेछों के शतशः गणों को पैदाकर विश्वामित्र की सेना के साथ युद्ध करने लगी। महाभारत आदि पर्व १७५। क्षण मात्र में विश्वामित्र की सेना छिन्न भिन्न हो इतस्ततः भाग गई। विश्वामित्र को बड़ा ही पश्चाताप हुआ "धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्म तेजो बलं बलम्" ऐसा कहते हुए राज्य त्याग वह तप करने को चले गए। पश्चात् ब्रह्मणत्व को प्राप्त हुए इत्यादि कथा इस समय घर घर प्रसिद्ध है॥

वसिष्ठ के पुत्रों को मरवाना—परास्त हो तप करते हुए भी विश्वामित्र वसिष्ठ के अनिष्ट करने से विमुख नहीं हुए। प्रथम राजा कल्माषपाद को अपने पक्ष में कर उस से वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने मरवाया पुनः—

"शक्तिं तं तु मृतं दृष्ट्वा विश्वामित्रः पुनः पुनः। वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः सन्दिदेश ह"॥ शक्ति को मृत देख अन्य पुत्रों को खाने के लिये उस राक्षस को भेजा। वह सिंह व्याघ्र के समान वसिष्ठ के सब पुत्रों को निगल गया।

वसिष्ठ की व्यग्रता—विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्रों को घातित देख महापर्वत के समान अपने तप में स्थिर रह किसी प्रकार उस शोक को वसिष्ठ धारण करते रहे, किन्तु अन्ततो गत्वा परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए। आत्महत्या की चिन्ता करने लगे। सुमेरु पर्वत के अन्त्य शिखर पर चढ़ वहां से गिरे। किन्तु शिलाओं का ढेर उनके लिये तूलराशि हो गए, उस पतन से वे न मरे। तब वह अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें जा घुसे किन्तु अग्निदेव इन्हे भस्म करने में सर्वथा असमर्थ रहे। तब बहुत बड़ी शिला कंठ में बांध समुद्र में जा कूदे। समुद्रदेव ने भी इन्हें बाहर निकाल तट पर रख दिया। इस प्रकार अपने को घात करने में असमर्थ देख परम खिन्न हो पुनः आश्रम लौट आए। वहां भी पुत्रों से आश्रम को शून्य देख व्याकुल हो पृथिवी पर भ्रमण ही करने लगे॥

विपाशा और शतद्रु—इतने में ही वर्षा ऋतु आगई जल से नदियों को खूब भरी देख अपने अंगों को पाशों (फांसों) से बांध किसी एक नदी में जा गिरे किन्तु वह नदी ऋषि के प्रताप से डर सब पाशों को काट उनको तट पर ले आई।

"उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः"।

तब जिस कारण पाशों मे छूट इस नदी से उत्तीर्ण हुए अतः ऋषि ने इसका नाम 'विपाशा' रख दिया। पुनः शोकान्वित हो भ्रमण करते हुए वे किसी दूसरी नदी में जा गिरे। वह नदी भी भय से अनेकमुखी हो भाग गई, वे तट पर आ पहुचे। सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा। शतधा विद्रुता यस्मात् शतद्रुरिति विश्रुता'। वह नदी जिस कारण अग्निसम उस विप्र को देख शतमुख हो वहने लगी अतः तब से वह शतद्रु नाम से विख्यात हुई॥

वसिष्ठ का आश्वासन—तब वसिष्ठ अपने को सर्वथा अवध्य जान आश्रम को लौट आए वहां देखते हैं कि शक्ति पुत्र के समान ही कोई वेद पढ़ रहा है शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती थी। इसी से एक बालक का वेद पढ़ता हुआ द्वादश वर्ष के पश्चात् जन्म हुआ "अदृश्यन्त्युवाच। मम कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते। समा द्वादश तस्य ह वेदानभ्यसतोमुने"। अदृश्यन्ती ने कहा हे मेरे परम पूज्य पितृवदाराध्यदेव! आपके पुत्र से मेरी कुक्षि (पेट) में यह बालक उत्पन्न हुआ है। वसिष्ठजी वंशधर सन्तान देख पुनः स्वप्रकृतिस्थ हुए और उसका नाम पराशर रक्खा और जिस राजा कल्माषपाद ने विश्वामित्र के कहने से वसिष्ठ के पुत्रों को खाया था उसको भी अपने वश में लाए॥

कल्माषपाद कौन है—श्रीद्भागवत ९.९ में सुदास राजा का पुत्र कल्माषपाद कहा गया है। इसका पहला नाम मित्रसह है। उन्होंने बन में किसी एक राक्षस को मारा था। उसका भाई-वदला लेने के अभिप्राय से पाचक का रूपधर इसी राजा के यहां रसोइया नियुक्त हुआ। इसने गुरु वसिष्ठ को एक दिन मानवमांस खिला दिया इस पर परम क्रुद्ध हो वसिष्ठ ने राजा को शाप देदिया कि तू राक्षस हो जा। राक्षस होने पर उसका पैर कल्माष अर्थात् नाना रंगवाला या काला हो गया। तब से कल्माषपाद ही कहलाने लगा।। महाभारत में लिखा है कि वसिष्ठ पुत्र शक्ति और कल्माषपाद रास्ते के लिये लड़ने लगे। राजा ने शक्ति को कोड़े से पीटा तब शक्ति ने शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। दूसरी घटना यह हुई कि किसी एक ब्राह्मण ने बन में राजा को कहा कि मुझे समांस भोजन करवाओ। राजा ने कहाकि मैं राजधानी में जाके भोजन भेजता हूं आप यहां ही प्रतीक्षा करें, वह गृह पर आकर भूल गए। दो पहर रात्रि में स्मरण कर सूद (पाचक) को बुला यह बात कहीं। सूदने कहा कि पाकशाला में इस समय मांस नहीं है तब राजा ने कहा कि "अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः" यदि मांस नहीं है तो नर मांस ही सही। उस सूदने नर मांस ला पका उस विप्र के पास लेजा कर खिलाया। विप्र ने नर मांस देख राजा को राक्षस होने का शाप दिया! इन दो शापों से वह मित्रसह राक्षस हो गया। राक्षस होके प्रथम वसिष्ठ पुत्र शक्ति को ही खा गया। इत्यादि कथा महाभारत आदि पर्व अध्याय १७६ में देखिये। ऋग्वेद में कल्माष वा कल्माषपाद शब्द नहीं आया है। मित्रसह शब्द का भी प्रयोग नहीं है॥

भारतीय कथा का आशय।

महाभारतादि में जैसी कथा लिखी है संक्षेप से उस का वर्णन लिखा गया है। अब इसका आशय यहाँ दरशाना बाकी है। इन कथाओं में कई एक उन्नति देखते हैं। वेद में शक्ति, पराशर, शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ति आदि की कहीं चर्चा नहीं, विश्वामित्र और वसिष्ठ की शत्रुता और वसिष्ठ की नन्दिनी की कहीं गन्ध नहीं। वसिष्ठ के ऊपर वारम्वार विश्वामित्र का आक्रमण और पुनः विश्वामित्र का ब्राह्मण होना इत्यादि किञ्चिन्मात्र भी अंश वेद में नहीं। पूर्व वर्णन से यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत के बहुत पहले से वसिष्ठ के सम्बन्ध में कुछ ऐसी कथायें चली आती थीं जिन का पूरा विवरण तो कहीं इस समय नहीं मिलता किन्तु शाट्यायन और ताण्ड्य महाब्राह्मण आदिकों में किञ्चित् अंशमात्र का उपन्यास है। महाभारत स्वयं कहता है कि "इदं वासिष्ठमाख्यानं पुराणं परिचक्षते" इस वसिष्ठ आख्यान को लोक बहुत पुराण बतलाते आए हैं। अतः इसके बहुत परिवर्तन और समय समय पर न्यूनाधिक्य के कारण आशय भी बदलते गए। मैं यहां क्रमशः दो एक आशय प्रकट करता हूं—१ वसिष्ठ कौन है? वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में इन्द्रियों को वश में लाने की कथाएं बहुत आया करती हैं। येही देव और असुर हैं। क्षण में ही ये इन्द्रिय देव और क्षण में ही असुर बन जाते हैं। प्रत्येक आदमी अपने अपने जीवन में देखता है कि इन्द्रियों का कैसा महाघोर संग्राम कभी कभी हुआ करता है, इसी का नाम देवासुर संग्राम है। शुनःशेप, त्रित, दीर्घतमा आदिकों की कथा वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में देखिये। उसी प्रकार की रूपकालंकार में यह भी एक कथा ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में बनाई गई है, कथाएं इस प्रकार मिश्रित हो गई हैं कि इनका पता लगाना कठिन काम है॥

वसिष्ठ कौन है—

प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः। यद्वैनु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठोऽथो यद्वस्तृतमो वसति तेनोऽएव वसिष्ठः। श० का० ८। अ० १ ब्रा० १॥

यो वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति। वाग्वाव वसिष्ठः। छा० उ० ५।१।२॥

यो ह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा। बृ० उ० ५। १॥

इत्यादि अनेक प्रमाण से सिद्ध है कि ऐसे स्थलों में इन्द्रियों का नाम वसिष्ठ हैं। यहां प्राण विशिष्ट धर्म्मनिष्ठ, वेदवाणी निपुण परम तपस्वी जीवात्मा का नाम वसिष्ठ है—

"मित्र एव सत्यः। वरुण एव धर्म्मपतिः।" शतपथ ५।३।

मित्र ही सत्य है और वरुण धर्म्मपति है। जब सत्यधर्म्म और धर्म का अधिष्ठातृ देव विवेक विचार आदि दोनों मिलते हैं तब ही शुद्ध विशुद्ध जीवात्मा का प्रकाश उर्वशी द्वारा होता है। ये जो वैदिक विविध क्रियायें हैं वही उर्वशी अप्सरा है क्योंकि इसी को बहुत से वैदिक ऋषि चाहते हैं 'उरवो बहव उशन्ति इच्छन्ति यां सा उर्वशी' बहुत प्रकार की क्रियायें होती हैं अथवा उनका अप=जल से सम्बन्ध है अतः उसको अप्सरा कहते हैं। उसी परम पवित्रा परम सुन्दरी क्रिया को लक्ष्य करके अर्थात् वैदिकी क्रिया को जगत् में प्रसिद्ध करने के लिये मित्र व वरुण शुद्ध जीवात्मा को जन्म देते हैं।

उस जीवात्मा का सब ही आदर करते हैं। हृदय रूप पुष्कर के ऊपर बैठा ध्यान करते हैं। ऐसा शुद्ध जीव भी मोहवश नाना दुःख भोगता है। यह विचित्र लीला इस आख्यायिका में दिखलाई जाती है यथा—यह अविवेकी दुष्ट मन ही विश्वामित्र है। ज्ञान, विज्ञान, सत्य, दान, तप आदि सकल शुभ कर्म्मों का यही दुष्ट मन महा शत्रु बन जाता है। अतः यह दुष्ट मन सबका शत्रु होने के कारण विश्वामित्र है, इन्द्रियगण ही इसकी सेनायें हैं। उन अविवश इन्द्रियरूप सेनाओं को लेकर यह विश्वामित्र सहस्रों का शिकार कर रहा है। यहां ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य्य नहीं। द्व्यर्थ में विश्व+मित्र शब्द ही विश्वामित्र बन जाता है। जो सत्य धर्म को नष्ट करे वह अवश्य विश्वामित्र कहावेगा। शुद्ध पवित्र विवेकशालिनी बुद्धि ही नन्दिनी है. यही उपासकों को विविध अभिष्ट देती है अतः यही कामधेनु है। बुद्धिमान् पुरुष इसी बुद्धि से संसार को वश में कर लेते हैं। यही अद्भुत अद्भुत पदार्थ उत्पन्न करती है। अब इतनी टिप्पणी के साथ आशय पर ध्यान दीजिये—

आश्रम में विश्वामित्र का प्रवेश—बड़े-बड़े तपस्वी योगी ऋषियों का भी मन चञ्चल हो जाता है। सांसारिक भोगविलास बलात्कार उपासक को अपनी ओर खैंच लेते हैं अतः गीता में कहा जाता है कि **"अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः"** महाभारत आदिकों में इसके अनेक उदाहरण कहे गए हैं सोभरि जल में तप करते थे तो भी तपोभ्रष्ट हुए। भोगविलास की ओर मन का ही मानों विश्वामित्र का वसिष्ठ के हृदयरूप आश्रम में प्रवेश है। प्रथम उपासक इसका बड़ा आदर करता है। यही दुष्ट मनोरूप विश्वामित्र को नाना भोगों से वसिष्ठ कर्तृक तृप्त करना है।

महासंग्राम—इस प्रकार जब मन देखता है कि यह मेरे वश में आ गया है किन्तु इसके पास एक बुद्धिरूपा नन्दिनी है जो कभी-कभी रुकावट डालती है, प्रथम इसका ही हरण करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं कि जब आदमी भोगविलास में फंसता है तब इसकी बुद्धि प्रथम नष्ट होती है। अतः इस बुद्धिरूपा नन्दिनी को विश्वामित्र हरण करना चाहता है परन्तु बहुत दिनों से परिपक्वा वेदों तथा विवेकों से सिक्ता बुद्धि शीघ्र नष्ट नहीं होती। दुष्ट मन और विवेकशालिनी बुद्धि में कर्त्तव्याकर्त्तव्य के वास्ते महाभयङ्कर संग्राम होता है। बुद्धि जीत जाती है। मन भाग जाता है, परन्तु दुष्ट मन कभी निश्चिन्त नहीं होता॥

वसिष्ठ पुत्र शक्ति का नाश—यहां देखते हैं कि वसिष्ठ के पास ऐसी नन्दिनी रहने पर भी वह इनकी रक्षा करने में समर्था नहीं होती जो नन्दिनी सहस्रों भोज्य पदार्थ उत्पन्न कर क्षण मात्र में विश्वामित्र की सेना को तृप्त कर देती है, जो अनेक प्रकार की सेनाओं को उत्पन्न कर विश्वामित्र की सेनाओं को छिन्न भिन्न कर भगा देती है वह अब कहां गई जो वसिष्ठ के पुत्र को भी बचा न सकी। इसमें गूढ़ रहस्य यह है कि जब उपासक मनको चञ्चल बना देता तब वह बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकती प्रथम उपासक के मानसिक आत्मिक और शारीरिक बलों को वह मन नष्ट कर देता है। अतः लिखा है कि वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने कल्माषपाद से मरवा दिया। मानसिक आदि बलही प्रिय पुत्र हैं। इसी से परम रक्षा होती है। यही वसिष्ठ (जीवात्मा) का परमप्रिय पुत्र शक्ति है जिस के नष्ट होने से जीवात्मा विविध दुःख को भोगता है॥

वसिष्ठ की व्यग्रता—जब मन दुष्ट हुआ। बुद्धि नष्ट हुई। शक्ति जाती रही तब मनुष्य क्यों-कर पागल न हो। अब वसिष्ठ पागल होकर कभी कामरूप महाग्नि में भस्म होता है कभी पापरूप महासमुद्र में गिरता है कभी शोकरूप चट्टानों पर गिरकर चूर्ण-चूर्ण होता है अथवा विविध मानसिक दुःखों से पीड़ित होता है यही वसिष्ठ का अग्नि आदि में भस्म होना आदि है, परन्तु वह कहीं मरता नहीं इस प्रकार विविध ठोकरों को खाता हुआ जब कभी इसे होश आता है तब वह पुनः चेत जाता है और सब विघ्नों को नाशकर वसिष्ठ का वसिष्ठ बन जाता है। यही वसिष्ठ का पुनः आश्रम में प्रवेश है ॥

पराशर की उत्पत्ति—पुनः जब वसिष्ठ आश्रम में लौट कर आता है तो देखता है कि कोई बालक वेद ध्वनि कर रहा है उस से प्रसन्न हो पुनः स्वस्थ हो जाता है। ठीक है आध्यात्मिक शक्ति का अवश्य कुछ फल मिलता ही है। उस शक्ति की भी शक्ति अदृश्य है। अतः शक्ति की स्त्री का नाम 'अदृश्यन्ती' है, इस से पराशर उत्पन्न होता है 'परान् शत्रून् अथवा आश्रृणाति पराशृणाति' अर्थात् निखिल विघ्नरूप शत्रुओं को नाश करने द्वारा विवेक ही यहां पराशर है क्योंकि यह वेद पढ़ रहा है, भाव इसका यह है कि जब पुनः विवेक उत्पन्न होता है तब वेद शास्त्रों में चित्त लगने लगता है तब सब विघ्न स्वयं नष्ट हो जाते हैं ॥

कल्माषपाद—जिसके बल पर चलते हैं वह पैर है। कल्माष=विविधवर्ण वा काला। ज्ञान विज्ञान युक्त धर्म्म ही मनुष्य का पैर है जब यह बिगड़ जाता है तब इसकी शक्ति कैसे रह सकती है। अतः लिखा है कि यह प्रथम 'मित्रसह' नामसे प्रसिद्ध था, और वसिष्ठ का यजमान भी था पश्चात् यही राक्षसरूप होके शक्ति को खा गया। निःसन्देह धर्म्म ही आत्मरूप वसिष्ठ का सहायक है, इसी यजमान से आत्मारूप पुरोहित विविध धन पाता रहता है। परन्तु जब आत्मरूप वसिष्ठ इसका निरादर करता है तब निःसन्देह वह बिगड़ जाता है और आत्मा को भी बिगाड़ना आरम्भ करता है "धर्म्म एव हतो हन्ति" ॥

विश्वामित्र का वारम्वार आक्रमण—भिन्न-भिन्न स्थलों में भिन्न-भिन्न कथा है' ग्रन्थ के विस्तार भय से मैं सब को पृथक्-पृथक् नहीं बतला सकता। महाभारत आदि पर्व में वारम्वार आक्रमण की कथा नहीं है, रामायण में इसका विस्तार से वर्णन है। निःसन्देह दुष्ट मन वारम्वार तपस्वी आत्मा को भी दूषित करना चाहता है परन्तु जो उपासक परीक्षा में स्थिर रहते हैं वे सदा विजयी होते आए हैं। यही इसका आशय है ॥

विश्वामित्र का ब्राह्मण होना—जब यह ब्राह्मण हो जाता है तब पुनः वसिष्ठ के साथ वैर नहीं रखता। ठीक है। जब तक यह मन राजस और तामस भाव में लगा रहता है तबतक आत्मा को दुःख ही देता रहता है जब यह भी आत्मा के समान सात्त्विक बन जाता है तब दोनों मिलकर जगत् में महान् कल्याण को सिद्ध करते हैं। यही विश्वामित्र का ब्राह्मण होना है। उपनिषदों में आया है तप वा कर्म्म करने से ये इन्द्रियगण मनःसहित देव बनते हैं अतः यहां विश्वामित्र का तपश्चरण के पश्चात् ब्राह्मण होना लिखा है ॥

कथा की तुलना— लोग कहेंगे कि यह केवल एक छोटी सी बात है परस्पर मनःसहित इन्द्रियों और आत्मा के साथ युद्ध का इतना बड़ा वर्णन करना असंगत प्रतीत होता है इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि क्या ऐसे ही घोरयुद्ध का वर्णन बुद्धदेव और कामदेव के साथ नहीं है ? क्या सचमुच देहधारी कामदेव के साथ बुद्ध का युद्ध हुआ था। क्या यथार्थ में महादेव के ऊपर देहधारी काम ने चढ़ाई की थी, जिस को उन्होंने भस्म कर दिया। क्या सचमुच ईसा को कहीं शैतान लेगए थे और कई दिनों तक उन को दुःख देते रहे ? इत्यादि आलङ्कारिक कथा प्राचीन काल में बहुत बनाई जाती थी। इसी वसिष्ठ और विश्वामित्र की कथा प्रतिरूप बुद्ध के साथ कामदेव का युद्ध है ॥

असंगति किस पक्ष में—इतिहास मानने वालों से मैं पूछता हूं कि क्या किसी समय में ऐसी गौ हो सकती है जो सारी सृष्टि रचने की भी शक्ति रखती हो ? क्या विश्वामित्र कोई पागल राजा था कि एक गौ के लिये अपना सम्पूर्ण राज्य देता था, या गौ की ऐसी शक्ति देखकर भी उस से उस को भय नहीं उत्पन्न हुआ कि जिसके ऐसे सामर्थ्य हैं उसे मैं बलात्कार कैसे ले जाऊंगा। पुनः ऐसी गौ के रहते हुए भी वसिष्ठ के पुत्रों की रक्षा क्यों न हुई ? ब्राह्मण होने हो के लिये विश्वामित्र क्यों मरता था ? क्योंकि राजाओं की भी थोड़ी प्रतिष्ठा नहीं थी। क्या यह सम्भव है कि एक क्षत्रिय राजा राक्षस होके अपने पुरोहित को ही खा जाय ? इत्यादि विषयों पर ध्यान देने से इस कथा का आलङ्कारिकत्व सिद्ध होता है ॥

२ द्वितीय आशय—इस का अन्य आशय इस प्रकार होता है। महाभारत के विषय में यह कहा जाता है कि "भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः" वेदों के ही अर्थों को नाना रूपों में वह वर्णन करता है। मैं भी इस मत से बहुधा सहमत हूं। महाभारत शब्दों तथा भावों को कुछ परिवर्तन कर वेदार्थ को दरशाता है। वेद में शुतुद्री। भारत में शतद्रु। वेद में च्यवान। भारत में च्यवन। वेद में दध्यङ्। भारत में दधीचि इस प्रकार के अनेक उदाहरण पावेंगे। जैसे महाभारत शब्दों को हेर फेर कर उस उस का निज अभीष्ट अर्थ बना लेता है वैसे ही वेदार्थ में भी कुछ बदल कथा रचता है। वेदों में दन्त्य सकार से, भारत में तालव्य शकार से वशिष्ठ लिखा जाता है। व्युत्पत्ति भी इस प्रकार हो प्रायः करते हैं। महाभारत वेदार्थ से बहुत दूर नहीं जाता है, यह भी प्राचीन ग्रन्थों का ही अधिकांश में संग्रहकर्त्ता है। महाभारत दिखलाना चाहता है कि सत्य धर्म्म के नियमों को भी लोग निरूपद्रव नहीं रहने देते। अब इन विषयों को इस आख्यान में विचार दृष्टि से देखिये ॥

विश्वामित्र शब्द—विश्वामित्र ऐसा नाम क्यों रखा गया। पाणिनि व्याकरण के अनुसार "मित्रे चर्षौ" ऋषि अर्थ में विश्वामित्र बनता है किन्तु यह अभी तक राजा है राजर्षि भी नहीं फिर विश्वामित्र इस नाम से यह कैसे पुकारा जा सकता है और वेद में विश्वामित्र और वसिष्ठ के वैर की कोई चर्चा नहीं अतः लोक में यह शब्द कुछ अन्य अर्थ का सूचक है इस में सन्देह नहीं। मैं कह चुका हूं कि सत्य धर्म्म का नाम वसिष्ठ है। उस को जो नष्ट करना चाहेगा वह अवश्य शत्रु बनेगा अतः विश्व के अमित्र अर्थ में यह विश्वामित्र शब्द है। अब विश्वामित्र राजा क्यों कहाता इसका भी कारण

यह है कि सात्त्विक पुरुष सदा धर्म्म में स्थिर ही रहते हैं। तामस जन कुछ कर ही नहीं सकते। केवल राजस पुरुष ही हलचल मचाने हारे होते हैं, वे ही अधिकांश धर्म्म नियमों को उल्लंघन कर प्रजाओं में उपद्रव करते रहते हैं। अतः यह विश्वामित्र राजा कहता है। धर्म्म केवल तप और बुद्धि पर निर्भर है। वही बुद्धि नन्दिनी है। यही काम धेनु है। वह उपद्रवात्मक विश्वामित्र राजा प्रथम जगत् से बुद्धि को नष्ट करना चाहता है। परन्तु वह नष्ट नहीं हो सकती। बुद्धि का ही विजय होता है। पुनः परास्त हो धर्म्म के सहायकों को अपना सहायक बना प्रथम नियम की शक्ति को नष्ट कर देता है। अतः इस आख्यान में आता है कि जो मित्रसह प्रथम वसिष्ठ का यजमान था वही विश्वामित्र का सहायक बन शक्ति को खा जाता है। धर्म्मरूप मित्र का रक्षक था वह अब भक्षक बन जाता है। जब धर्म्म की शक्ति नष्ट हो जाती है वह धर्म्म व्याकुल हो जाता है। धर्म्म देखता है कि जो मेरे पालक थे, जिनकी सहायता से मैं उत्पन्न हुआ हूं वह राजवर्ग ही मुझे खाना चाहता है तो इस से अच्छा है मैं मर जाऊं। यह सोच धर्म्मरूप वसिष्ठ अग्नि, जल, पर्वत, शस्त्रास्त्र, विष आदि सब के निकट मरने को जाता है परन्तु धर्म्म की रक्षा जड़ पदार्थ भी करना चाहते हैं क्योंकि धर्म्म के नियम पर ही वे चल रहे हैं। अतः अपनी शरण में आए हुए धर्म्म को अग्नि आदि कोई भी नष्ट नहीं होने देते। अतः सब स्थान से वह धर्म्म लौट आता है अर्थात् कुछ समय तक राजस पुरुषों के उपद्रव से धर्म्म अस्त-व्यस्त सा हो जाता। यही आश्रम छोड़ वसिष्ठ का इधर उधर चला जाना। पश्चात् पुनः प्रजाओं में कोलाहल मचता है। उपद्रव शांत किया जाता है। स्वयं उपद्रवी धर्म्म बल देख शान्त होकर पश्चात्ताप करके शुद्ध आचरण बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे भी सात्त्विक बन जाते हैं। यह केवल धर्म्म का ही प्रभाव है जो राजस पुरुष भी सात्त्विक बन हिंसकप्रवृत्ति से निवृत्त हो जाते हैं। अतः यह उपद्रवात्मक विश्वामित्र ब्राह्मण बनता है। दूसरी ओर प्रजाएं धर्म को पुनः सींचने लगती हैं। धर्म से कर्म आदि पुत्रों की अदृश्यन्ती शक्ति से पराशर अर्थात् समस्त उपद्रवों का विनाश करने हारा पुत्र जन्म लेता है। उस से पुनः वैदिक मार्ग स्थिर होजाता है। अतः पराशर के जन्म से वसिष्ठ की शान्ति होती है॥

कथा की नित्यता—धर्म्म नियम का सदा नाम वसिष्ठ होगा क्योंकि सब के हृदय में अच्छे प्रकार यह वास करता है, इसको सदा मित्र वरुण अर्थात् ज्ञानी और राज वर्ग मिलकर जन्म दिया करेंगे। इस के जो विरुद्ध होंगे वे विश्वामित्र और कल्माषपाद आदि नामों से पुकारे जायंगे। यह सदा क्षत्र वर्गों का ही पुरोहित अर्थात् शासक रहेगा। यह ब्राह्मण नाम से पुकारा जायगा क्योंकि अधिकांश यह ज्ञानी वर्ग से उत्पन्न होता है। धर्म की शक्ति देख सदा राजस वर्ग ब्राह्मण होने की चेष्टा करेंगे। इत्यादि नित्य भावका सूचक यह आख्यायिका है॥

३ तृतीय आशय—प्रथम दो एक बातें ये हैं। शतपथ के कई स्थलों में लिखा है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग को मिलकर शासन करना उचित है—

"ब्रह्म च क्षत्रं चाग्निरेव ब्रह्म इन्द्रः क्षत्रं तौ सृष्टौ नानैवास्ताम्।
तावब्रूतां न वा इत्थं सन्तौ शक्ष्यावः प्रजाः प्रजनयितुम्।
एकं रूपमुभावसावेति तावेकं रूपमुभावभवताम्" शतपथ १०।४॥

आशय यह है कि ब्रह्म और क्षत्र दोनों प्रथम पृथक् २ थे। दोनों ने कहा कि इस प्रकार पृथक् पृथक् होकर प्रजाओं को बना नहीं सकते इसलिये आइए दोनों एक रूप हो जांय। वे दोनों एक रूप हो गए। शतपथ एकादश काण्ड अध्याय छः में यह भी वर्णन आता है कि जनक महाराज ने कतिपय ब्राह्मणों से अग्निहोत्र के प्रश्न पूछे। उनके समाधान से जनक सन्तुष्ट न हुए इस कारण वे ब्राह्मण बिगड़ कर लड़ने को तयार हो गए। तब—

"स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्राह्मणा वै वयं स्मो राजन्यबन्धुरसौ यद्यमुं वयं जयेम कमजैष्मेति ब्रूयाम। अथ यद्यस्मान् जयेद् ब्राह्मणान् राजन्यबन्धु रजैषीरिति नो ब्रूयुः।

इत्यादि। याज्ञवल्क्य ने कहा कि हम सब ब्राह्मण हैं। वह राजन्य बन्धु है। यदि हमने उसे जीत ही लिया तो क्या हुआ, किसको हमने जीता, क्या हम कहेंगे। यदि उसने हमको जीत लिया तो लोक कहेंगे कि देखो राजन्यबन्धु ने ब्राह्मणों को जीत लिया इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग में परस्पर विरोध होना आरम्भ हो गया था। तीनों वेदों में इन सबकी कोई चर्चा नहीं। हां, ब्रह्म क्षत्र को मिलकर व्यवहार करना चाहिये ऐसा वर्णन यजुर्वेद में आया करता है जिसके उदाहरण प्रारम्भ में ही लिखे गए हैं। यजुर्वेद में यह भी एक बात आती है कि ए प्रजाओं! यह राजा जो अभी तुम लोगों की आज्ञा से अभिषिक्त हो रहा है वह तुम लोगों का राजा होता है। हम ब्राह्मणों का राजा केवल सोम अर्थात् परमात्मा है। यथा—

विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। यजु० ९।४०॥—इस प्रकार समीक्षा करके देखते हैं तो प्रतीत होता है कि ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी वर्ग का यथार्थ में कोई राजा नहीं है और होना भी नहीं चाहिये क्योंकि उनके नियम पर जगत चल रहा है वे किनके नियम पर चलें। जो सर्वथा ज्ञानपूर्वक धर्म्मनियम पर चलें चलावें वे ही ब्रह्म या ब्राह्मण हैं। क्षत्र वा क्षत्रिय वे हैं जो अधिकतया बल से काम लेवें। प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में वे क्षत्रवर्ग ब्रह्मवर्ग को भी अपने वश में करके सुबद्ध करना चाहते थे। जब-जब ऐसी अशुभ इच्छा क्षत्र वर्ग में उत्पन्न होती थी तब तब इन दोनों में महान् कोलाहल मचजाता था। पुनः शान्ति स्थापना होकर धर्म्म के प्रबल नियम बनाए जाते थे। परन्तु यह कब सम्भव है कि उद्दण्ड क्षत्रवर्ग उन नियमों को अच्छे प्रकार निवाह सकें अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों के समय जो इन दोनों वर्गों में वैमनस्य का बीज बोया जा रहा था वह समय पा कर बहुत बढ़ गया॥

परशुराम की कथा भी इसी दशा का प्रमाण है। इसी विरोध के चित्रको महाभारत अपने सामने दिखलाता है। ब्राह्मण के निकट कौनसी शक्ति और क्षत्रिय किस शक्ति पर नाचते हैं। ब्राह्मण कैसे उन्नत होते और क्षत्रिय कैसे अपनी दुर्बलता दिखलाते यह सब वसिष्ठ और विश्वामित्र के जीवन चरित्र से सिद्ध किया गया है। यहां एक बात सदा ध्यान में रखना चाहिये कि ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति का युद्ध नहीं, इनकी स्तुति निन्दा नहीं, जिस समय ऐसी-ऐसी कथा बनाई गई उस समय जाति विभाग नहीं था यदि जाति विभाग होता तो ऐसी कथा कभी देश में प्रचलित नहीं होती। कोई भी क्षत्रिय उसको नहीं सुनता अतः यहां ब्रह्म वा ब्राह्मण पद से विवेकी ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि अर्थ और

क्षत्र वा क्षत्रिय पद से शासक बलात्कार कारी परमत्रलिष्ठ आदि ग्रहण करना चाहिये। अन्त में यजुर्वेद के मन्त्र को पुनः स्मरण दिला इस प्रकरण को यहां ही समाप्त करता हूं ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु २०।२५॥

—:०:—

वैदिक-विज्ञान

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छः वेदों के मुख्य अङ्ग माने गए हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा और वेदान्त ये छः वेदों के उपांग कहे गए हैं। इतने से आप समझ सकते हैं कि तर्क, हेतु और उपपत्ति से बाहर वेद नहीं हैं। जैसे पृथ्वी पर के अन्यान्य धर्म्मग्रन्थ सुतर्क से भी सुयुक्ति से भी और प्रसिद्ध विज्ञान शास्त्रों से भी डरते रहते हैं, अपने शिष्यों को चिताते रहते हैं कि तर्क करना शैतान का काम है, धर्म्म में केवल विश्वास ही उचित है इत्यादि। हां, यह परमोचित है कि परमात्मा में सब कोई विश्वास करें परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि मिथ्या को भी सत्य ही मानकर विश्वास करें। धर्म्मग्रन्थों के लेखक वा प्रचारक यद्यपि शुभेच्छु और मनुष्यहितकारी थे, परन्तु विज्ञानशास्त्र की ओर वे ध्यान नहीं दिया करते थे। अतः उनके ग्रन्थों और उपदेशों में अनेक त्रुटियां और शतशः अशुद्धियां रह गईं। पीछे उनके अनुयायी उन अशुद्धियों को भी सत्यमानकर देशों में प्रचार करवाने लगे। इस महामोह के कारण देशों में महाक्षति हुई। वेद ऐसे नहीं। वेद किसी सम्प्रदाय के ग्रन्थ नहीं। इनमें बहुत स्वच्छ कथाएं हैं। अतः ये तर्क व युक्ति से नहीं भागते। प्रत्युत पचासों स्थलों में उपदेश देते हैं। कि तर्क करो, खोज करो, पूछो, तब ही तुम ज्ञानी बनोगे। एवमस्तु। मैं दो चार उदाहरण यहां लिखूंगा जिन से आप को प्रतीत होगा कि वे कैसे कैसे गूढ़ विज्ञान को बतलाते हैं। प्रायः पृथिवी पर जितने सम्प्रदायीग्रन्थ हैं उन सब में पृथिवी का कुछ न कुछ वर्णन पाया जाता है। परन्तु वे सबके सबही त्याज्य हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष विज्ञान से विरुद्ध हैं। पृथिवी किस पर ठहरी हुई है। इसकी लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई, मोटाई कितनी है यह गोल या दर्पणाकार चिपटी है। जैसे किसी बर्तन का ऊर्ध्व भाग और अधोभाग होता है क्या वैसा ही पृथिवी का भी कोई ऊपर का और कोई नीचे का भाग है? क्या हम ऊपर के भाग में वसते हैं और नीचे के भाग में असुर रहते हैं। या भीतर से पृथिवी पोली है जहां असुर राक्षस निवास करते हैं? रात्रि और दिन क्यों होता। ३६४ अहोरात्र के पश्चात् पुनः वही समस क्मे आता चन्द्र क्यों घटता और बढ़ता ग्रहण क्यों होता इत्यादि शतशः बातें प्रत्येक मनुष्य को जाननी चाहिये। यद्यपि इसमें से एक एक विषय का एक एक महान् शास्त्र है। आज कल इनकी महती उन्नति होती जाती है पाठशालाओं में ये शास्त्र पढ़ाए भी जाते हैं अतः इस विषय को यहां आवश्यकता नहीं थी। तथापि जिस कारण वर्तमान सम्प्रदायीग्रन्थ तथा पुराण इस प्रकाशमय समय में भी महान्धकार ही फैला रहे हैं और वेदों को ही अपना

मूल कारण बताते हैं अतः वेदों से भी ये विषय दरसाए जांय ताकि वेदों के माननेहारे सारे सम्प्रदायी ग्रन्थ सुधर जांय और उनके अनुयायी वैदिक पथ पर आकर कल्याण के भागी बनें। इतना कह कर मैं अब अभीष्ट विषय का निरूपण करता हूं—

पृथिवी का भ्रमण

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षा शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे निशिश्नथः॥ ऋ० १०।२२।१४॥

क्षा=पृथिवी। पृथिवी के गौ, ग्मा, ज्मा, आदि २१ नाम निघण्टु १।१ में उक्त हैं। इनमें एक नाम क्षा है शची=कर्म्म, क्रिया, गति निघण्टु में अपः, अप्नः आदि २६ नाम कर्म्म के हैं, इनमें शची का भी पाठ है। शुष्ण=यह नाम आदित्य अर्थात् सूर्य्य का भी है यथा "शुष्णस्यादित्यस्य शोषयितुः" निरुक्त ५।१६॥ पृथिवी पर के रस को सूर्य्य शोषण किया करता है अतः सूर्य्य का नाम शुष्ण है। प्रदक्षिणित्=घूमती हुई। विश्वायवे=विश्वास के लिये। अथ मन्त्रार्थ—(क्षा) यह पृथिवी (यद्) यद्यपि (अहस्ता) हस्तरहिता और (अपदी) पैरसे भी शून्य है तथापि (वर्धत) बढ़ रही है अर्थात् हाथ पैर न होने पर भी यह चल रही है (वेद्यानाम्+शचीभिः) वेद्य=जानने योग्य जो परमाणु उन की क्रियाओं से प्रेरित होकर चल रही है अथवा स्वपृष्ठस्थ विविध पर्वत आदि पदार्थों और मेघादिकों की क्रियाओं के साथ साथ घूम रही हैं। किस की चारों तरफ प्रदक्षिणा कर रही है। इस पर कहते हैं (शुष्णम्+परि) सूर्य्य के परितः=चारों तरफ (प्रदक्षिणित्) प्रदक्षिणा करती हुई घूम रही है। आगे परमात्मा से प्रार्थना है कि (विश्वायवे+निशिश्नथः) हे परमात्मन्! हम मनुष्यों के विश्वास के लिये आपने ऐसा प्रबन्ध रचा है॥ भाष्यकार सायण के समय में पृथिवी का भ्रमण-विज्ञान सर्वथा विलुप्त हो गया था अतः ऐसे ऐसे मन्त्र के अर्थ करने में इनकी बुद्धि चकरा जाती है। सायण कहते हैं—

यद्वा शुष्णस्याच्छादनार्थं हस्तपादवर्जिता काचित्पृथिवी वेदितव्यानामसुराणां मायारूपैः कर्म्मभिः शुष्णमसुरं वेष्टित्वा प्रदक्षिणं यथा भवति तथाऽवस्थिताऽवर्धत तदानीं तां मायोत्पादितां पृथिवीं विश्वायवे सर्वव्यापकस्य मरुद्गणस्य प्रवेशनार्थं निशिश्नथः॥

भाव इसका यह कि असुरों ने अपनी माया से एक पृथिवी बनाई। बनाकर कहा कि शुष्ण और इन्द्र का युद्ध हो रहा है इस हेतु तू शुष्ण की चारों तरफ वेष्टित हो प्रदक्षिणा करती रहो जिससे इन्द्र यहां न पहुंच सके। इन्द्र को यह खबर मालूम हुई। मरुद्गणों को पहले वहां भेजा। वे वहां नहीं पहुंच सके। तब इन्द्र ने आकर उस पृथिवी को ताड़ना दी, वह भाग गई। मरुद्गण वहां पैठ शुष्ण को छिन्न भिन्न करने लगे। अब आप समझ सकते हैं कि सीधा साधा अर्थ छोड़ ये भाष्यकार कैसा अज्ञातार्थ लिखते हैं॥ अब द्वितीय ऋचा पर ध्यान दीजिये जिससे विस्पष्ट हो जाता है कि केवल पृथिवी ही नहीं किन्तु पृथिवी जैसे सकल ग्रह नक्षत्र आदि भी स्थिर नहीं हैं।

कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः को विवेद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव॥ ऋ० १।१८५।१॥

इस ऋचा के द्वारा अगस्त्य ऋषि पूछते हैं कि (अयो:) इस पृथिवी और द्युलोक में से (कतरा+पूर्वा) कौनसी आगे है और (कतरा+परा) कौनसी पीछे है या कौन ऊपर और कौन नीचे है (कथा+जाते) कैसे ये दोनों उत्पन्न हुए (कवयः+कः+वि+वेद) हे कविगण! इसको कौन जानता है। इसका स्वयं उत्तर देते हैं (यद्+ह+नाम) जो कुछ पदार्थ जात इन दोनों से सम्बन्ध रखता है उस (विश्वम्) सब को ये दोनों (बिभृतः) धारण कर रहे हैं अर्थात् सब पदार्थ को अपने साथ लेकर (वि+वर्तेते) घूम रहे हैं (अहनी+चक्रिया+इव) जैसे दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन आता ही रहता है और जैसे रथ का चक्र ऊपर नीचे होता रहता है तद्वत् ये दोनों द्यावापृथिवी एक दूसरे के ऊपर नीचे हो रहे हैं। अतः आगे पीछे का इस में विचार नहीं हो सकता। जब पृथिवी और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, दूर-दूर भ्रमण कर रहें हैं तब यह नहीं कहा जा सकता है कि इन दोनों में ऊपर नीचे कौन हैं? यह ऋचा चक्र के दृष्टान्त से विस्पष्ट कर देती है कि पृथिवी अवश्य घूम रही है।। अब तृतीय ऋचा लिखता हूं जो और भी विस्फुट उदाहरण पृथिवी के भ्रमण का है।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्।। ऋ० १०।१४९।१।।

(सविता) सूर्य्य (यन्त्रैः) रज्जु के समान अपने आकर्षण से (पृथिवीम्) पृथिवी को (अरम्णात्) बांधता है और (अस्कम्भने) अनारम्भ, निराधार आकाश में (द्याम्+अदृंहत्) अपने परितः स्थित द्युलोकस्थ अन्यान्य ग्रहों को भी दृढ़ किए हुए है। आगे एक लौकिक उदाहरण देकर समझाते हैं (अतूर्ते) टूटने के योग्य नहीं जो आकर्षणरूप रज्जु है उसमें (बद्धम्) बंधे हुए (धुनिम्) नाद करते हुए (समुद्रम्) बड़े जोर से भागने हारे, पृथिवी, शनि, शुक्र, मंगल, बुध, आदि ग्रह रूप जो लोक है उसको (अन्तरिक्षम्) निराधार आकाश में (अश्वम्+इव+अधुक्षत्) घोड़े के समान घुमा रहा है अर्थात् जैसे नूतन घोड़े को शिक्षित करने के लिए लगाम पकड़ सवार खड़ा हो जाता और उस घोड़े को अपनी चारों तरफ घुमाया करता है। वैसा ही यह सूर्यरूप सवार अश्वसदृश पृथिव्यादि लोकों को अपनी चारों तरफ घुमा रहा है। इससे बढ़कर विस्फुट उदाहरण क्या हो सकता है अतः उपरिष्ठ मन्त्रों से दो बातें सिद्ध हैं कि—

१—पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है और

२—सूर्य के आकर्षण से यह इधर उधर नहीं हो सकती अपने मार्ग को छोड़ अणुमात्र भी घसक नहीं सकती। अन्तरिक्षम् सप्तम्यर्थ में प्रथमा है। समुद्र=समुद्द्रवति=जो बहुत जोर से दौड़ता है।

सूर्य्य की परिक्रमा कितने दिनों में कर लेती है इस पर कहते हैं।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।। ऋ० १।१६४।४८

(चक्रम्) यहां वर्ष ही चक्र है क्योंकि यह रथ के पहिया के समान क्रमण अर्थात् पुनः पुनः घूमता रहता है उस चक्र में (द्वादश+प्रधयः) जैसे चक्र में १२ छोटी-छोटी अर प्रधि=कीलें हैं। वैसे सम्वत्सर में वारह मास होते हैं (त्रीणि+नभ्यानि) इसके नभ्य अर्थात् नाभिस्थान में रहने हारे दारु विशेष समान ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त तीन ऋतु हैं (कः+उ+तत्+चिकेत) इस तत्व को कौन जानता है (तस्मिन्+साकम्+शंकवः) उस वर्ष में कीलों सी (त्रिशता+षष्टिः) ३०० और ६० दिन (अर्पिताः) स्थापित हैं (न+चलाचलासः) वे ३६० दिनरूप कीलें कभी विचलित होनेवाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक वर्ष में ३६० तीन सौ साठ दिन होते हैं। पृथिवी के भ्रमण से ही वे दिन बनते हैं अतः ३६० दिन में पृथिवी सूर्य्य की परिक्रमा कर लेती है। पुनः इसी विषय का दूसरी तरह से कहते हैं।

> द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
> आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ऋ० १।१६४।११॥

(ऋतस्य) सत्यस्वरूप काल का (चक्रम्) सम्वत्सर रूप चक्र (द्याम्+परि) आकाश में चारों तरफ (वर्वर्ति) घूम रहा है (द्वादशारम्) जिस में मास रूप १२ अर हैं (नहि+तत्+जराय) वह चक्र कभी जीर्ण नहीं होता (अग्ने) हे परमात्मन्! आपने कैसा अद्भुत प्रवन्ध रचा है (अत्र) इस चक्र में (पुत्राः) पुत्र के समान (सप्त=शतानि+विंशतिः+च आतस्थुः) ७०० और २० स्थिर हैं। वर्ष में ३६० दिन और ३६० रात्रि को मिलाकर ७२० अहोरात्र होते हैं इतने अहोरात्र में पृथिवी सूर्य्य की परिक्रमा करती है। यद्यपि ३६५ दिनों के लगभग में यह पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। तथापि यह चन्द्र मास के हिसाब से ३६० दिन कहे गए हैं। चन्द्रमास में एक अधिक मास मान कर हिसाब पूरा किया जाता है। इस अधिक मास का भी वर्णन वेद में पाया जाता है।

पृथिवी गोल है—

यद्यपि देखने से प्रतीत होता है कि दर्पण के समान पृथिवी सम अर्थात् चिपटी है तथापि अनेक प्रमाणों से पृथिवी की आकृति गेंद या कदम्बफल के समान गोल है यह सिद्ध होता है। अपने संस्कृतशास्त्रों में इसी कारण इसका नाम ही भूगोल रक्खा है यदि कोई आदमी ५० कोश का ऊंचा हो तो झट से उसको इसकी गोलाई मालूम होने लगे। इस पृथिवी के ऊपर हिमालय पर्वत भी गृह के ऊपर चींटी के समान है अतः इसकी गोलाई हम मनुष्यों को प्रतीत नहीं होती।

१—इसके समझने के लिए समुद्रस्थान लीजिये। समुद्र सैकड़ों कोश तक चौड़ा होता है। जल की सतह वरावर हुआ करती है। यदि दर्पणाकार पृथिवी होती तो समुद्र में अति दूर आता हुआ भी जहाज दीखना चाहिये और जहाज के नीचे से ऊपर तक सब भाग एक वार ही दीख पड़े। किन्तु सो होता नहीं। अति दूरस्थ जहाज तो दीखता ही नहीं। ज्यों-ज्यों समीप आता जाता है त्यों-२ प्रथम जहाज का ऊपर का शिर दीखता है फिर मध्य भाग तब नीचे का भाग। अब आप विचार सकते हैं कि जल की बराबर सतह पर ऐसी विषमता क्यों? इसका एक मात्र कारण पृथिवी की गोलाई है। पृथिवी की गोलाई के कारण जहाज के नीचे का भाग छिपा रहता है।

२—पुनः यदि किसी स्थान से आप किसी एक तरफ प्रस्थान करें और सीधे चलते ही जांय तो पुनः उसी स्थान पर पहुंच जायंगे जहां से आप ने प्रस्थान किया था। इसका भी कारण गोलाई है।

३—चन्द्र के ऊपर पृथिवी की छाया पड़ने से चन्द्र ग्रहण होता है। वह छाया गोल दीखती है इससे सिद्ध है कि पृथिवी गोल है इस सम्बन्ध में अपने शास्त्र का सिद्धान्त देखिये। मैंने प्रारम्भ में ही कहा है कि ज्योतिषशास्त्र वेद का एक अंग है। मुहूर्त्तचिन्तामणि, वृहज्जातक, लघुजातक आदि नहीं किन्तु गणितशास्त्र ही ज्योतिष है जिसमें पृथिवी से लेकर ज्योतिःस्वरूप सूर्यतक का पूरा-पूरा हिसाव सब प्रकार से हो वह ज्योतिषशास्त्र है। जैसे व्याकरणशास्त्र बहुत दिनों से चले आते थे पश्चात् पाणिनि ने एक सर्वाङ्ग सुन्दर व्याकरण बनाया तत्पश्चात् वैसा व्याकरण अभी तक नहीं बना है। वैसे ही ज्योतिषशास्त्र अति प्राचीन है। सबसे पिछले आचार्य भास्कराचार्य ने लीलावती, बीजगणित सिद्धान्तशिरोमणि आदि अनेक ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र के रचे। वेही आजकल अधिक पठन पाठन में विद्यमान हैं। शब्दकल्पद्रुम नाम के कोश में भूगोल शब्द के ऊपर एक अच्छा लेख दिया हुआ है। भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि के भी अनेक श्लोक वहां लिखे हुए हैं मैं इस समय इसी कोश से कतिपय श्लोक उद्धृत करता हूं। मैं इस समय भ्रमण कर रहा हूं अतः मूल ग्रन्थ मेरे पास नहीं है। आप लोग मूल ग्रन्थ में प्रमाण देख लवें। भारतवर्ष में सिद्धान्तशिरोमणि इतना प्रसिद्ध है कि इसके विना कोई ज्योतिषी नहीं वन सकता। इसका अनुवाद इंगलिश आदि अनेक भाषाओं में हुआ है। शंका समाधान करके भास्कराचार्य सिद्ध करते हैं कि पृथिवी गोल है।

यदि समा मुकुरोदरसंनिभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥१॥
यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयन्ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागकेः।

अर्थ—यदि भगवती पृथिवी दर्पण के समान समा अर्थात् समसतहवाली है तो पृथिवी के ऊपर बहुत दूर भ्रमण करते हुए सूर्य को जैसे अमरगण सदा देखा करते हैं वैसे ही मनुष्य भी सदा सूर्य को क्यों नहीं दीखते अर्थात् पृथिवी पर क्योंकर प्रातः मध्याह्न सायं और रात्रि होती है इससे प्रतीत होता है कि पृथिवी सम नहीं है। जैसे ऊंचे पर्वत के पूर्व भाग की सीध में वा उसी पर रहने हारे पदार्थ पश्चिमभागस्थ पुरुष को नहीं दीखते तद्वत् पृथिवी के एक भाग में रहनेहारा पुरुष पृथिवी के रोकावट के कारण सूर्य को नहीं दीखता। घूमती हुई पृथिवी का जितना २ भाग सूर्य के सामने पड़ता जाता है उतना २ भाग में सूर्य की किरणें पड़ने से दिन कहाता है इसी प्रकार इसके विरुद्ध रात्रि। यदि यह कहो कि वह सूर्य सुमेरु पर्वत के पीछे चला जाता है इस-कारण नहीं दीखता तो यह ठीक नहीं क्योंकि इस अवस्था में वह सुमेरु ही दीख पड़े किन्तु वह दीखता नहीं अतः यह कथन असत्य है और इस में द्वितीय हेतु यह है कि तब उत्तरायण और दक्षिणायण भेद भी कभी नहीं होने चाहियें क्योंकि सूर्यसमानरूप से सुमेरु की परिक्रमा सब दिन करता है यह आपका सिद्धान्त है तब

ये दो अयन क्यों होते ? अतः सुमेरु पर्वत निशा का कारण नहीं, पुनः वही शंका बनी रही कि मनुष्य को सर्वदा समान रूप से सूर्य क्यों नहीं दीखता ? इस से सिद्ध है कि पृथिवी गोल है।

यदि पृथिवी गोल है तो हमें वैसी क्यों नहीं दीख पड़ती। उसका समाधान पूर्व में लिख आया हूं। भास्कराचार्य भी वैसा ही कहते हैं यथा—

समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥

जिस कारण पृथिवी बहुत ही विस्तीर्ण है अतः उसके शतांश भाग सम हैं। मनुष्य बहुत ही छोटा है। इस कारण इसको सम्पूर्ण पृथिवी सम ही प्रतीत होती है।

पृथिवी का ऊपर और नीचा भाग

यद्यपि छोटे से छोटे पदार्थ का भी ऊपर और नीचा भाग माना जा सकता है। सेब और कदम्ब फल का भी कोई भाग नीचे का माना हो जाता है। वैसा ही पृथिवी का भी हिसाब हो सकता है किन्तु आश्चर्य यह है कि पृथिवी के सामने मनुष्यजाति इतनी छोटी है कि इसकी आकृति नहीं की बराबर है। इसी हेतु पृथिवी के अर्धगोलक पर रहने हारा अन्य अर्धगोलक पर रहने हारे को अपने से नीचे समझता है किन्तु वे दोनों एक ही सीध में हैं नीचे ऊपर नहीं। जैसे अमेरिकादेश पृथिवी के अर्धगोलक में है और द्वितीय अर्धगोलक में योरोप एशिया देश है। ये दोनों एक सीध में होने पर भी एक दूसरे के ऊपर नीचे प्रतीत होता है। भास्कराचार्य इस पर कहते हैं—

यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितञ्च।
स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ते तिर्य्यगिवामनन्ति ॥

पृथिवी के किसी भाग में जो जहां है वह अपने को वहां ऊपर ही मानता है और दूसरे भागस्थ पुरुष को नीचे समझता है।

पृथिवी का आधार

अब यह तो विस्पष्ट हो गया कि जब भूमि घूम रही है तब इसके आधार की आवश्यकता नहीं। धर्म्माभास पुस्तकों में यह एक अति तुच्छ प्रश्न और समाधान है। मुझे आश्चर्य होता है इन ग्रन्थकर्त्ताओं ने एकाग्र हो कभी इस विषय को न विचारा और न सूर्य्य चन्द्र नक्षत्रों की ओर ध्यान ही दिया। उन्हें यह तो बड़ी चिन्ता लगी कि यदि पृथिवी का कोई आधार न हो तो यह कैसे ठहर सकती किन्तु इन्हें यह नहीं सूझा कि यह महान् सूर्य निराधार आकाश में कैसे घूम रहा है हमारे ऊपर क्यों न गिर पड़ता। इन लाखों कोटियों ताराओं को कौन असुर पकड़े हुए है। हमारे शिर पर गिरकर क्यों नहीं चूर्ण-चूर्ण कर देता। हां! इसका भी उपाय वा समाधान इन सम्प्रदायियों ने अच्छा गढ़ा। जब निर्बुद्धि शिष्यों ने पूछा कि यह सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र आदि क्यों नहीं गिरते तो इसका उत्तर दिया कि सूर्य साक्षात् भगवान् हैं ये चेतन देव हैं। रथ पर चढ़कर पृथिवी की परिक्रमा कर रहे हैं यहां से पुण्यवान् पुरुष मरकर सूर्य लोक में निवास करते हैं इसी प्रकार चन्द्रमा आदि भी

चेतन देव हैं पितृगण यहां अमृतपान करते हुए आनन्द भोग रहे हैं इत्यादि गप्प कहकर शिष्यों को समझा दिया किन्तु पुनः अन्ध शिष्यों ने यह नहीं पूछा कि वे रथ किस-किस आधार वा मार्ग पर चल रहे हैं। प्रश्न किये भी गए हों तो ऐसे सम्प्रदायियों को समाधान गढ़ने में कितनी देर लगती है। झट से कह दिये होंगे कि अरे! ये मन्त्र देव हैं। वे स्वयं उड़ा करते हैं जो चाहैं सो करलें इनकी क्या पूछते हो ये बड़े सामर्थी हैं। विचारी रह गई पृथिवी। यह देवी नहीं और चेतन भी नहीं। यदि पृथिवी चेतन देवी सूर्य्यादिवत् मानो जाती तो इसके आधार की भी चिन्तारूप नदियों में वे गोते न खाते। जिसकी आज्ञा से सूर्य चन्द्र आदि नियत मार्ग पर चल रहे हैं नियत समय पर उदित और अस्त होते इसी की आज्ञा से यह पृथिवी ठहरी हुई है यदि इतना भी वे विचार कर लेते तो इतने धोखे न खाते "अतिपरिचयादवज्ञा" अतिपरिचय से निरादर होता है। भूमि पर सम्प्रदायी निवास करते हैं प्रतिदिन देखते हैं इसको देव या देवी कहकर शिष्यों को बहला नहीं सकते थे। अतः अपनी २ बुद्धि के अनुसार इसके अनेक आधार गढ़ लिये। किसी ने कहा सांप के शिर के ऊपर पृथिवी है किसी ने कि कछुए की पीठ पर स्थापित है किसी ने कहा कि नौका के समान जल के ऊपर तैर रही है इस प्रकार अनेक कल्पनाएं कर अपने-अपने शिष्यों को सम्बोधित करते गए। किन्तु किसी सम्प्रदायी को इसका सत्यभेद मालूम ही नहीं था। वे कैसे बतलाते। वेद ही सत्य भेद दिखलाते हैं। शिष्यों ने यह नहीं पूछा कि यदि सांप पर पृथ्वी है तो वह सांप किस पर है। "नात्र कार्य्या विचारणा" ऐसी बातें कह मन को सन्तोष देते रहे। भास्कराचार्य्य ने उन सब गप्पों का अच्छा खण्डन किया हैं परन्तु ये आचार्य पौराणिक समय में हुए हैं। पृथिवी घूमती है यह बात इनके समय में नहीं मानी जाती थी अतः पृथिवी को ये महात्मा भी अचल ही मानते थे और इसकी चारों तरफ सूर्य्य ही घूम रहा है ऐसा ही समझते थे किन्तु वेद से यह विरुद्ध बात है। पृथिवी ही सूर्य को चारों तरफ घूमती है। पृथिवी से १३००००० तेरह लक्ष गुणा सूर्य्य बड़ा है। सूर्य के सामने पृथिवी एक अति तुच्छ चींटी के बराबर है। तब कब सम्भव है कि एक अति तुच्छ चींटी का परिक्रमा पर्वत करे। अब आधार के विषय में भास्करीय खण्डन परक श्लोक सुनिये।

मूर्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्तदन्यस्तस्याप्यन्योऽप्येवमत्रानवस्था।
अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किन्नो भूमिः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः॥

अर्थ—यदि पृथिवी के पकड़नेहारा कोई शरीरधारी है तो उसका भी कोई अन्य पकड़नेहारा होना चाहिये। यदि कहो उसका भी पकड़नेहारा है तो पुनः उसका भी कोई पकड़नेहारा होना उचित है। इस प्रकार अनवस्था दोष होगा। इस दोष से ग्रस्त होकर आपको किसी अन्तिम धर्ता के विषय में कहना पड़ेगा कि वह अपनी शक्ति पर स्थित है। तो मैं पूछता हूं कि आदि में ही पृथिवी को ही अपनी शक्ति पर ठहरी हुई क्यों नहीं मान लेते क्योंकि यह भूमि भी तो महादेव की अष्टमूर्तियों में से एक मूर्ति है तो वह अपनी शक्ति पर क्यों नहीं ठहर सकती?

अभी हमने आप से कहा है कि सूर्य्यादिवत् इसको भी यदि चेतन और स्वशक्तिसम्पन्न मान लेते तो इतनी चिन्ता न करनी पड़ती किन्तु समीप रहने के कारण पृथिवी को वैसी न मनवा सके।

भास्कराचार्य वही बात कहते हैं कि यह भूमि भी महादेव की एक मूर्ति है तब क्या अपनी शक्ति पर ठहर नहीं सकती ? इसको पुनः विस्फुट कर देते हैं—

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि ।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्राः खलु वस्तुशक्तयः ॥

जैसे स्वभाव से ही सूर्य में और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतता, जल में द्रुति (वहनशीलता) शिला में कठोरता है और जैसे वायु चलता है वैसे ही स्वभावतः पृथिवी अचला है क्योंकि वस्तुशक्तियां नाना प्रकार की हैं। अतः यह पृथिवी स्वशक्ति के ऊपरस्थित होकर अचला है यह कौन सी आश्चर्य की बात है। भास्कराचार्य ऐसे ज्योतिर्विद होने पर भी पृथिवी को अचला मानकर कैसी गलती फैला गए हैं। इतना ही नहीं ये कहते हैं कि रवि सोम मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनि आदि ग्रह और ये नक्षत्र मण्डल सब ही इसी पृथिवी के परितः स्थित हैं और यह भूमिमण्डल अपनी शक्ति से स्थित हैं यथा—

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षावृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम् । नान्याधारः स्वशक्त्या वियति च नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे निष्ठं विश्वञ्च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ॥

इसका कारण यह है कि वे वैदिक विज्ञान की ओर नहीं गए अथवा इस ओर इनका ध्यान नहीं गया। यह कितनी अल्पज्ञता है कि सूर्य्य चन्द्र आदिकों को चल और पृथिवी को अचला मानें। सूर्य्य चन्द्र को उदित और अस्त होते देख मान लिया कि यह सब चल रहे हैं। पृथिवी की गति इन्हें मालूम नहीं हुई। रेल की गति जैसे एक अति क्षुद्र चीटी को मालूम नहीं होती होगी अतः पृथिवी को अचला कहने लगे। जब हम इस बात की समालोचना करते हैं तो यही कहना पड़ता है कि हमारे पूर्वज आचार्य सूक्ष्मता की ओर दूर तक न पहुंच सके और न वेदों का पूरा मनन हो किया। एवमस्तु—

वेदों में पृथिवी के नाम।

गौ, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा क्षोणि, क्षिति, अवनि, उर्वी, पृथिवी, मही, रिपः, अदिति, इला, निर्ऋति, भू, भूमिः, पूषा, गातुः, गोत्रा, । इत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि । निघण्टु १।१॥

ये २१ नाम पृथिवी के हैं। इनके प्रयोग वेदों में आया करते हैं। इन में से एक भी शब्द नहीं जो पृथिवी के अचलत्व का सूचक हो जब पृथिवी को अचल मानने लगे तो संस्कृत कोश में पृथिवी के नामों के साथ अचला, स्थिरा आदि शब्द भी आने लगे "भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा" अमरकोश । इससे सिद्ध होता है कि वैदिक समय में पृथिवी स्थिरा नहीं मानी जाती थी। वाचकशब्दों से भी विचारों का बहुत पता लगा है। जिस समय जैसा विचार उत्पन्न होता है शब्द भी तदनुकूल बनाए जाते हैं। जैसे आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण के लिए मुखज, क्षत्रिय के लिए बाहुज वैश्य के लिए ऊरुज और शूद्र के लिए पज्ज, चरणज आदि शब्द का प्रयोग एक भी पाया नहीं जाता किन्तु अनार्ष ग्रन्थों में इनके शतशः प्रयोग हैं। इस समय में मुख आदि से ब्राह्मण आदि उत्पन्न हुए ऐसा

विचार प्रचलित हो चुका था अतः शब्द भी वैसे आते हैं। इसी प्रकार यदि आर्ष समय में पृथिवी को स्थिरा मानते तो अवश्य वैसे शब्द भी आते। प्रत्युत इसके विरुद्ध गोशब्द आया है जिस से पृथिवी की गति मानी जाती थी। यह सिद्ध होता है। "गच्छतीति गौः" चलनेहारे का नाम ही गौ है। यद्यपि यह अनेकार्थ है तथापि प्रायः चलायमान पदार्थ का ही नाम "गौ" रखा गया है। अब पृथिवी का गो नाम क्यों रखा गया जब यह विचार उपस्थित होता है तो यही कहना पड़ता है कि ऋषिगण पृथिवी को घूमती हुई मानते थे। तत्पश्चात् जब इनमें से यह विज्ञान लुप्त हो गया तब गोशब्द के अनेक धातु और व्युत्पतियां बतलाने लगे। 'गच्छन्ति प्राणिनोऽस्यामिति गौः, यां गायन्ति जना सा गौः" वैदिक शब्दों का कोई दोष नहीं। अपने यहां जिज्ञासा के भाव के लोप होने से ऐसी दुर्मति फैली।

पृथिवी और बौद्ध सिद्धान्त

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः।
खस्थं न दृष्टं च गुरु क्षमातः खेऽधः प्रयातीति वदन्ति बौद्धाः॥
द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ च तद्वदेकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम्।
यदब्रुवन्नेवमनम्बराद्या ब्रवीम्यतस्तान् प्रति युक्तियुक्तम्॥

बौद्ध कहते हैं कि आकाश में निराधार सूर्य्य, चन्द्र नक्षत्र, आदिकों को भ्रमण करते देखते हैं। इसी प्रकार पृथिवी निराधार ही है और कोई भी भारी पदार्थ आकाश में स्थिर नहीं रहता अतः पृथिवी को भी मानना उचित नहीं। तो यह नीचे को जा रही है जैसा मानना चाहिये। जैन यह भी मानते हैं कि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आदि दो २ हैं एक अस्त होता है तो दूसरा काम करता है। इस पर भास्कराचार्य कहते हैं इनका कथन अनर्थवाद है और इसमें यह युक्ति देते हैं यथा

भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिबौद्ध! मुधा कथम्।
यातायातञ्च दृष्ट्वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥

हे बौद्ध! ऐसी व्यर्थ बुद्धि आपको कहां से आई जिससे आप कहते हैं कि यह भूमि नीचे को जा रही है। यदि भूमि नीचे को गिरती हुई रहती तो आकाश में फेंके हुए पत्थर आदि लघु पदार्थ कभी नहीं पुनः लौट कर पृथिवी को पाते क्योंकि पृथिवी बहुत भारी होने से नीचे को अधिक वेग से जाती होगी और फेंके हुए पदार्थों का वेग उससे न्यून ही रहेगा परन्तु क्षिप्त वस्तु पृथिवी पर आ जाती है अतः पृथिवी आकाश के नीचे जा रही है यह मिथ्या भ्रम है और जो जैन कहते हैं कि दो २ चन्द्र नक्षत्र आदि हैं सो ठीक नहीं क्योंकि दिन में ही ये देख पड़ते हैं।

पृथिवी के ऊपर मनुष्यों का वास—यह भी एक महाभ्रम है कि हम भारतवासी तो पृथिवी के ऊपर बसते हैं और बलि राजा अपने असुर दलों के साथ पृथिवी के नीचे पाताल में राज्य करता है या नाग लोक कहीं पाताल में हैं। महाशयो! पाताल कोई देश नहीं जैसे यहां से हम नीचे भाग को पाताल समझते हैं। वैसे ही उस भाग के रहने हारे हमको पाताल में समझते हैं। भूमि के वास्तविक स्वरूप का बोध न होने से ऐसे ऐसे कुसंस्कार उत्पन्न हुए पृथिवी के चारों तरफ मनुष्य बसते

हैं। और उन्हें सूर्य्य की किरण भी यथासम्भव प्राप्त होती रहती है। एक ही समय में पृथिवी के भिन्न भिन्न भाग में भिन्न समय रहता है। जब अर्ध भाग में दिन रहता तब अन्य अर्ध भाग में रात्रि होती है इस विज्ञान को हमारे पूर्वज अच्छे प्रकार जानते थे यथा—

> लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्द्धं यमकोटिपुर्याम्।
> अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥

जिस समय लंका में सूर्य का उदय होता है उस समय यमकोटि नामक नगर में दोपहर, नीचे सिद्धपुरी में अस्तकाल और रोमक में दोपहर रात्रि रहती है।

इससे प्रतीत होता है कि पृथिवी पर के सब मनुष्यों में पहले भी आजकल के समान व्यवहार होता था। ज्योतिष शास्त्र की बड़ी उन्नति थी और पृथिवी के ऊपर चारों तरफ मनुष्य वास करते हैं इस विज्ञान को भी जानते थे।

आकर्षण

वेदों में आकर्षण शक्ति की भी चर्चा है। लोक कहते हैं कि यह नूतन विज्ञान है। योरोपवासी सरऐसेकन्यूटन जी ने प्रथम इसको जाना तब से यह विद्या पृथिवी पर फैली है। परन्तु यह बात नहीं। भारतवर्ष में इसकी चर्चा बहुत दिनों से विद्यमान है। और चुम्बक लोह को देख सर्वपदार्थगत आकर्षण का अनुमान किया गया था इसका अभी तक एक प्रमाण यह है कि सिद्धान्तशिरोमणि नाम के ग्रन्थ में भास्कराचार्य ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है वह यह है।

> आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थ गुरु स्वाभिमुखी-करोति।
> आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्वुरियं प्रतीतिः॥

सर्वपदार्थगत एक आकर्षण शक्ति विद्यमान है जिस शक्ति से यह पृथिवी आकाशस्थ पदार्थ को अपनी ओर करती है और जो यह खैंच रही है वह गिरता मालूम होता है अर्थात् पृथिवी अपनी ओर खैंच कर आकाश में फैंकी हुई वस्तु को ले आती है इसको लोक में गिरना कहते हैं। इससे विस्पष्ट है कि भास्कराचार्य्य से बहुत पूर्व यह विद्या देश में विद्यमान थी। आर्य्यभट्टीय नाम के ज्योतिष शास्त्र में भी इसका वर्णन आया है। अब मैं वेदों के दो एक ऋचाएं यहां लिखता हूं जिससे सब संशय दूर हो जायेंगे—

> आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
> हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ऋ० १।३५।२॥

कृष्ण=आकर्षणशक्ति युक्त। रज=लोक "लोका रजांस्युच्यन्ते" निरुक्त; पृथिवी आदि लोक का नाम रज है। हिरण्यय=हिरण्यपाणि आदि शब्द बहुत आते हैं। अपनी ओर जो हरण करे, खैंच लावे वह हिरण्य कहाता है। जिस कारण सूर्य्य का रथ अर्थात् सूर्य्य का समस्त शरीर अपने परितः पदार्थों को अपनी ओर खैंचता है अतः यह रथ हिरण्यय कहाता है। अथ मन्त्रार्थ—(सविता+सूर्य्य) (कृष्णेन+रजसा) आकर्षणशक्ति युक्त पृथिवी बुध बृहस्पति आदि लोकों के साथ (वर्त्तमानः)

वर्त्तता हुआ (अमृतम्+मृतम्+च) अमृत जो पृथिवी आदि लोक। मृत जो पृथिवी आदि लोकों में रहनेहारे शरीरधारी जीव इन दोनों को (आ निवेशयन्) अपने अपने कार्य में लगाते हुए (देवः) यह महान् देव (हिरण्ययेन+रथेन) हिरण्यय=अपनी ओर हरण करने हारे रथ के द्वारा (भुवनानि पश्यन्) परितः स्थित भुवनों को मानो देखता हुआ (आयाति) निरंतर आवागमन कर रहा है ॥२॥

इस ऋचा में कृष्णशब्द दिखलाता है कि सर्वपदार्थ गत आकर्षण शक्ति है। पृथिवी अपनी ओर और सूर्य अपनी ओर खैंचते हुए विद्यमान हैं अतः सूर्य्य के ऊपर पृथिवी गिरकर नष्ट नहीं होती। सूर्य पृथिवी की अपेक्षा करीब १३००००० लक्ष गुणा बड़ा है और इस सौर्य जगत् का अधिपति भी वही है। इसलिये इसमें मध्याकर्षणशक्ति भी वहुत है इसमें हेतु की आवश्यकता नहीं। अतः एव वेद में सूर्य के नाम ही कृष्ण आया है। क्योंकि वह अपनी ओर पृथिवी आदि भुवनों को खैंचे हुए यथा स्थिति रक्खे हुए है।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ऋ० १।१६४।४७॥

अर्थ—(हरयः+सुपर्णाः) हरणकरनेहारे सूर्य्य के किरण (नियानं कृष्णम्) नियम पूर्वक चलनेहारे कृष्ण अर्थात आकर्षणशक्तियुक्त सूर्य की ओर (अपः वसाना) साथ जल लेकर (दिवम्+उत्पतन्ति) आकाश में ऊपर उठते हैं अर्थात् जब सूर्य से निकलकर किरण पृथिवी पर आते हैं तो मानों पृथिवी पर के जल लेकर फिर सूर्य के निकट पहुंचते हैं। यह एक आलंकारिक वर्णन है। (ते) वे सूर्य किरण (ऋतस्य+सदनात्) सूर्य के भवन से (आ+अववृत्रन्) आवागमन करते ही रहते हैं (आत्+इत्) तबही (घृतेन+पृथिवी+वि उद्यते) जल से पृथिवी सींचा जाता है ॥४७॥

यहां यद्यपि कृष्णशब्द के अर्थ भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने भिन्न प्रकार से किए हैं परन्तु प्रकरण देखने से सूर्य अर्थ ही प्रतीत होता है वेदों में विचर्षणि[1] शब्द भी सूर्य के लिए आया है। (वि+चर्षणि) कृष धातु से चर्षणि शब्द सिद्ध होता है कृष धातु का अर्थ प्रायः आकर्षण है इसी से आकर्षण आकृष्टि कृष्ण आदि अनेक शब्द सिद्ध होते हैं। वेद के मन्त्र देखने से निस्पष्ट होगा।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ऋ० १।३५।९॥

अर्थ—(हिरण्यपाणिः) जिसका पाणि=किरण। हिरण्य=हरणशक्तियुक्त है (विचर्षणिः) जो अत्यन्त आकर्षणशक्ति युक्त है (सविता) वह सूर्य (उभे+द्यावापृथिवी) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक को (अन्तरीयते) अपने अपने अन्तर में अर्थात् अपने अपने अपने अवकाश में स्थिति रखता है अर्थात् एकलोक को दूसरे लोक के साथ टक्कर खाने नहीं देता (अमीवाम्+अपबाधते) और वह सूर्य सकल उपद्रवों को बाध करता है (सूर्य्यम्+वेति) और वह सूर्य अपनी धूरी पर चल रहा है।

(१) चर्षणि शब्द मनुष्य के नाम में भी आया है। कोई कहते हैं कि चर धातु से चर्षणि बनता है कोई इसको कृष धातु से। देवराज यज्वाका निर्वचन निघण्टुपर देखिये।

सूर्य्य द्वितीयार्थं में प्रथमा है। (कृष्णेन+रजसा) आकर्षणशक्तियुक्त तेज के साथ वह सूर्य (द्याम्+अभि+ऋणोति) द्युलोक के चारों तरफ व्यापक हो रहा है। पुनः—

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरि भारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः॥ ऋ० १।१६४।१३॥

(विश्वा+भुवनानि) सूर्य के चारों तरफ स्थित पृथिव्यादि सर्वलोक (तस्मिन्+चक्रे) उस चक्र के आधार पर (आ+तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थित हैं (पञ्चारे) जिस चक्र में ऋतुरूप पांच अर हैं। (परिवर्तमाने) जो चक्र स्वयं ही घूम रहा है (तस्य) उस चक्र का (भूरिभारः) बहुत भारवाला (अक्षः) चक्र के मध्य में वर्तमान धूर (न+तप्यते) पीड़ित नहीं होता और (सनात्+एव+न+शीर्यते) सनातन है और कभी टूटता नहीं (सनाभिः) वह चक्र बन्धनशक्तियुक्त है॥१३॥

यह ऋचा अनेक वस्तु दिखलाती है १—भुवनानि विश्वा सम्पूर्ण विश्व सूर्य के रथ पर स्थित हैं यह सिद्ध करता है कि पृथिव्यादि लोकों से यह बहुत ही बड़ा है। २—भूरिभारः अब यह विचार उपस्थित होता है कि उस चक्र का रथ भूरिभार क्यों कहलाता है इसका उत्तर विस्पष्ट है कि जिस चक्र के ऊपर सम्पूर्ण भुवन स्थित हों वह अवश्य ही भूरिभार होगा यहां वास्तविक भार तो नहीं है किन्तु आकर्षणरूप भार ही इसके ऊपर अधिक है। इस लिये आलंकारिक वर्णन है। इतने भार रहने पर भी वह अक्ष न पीड़ित होता है न टूटता है क्योंकि वह सनातन है। ३—सनाभिः बन्धनार्थक णह धातु से नाभि बनता है जैसे इस मानव शरीर का नाभि सम्पूर्ण शरीर का बान्धने वाला है वैसे ही वह सूर्य का चक्र पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों को बान्धने वाला है। इसलिये सनाभि पद यहां कहा गया है। अब यह स्वभावतः प्रश्न होता है क्या सूर्य कोई चेतन देव है? क्या सूर्य को ऋषिगण चेतन देव मानते थे? जो अपने हाथ में रस्सी लेकर सब लोक लोकान्तरों को बांधे हुए है। वे ऋषियों के भाव नहीं जानते अथवा ऋषियों के ऊपर कलङ्क लगा रहे हैं जो कहते हैं कि ऋषिगण सूर्यादिकों को चेतन मानते थे। वेद में पृथिवी के समान ही सूर्य एक जड़ पदार्थ माना गया है। इस अवस्था में पुनः शंका होती है कि सूर्य किस प्रकार से सब लोकों को बांधे हुए है इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि अपनी आकर्षणशक्ति के द्वारा सूर्य अपने परितः स्थित भुवनों को यथा अवकाश में बांधे हुए स्थित है पुनः आगे की ऋचा से और भी विस्पष्ट हो जाएगा यथा—

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः॥ ७। ६६। ३

प्रथम इसमें द्यावापृथिवी सम्बोधित हुई हैं हे द्यावापृथिवी! आप दोनों (मनुषे) मननकर्ता जीव को (दशस्या) सदा दान देने हारी हैं (इरावती) आप दोनों ही धनवान् (धेनुमती) गोमान् (सूयवसिनी) और शोभनधनधान्योपेत (भूतम्) होवें। इतना कहके अब आगे सूर्य और पृथिवी का सम्बन्ध दिखलाते हैं (विष्णो) हे सूर्य! आप (एते+रोदसी) इस द्युलोक और पृथिवी लोक को (व्यस्तभ्नाः) विविध प्रकार से रोके हुए हैं और (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (मयूखैः) किरणों द्वारा (दाधर्थ) पकड़े हुए हैं। १—रोदसी द्यावापृथिवी का नाम है, जो रोकने

हारी हों वे रोदसी अर्थात् रोधसी । व्यस्तभ्नाः—वि + अस्तभ्नाः । इस ऋचा से अनेक बातें निःसृत होती हैं । प्रथम रोदसी कहने से सिद्ध है कि यह पृथिवी और द्युलोक भी रोधसी है अर्थात् अपनी ओर आकर्षण करने वाली है । २—विष्णु यह नाम सूर्य का है जब दोनों लोकों का सूर्य धारण करने हारा है तब इससे परिणाम यह निकलता है कि इससे परितः स्थित दोनों लोक छोटे और यह सूर्य बहुत बड़ा है । इस अवस्था में जो यह कहते हैं कि सूर्य ही पृथिवी की परिक्रमा करता है यह कितनी बड़ी भूल है, क्या एक सरसों की परिक्रमा पर्वत करेगा ? ३—मयूखे. सूर्य अपने किरणों से पृथिवी को धारण किए हुए है इसका क्या भाव होगा । बहुत आदमी कहेंगे कि पृथिवी के ऊपर सूर्य किरण पड़ता रहता है इसी से पृथिवी का धारण पोषण होता है अन्यथा पृथिवी किसी काम की न होती । परन्तु यह बात नहीं यहां दाधर्थ पद से धारणार्थ सिद्ध होता है जैसे कोई बैल को रस्सी से पकड़े । अब विचारना चाहिये कि पृथिवी को सूर्य किस शक्ति से पकड़े हुए है निःसन्देह वह आकर्षणशक्ति है जिस के द्वारा अपने परितःस्थित अनेक लोकों को पकड़े हुए यह महान् सूर्य स्थित है । पुनः—

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड् वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥ अथर्व ४।११।१॥

(अनड्वान्) यह सूर्य (पृथिवीम्+दाधार) पृथिवी को पकड़े हुए है (अनड्वान्+उत+द्याम्+उरु अन्तरिक्षम्) सूर्य द्युलोक और विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (दाधार) पकड़े हुए है (अनड्वान्+प्रदिशः+दाधार) अनड्वान् सब दिशाओं को पकड़े हुए है (अनड्वान्+षड्+उर्वीः) अनड्वान् अन्यान्य छः पृथिवियों को पकड़े हुए है (विश्वम्+भुवनम्+आविवेश) यह अनड्वान् सर्वत्र आविष्ट है ।

यह अथर्ववेद की ऋचा अनेक बातें विस्पष्ट रूप से निरूपण करती है इस में साफ है कि पृथिवी और द्युलोक का धारण कर्ता सूर्य है और षड्+उर्वी=उर्वी नाम पृथिवी का है । बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, अन्यान्य दो लोक और पृथिवी इन सबका सूर्य ही आकर्षण से धारण करता है यह सिद्ध हुआ ।

अनड्वान्—बहुत आदमी शङ्का करेंगे कि बैल को अनड्वान् कहते हैं इस से तो पौराणिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है कि पृथिवी को कोई बैल अपनी सींग पर रक्खे हुए है । उत्तर—यह भ्रम वेदों के न देखने से उत्पन्न हुआ है । यहां ही द्वितीय ऋचा ४।११। में "अनड्वानिन्द्रः" पद है यहां अनड्वान् नाम इन्द्र अर्थात् सूर्य का है । प्रायः ऐसे ऐसे स्थलों में जहां जहां वृषभ (बैल) वाचक शब्द आए हैं वे २ सूर्य वाचक हैं । एक ही उदाहरण से विशद होगा ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् । अथर्व ४।५।१॥

सहस्र सींगवाला बैल जो समुद्र से ऊपर आता है । इस ऋचा में देखते हैं कि सहस्रशृङ्ग वृषभ कहा गया है । निःसन्देह सहस्र सींगवाला बैल सूर्य ही है । किरण ही इसके हजारों सींग हैं समुद्र शब्द आकाश वाची है । निघण्टु और निरुक्त देखिए ।

चन्द्रमा

अब आकर्षण आदि विषय अधिक वर्णित हो चुके मेरे अन्यान्य ग्रन्थ देखिए। अब कुछ चन्द्र के सम्बन्ध में वक्तव्य है इस सम्बन्ध में भी धर्मग्रन्थ बहुत ही मिथ्याबात बतलाते हैं। १—यह चन्द्र अमृतमय है उस अमृत को देवता और पितृगण पी लेते हैं इसी कारण यह घटता बढ़ता रहता है। पुराणों का गप्प तो यह है ही परन्तु महाकवि कालिदास भी इसी असम्भव का वर्णन करते हैं।

पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।

२—कोई कहते हैं कि इस चन्द्रमा के गोद में एक हरिण बैठा है इसी से इसमें लांछन दीखता है और इसी कारण इसको मृगाङ्क शशी आदि नामों से पुकारते हैं। ३—यह अत्रि ऋषि के नयन से उत्पन्न हुआ हैं। कोई कहते हैं कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ। ४—पुराण कहते हैं कि दक्ष की अश्विनी, भरणी आदि २७ सत्ताईस कन्याओं से चन्द्रमा का विवाह है वे ही २७ नक्षत्र हैं। ५—यह सूर्य से भी ऊपर स्थित हैं। ६—इसी से चन्द्रवंश की उत्पत्ति है। ७—राहु इसको ग्रसता है अतः चन्द्रग्रहण होता है इत्यादि अनेक गप्प चन्द्र के विषय में कहे जाते हैं। यहाँ मैं संक्षेप से वेद के मन्त्र उद्धृत कर बतलाऊंगा कि वेद भगवान् इस विषय को किस दृष्टि से देखते हैं—

चन्द्रमा में प्रकाश

अथाऽप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्यमादित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति। निरुक्त २।७।।

यास्काचार्य कहते हैं कि सूर्य का एक किरण चन्द्रमा के ऊपर सदा पड़ता रहता है इससे यह जानना चाहिये कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य से होता है। पृथिवी के समान ही चन्द्रमा भी निस्तेज और अन्धकारमय है। जैसे पृथिवी के ऊपर जिस जिस भाग में सूर्य का किरण पड़ता रहता है वहां-वहां दिन होता है इसी प्रकार चन्द्रमा के ऊपर भी सूय का किरण पड़ता रहता है अतः इसमें प्रकाश मालूम होता है। यदि सूर्य का किरण न पड़ता तो चन्द्र सदा धुंधेला प्रतीत होता। इस अतिगहन विज्ञान का भी वेद में विविध प्रकार से वर्णन है। यास्काचार्य ने वेद का ही आशय लेकर उपर्युक्तार्थ प्रकट किया है और यहां ही एक दो और प्रमाण देकर इसको बहुत पुष्ट किया है।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ऋ० १।८४।१५॥

(गोः) गमनशील (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (अत्र+ह+गृहे) इसी गृह में (त्वष्टुः) सूर्य का (नाम) सुप्रसिद्ध ज्योति (इत्था) इस प्रकार (अपीच्यम्) अन्तर्हित अर्थात् छिपा हुआ रहता है। यह ऋचा सब सन्देह को दूर कर देती है। चन्द्रमा के गृह में सूर्य का प्रकाश छिपा हुआ है इस वर्णन से तो विस्पष्ट सिद्ध है कि सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्र प्रकाशित है। पुनः इसी अर्थ को अन्य प्रकार से वेद भगवान् निरूपण करते हैं वह यह है—

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताऽददात्॥ ऋ० १०।८५।९॥

सूर्य्य की कन्या से चन्द्रमा के विवाह का वर्णन यहां अलंकार रूप से किया गया है। सूर्य की प्रभा ही मानों सूर्यकन्या है। अथ मन्त्रार्थ—(सोमः) चन्द्रमा (वधूयुः) वधू की इच्छावाला हुआ अर्थात् चन्द्रमा ने विवाह करने की इच्छा की। (उभौ+अश्विनौ+वरौ+आस्ताम्) इस बराती में अश्वी अर्थात् दिन और रात्रि दो बरात हुए। (यद्) जब (मनसा) मन के परम अनुराग से (पत्ये+शंसन्तीम्+सूर्याम्) पति के लिए चाह करती हुई सूर्या (अपनी कन्या को) सूर्य ने देखा तब (सविता+अददात्) सूर्य ने चन्द्र के अधीन सूर्या को कर दिया। इस आलंकारिक वर्णन से विशद हो जाता है कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य से हुआ करता है। यह विषय भारत देश में इतना प्रसिद्ध हो गया था कि घर-घर इसको लोग जानते थे। काव्य नाटकों में भी इसकी चर्चा होने लगी। जो विषय अतिप्रसिद्ध हो जाता है उसी का निरूपण कविगण अपने काव्यादि ग्रन्थों में किया करते हैं। कालिदास पौराणिक समय के विद्वान् थे अतः अपने काव्यों को वैदिक और लौकिक दोनों सिद्धान्तों से भूषित किया है जैसे पौराणिक गप्प लेकर कालिदास जी ने कहा है कि देव और पितर चन्द्र का अमृत पीते रहते हैं अतः चन्द्र की कला घटती बढ़ती रहती है वैसे ही वैदिक अर्थ को लेकर कहते हैं कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता है यथा—

पितुः प्रयत्नात् स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिनेदिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः॥ रघुवंश ३।२२॥

सम्पूर्णधनधान्य युक्त पिता के प्रयत्न से वह रघु दिन-दिन शरीर के शुभ अवयवों से बढ़ने लगे जैसे (बालचन्द्रमाः) छोटा चन्द्रमा (हरिदश्वदीधितेः) सूर्य के (अनुप्रवेशात्) अनुप्रवेश से शुक्ल पक्ष में दिन दिन बढ़ता जाता है।

चन्द्र में कलङ्क

अब इस बात को अच्छे प्रकार समझ सकते हैं कि लोक चन्द्रमा में कलङ्क क्यों मानते हैं। कारण इसका यह है कि जिस प्रकाशमयरूप को चन्द्रमा जगत में दिखला रहा है वह उसका अपना रूप नहीं है। जैसे कोई महादरिद्र धूर्त नर दूसरे से कपड़े मंगनीकर और उन्हें पहिन लोक में अपने को धनिक कहे तो उसको सब कोई कलङ्क ही देगा और उसको धूर्त ही कहेगा इसी प्रकार ज्योति-रहित चन्द्रमा में दूसरे की ज्योति देख लोग कहने लग गये कि चन्द्र में कलङ्क है। धीरे धीरे जब इस विज्ञान को लोग भूलते गए तब इसको अनेक प्रकार से कल्पना करने लगे। किन्हींने कहा कि इसमें मृग रहता है इस हेतु कालिमा दीखती है। किन्हीं ने कहा कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ है और समुद्र में विष भी रहा करता था अतः इन दोनों के संयोग होने में चन्द्रमा का बहुत सा हिस्सा कृष्ण (काला) प्रतीत होता है। कोई पौराणिक यह कहते हैं कि गुरुपत्नी तारा के साथ व्यभिचार करने से चन्द्र लाञ्छित माना गया है इस तरह चन्द्र के सम्बन्ध में विविध कल्पनाएं देश में प्रचलित हैं वे सब ही मिथ्या हैं।

मृगाङ्क शशी—मृगाङ्क चन्द्र क्यों कहाता है इसका भी यथार्थ कारण यह था कि मृग नाम भी सूर्य का है। वह सूर्य अपने किरण द्वारा चन्द्र के गोद में रहता है अतः चन्द्र के नाम मृगाङ्क और शशी आदि हुए हैं।

चन्द्र और २७ नक्षत्र

चन्द्रमा लौकिक भाषा में नक्षत्रेश नक्षत्रस्वामी कहाता है। वे नक्षत्र २७ वा २८ माने गए हैं। असली बात यह है कि पृथिवी की पूरी परिक्रमा चन्द्रमा करीब २८ दिन में समाप्त करता है। एक दिन में वह जितना चलता उतने मार्ग का नाम अश्विनी, द्वितीय दिन के मार्ग का नाम भरणी इसी प्रकार २८ दिन के मार्ग के नाम २८ हैं यहां विचारना चाहिये कि आकाश में तो अगणित नक्षत्र हैं पुनः इन २८ नक्षत्रों की ही चर्चा अपने शास्त्र में इतनी क्यों है इस का अवश्य कोई विशेष कारण होना चाहिये। वैदिक समय में विज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती थी इस हेतु पृथिवी, सूर्य और चन्द्र आदिकों की सब दशा से लोग परिचित थे। उस समय के विद्वानों ने स्थिर किया कि यह चन्द्रमा भी पृथिवी की परिक्रमा कर रहा है वह करीब २८ दिनों में पूर्ण होती है। गणित के लिए इन २८ दिनों के पृथक्-पृथक् नाम रक्खे गये। यह भी आप को मालूम हो कि अपने यहां चन्द्रमास का व्यवहार अधिक किया गया है। विविधयज्ञ चन्द्रमास के अनुसार ही किया करते थे। दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि अति प्रसिद्ध हैं। प्रतिपद् द्वितीया, तृतीया आदि भी इसी के अनुसार हैं चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आदि मासों की गणना इसी के अधीन है। शतपथ ब्राह्मण में नक्षत्रानुसार यज्ञ करने की विधि विस्तार से वर्णित है। विज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण ये २८ नक्षत्र अधिक प्रसिद्ध हुए। लोगों को आश्चर्य मालूम होता था कि अहो ईश्वर की कैसी विभूतियां हैं कि यह विस्तीर्ण पृथिवी सूर्य की परिक्रमा कर रही है और उस की भी परिक्रमा चन्द्र कर रहा है॥ पश्चात् जब भारत वासी इस वैदिक विज्ञान को भूल गये तो इन नक्षत्रों की बड़ी दुर्दशा हुई। नक्षत्रसूची ज्योतिषियों की तो इन से पूरी कमाई होने लगी। पौराणिकों ने इन्हें चन्द्र की स्त्री मान ली। किन्हीं आचार्य्यों ने आकाशस्थ ताराओं को ही २८ नक्षत्र समझा। क्या ही आश्चर्य की बात है क्या था और क्या हो गया। भारत वासियों! देखो! तुम्हारे पूर्वजों ने कितने परिश्रम से इन विज्ञानों का उपार्जन किया था किन्तु तुम ऐसे कुपुत्र हुए कि इन को सर्वथा भ्रष्ट कर निश्चिन्त हो रहे हो।

२८ नक्षत्रों के नाम—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, ये २७ नक्षत्र हैं २८ वां अभिजित् भी माना जाता है।

वेद और नक्षत्र

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥१॥

सुहवं मे कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः समार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ।२।।
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखो मे अस्तु ।
राधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठासु नक्षत्रमरिष्टं मूलम् ।।३।।
अन्नं पूर्वा रासन्ता मे अषाढ़ा ऊर्जं ये ह्युत्तर आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा कुर्वतां सुपुष्टिम् ।।४।।
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ।।५।। अथर्व । १६।७।।

यहां यह भी कहा गया है कि—

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।। अथर्व १६।८।२।।

इन २८ नक्षत्रों के विशेषण में शग्मपद आया है । शग्मनाम कल्पित मार्ग का ही है । जिस मार्ग से चन्द्र परिक्रमा कर रहा है उसी का नाम शग्म है । जो नक्षत्र केवल चन्द्रमार्ग सूचक थे क्या आश्चर्य हैं आज अज्ञानियों के शुभाशुभ फलप्रद और धूर्तों के कमाखाने के साधन बन गए ।

ग्रहण

सिद्धान्तशिरोमणि आदि ग्रन्थों में ग्रहण का विषय विस्तार से वर्णित है । पृथिवी की छाया से चन्द्रग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्यग्रहण होता है यह बात आजकल स्कूलों का एक छोटा बच्चा भी जानता है । इसके लक्ष्य में कालिदास ने एक अच्छी उपमा दी है वह यह है—

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतो मे ।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ।। रघुवंश १४।४०।।

रामचन्द्र कहते हैं कि यद्यपि मैं जानता हूं कि यह सीता निष्पापा है तथापि लोकापवाद बलवान् है यह मुझे भी मानना चाहिये । यद्यपि यह चन्द्रमा शुद्ध है इसके ऊपर केवल पृथिवी की छाया पड़ती है । किन्तु प्रजा इसी छाया को चन्द्र का कलंक मानती है । वह चन्द्र का कलंक अब नहीं मिटता, इससे भी यही सिद्ध है कि पृथिवी की छाया से ग्रहण लगता है ।

चन्द्रमा का घटना बढ़ना

सूर्य की किरण चन्द्रमा पर सर्वदा पड़ती रहती है । पृथिवी घूमती है अतः पृथिवीस्थ पुरुष चन्द्रमा को सदा प्रकाशित नहीं देखता क्योंकि पृथिवी की छाया चन्द्र में पड़ जाने से हम लोगों को प्रकाश प्रतीत नहीं होता ।

वेद और ग्रहण

वेदों में कुछ संदिग्ध सा वर्णन आया है जिससे राहु-केतु की कथा चली है और इसको न समझ कर राहुकृत ग्रहण लोग मानने लगे मैं उन मन्त्रों को यहां उद्धृत करता हूं ।

यत्वा सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ऋ० ५।४०।५॥

(सूर्य) हे सूर्य ! (यद्) जब (त्वा) तुमको (आसुरः) असुरपुत्र (स्वर्भानुः) स्वर्भानु (तमसा) अन्धकार से (अविध्यत्) विद्ध अर्थात् आच्छादित कर लेता है तो उस समय (भुवनानि) सम्पूर्ण भुवन पागल से (अदीधयुः) दीख पड़ने लगते (यथा) जैसे (अक्षेत्रवित्) मार्ग को न जानने हारा पथिक (मुग्धः) मुग्ध अर्थात् घबड़ा जाता है तद्वत् सम्पूर्ण जगत् घबड़ा जाता है।

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ ऋ० ५।४०।९॥

(आसुरः+स्वर्भानुः) आसुर स्वर्भानु (यम्+वै+सूर्यम्) जिस सूर्य को (तमसा+अविध्यत्) अन्धकार से घेर लेता है (अत्रयः) अत्रिगण (तम्+अनु+अविन्दन्) उसको पालते हैं तमको नष्ट कर अत्रि सूर्य की रक्षा कर प्राप्त करते हैं यहां अन्यान्य ऋचाओं में भी इस प्रकार का वर्णन आया है, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसकी बहुधा चर्चा आती है केवल एक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण से देकर इसका तात्पर्य लिखूंगा—

स्वर्भानुर्ह वा आसुरः सूर्यं तमसा विव्याध स तमसा विद्धो न व्यरोचत तस्य सोमारुद्रावेवै-तत्तमोऽपाहतां स एषोऽपहतपाप्मा तपति शत० ५।१।२।१॥

तात्पर्य असुर शब्द

ऋग्वेद में असुर शब्द दुष्ट अर्थ में बहुत ही विरलप्रयुक्त हुआ है। सूर्य, मेघ, वायु, वीर, परमात्मा आदि अनेक अर्थों में यह असुर शब्द विद्यमान है।

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान । ऋ० १।३५।७॥

यहां पर सूर्य के विशेषण में असुर शब्द आया है । जिस कारण सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता रहता है अतः (असुरस्य सूयर्स्य अयमासुरः) असुर जो सूर्य उसका सम्बन्धी होने से चन्द्र आसुर कहाता है।

स्वर्भानु - स्व=स्वर्ग आकाश, अन्तरिक्ष। भानु=प्रकाश । स्वर्ग का प्रकाश करने हारा चन्द्र है अतः इसको स्वर्भानु कहते हैं।

अत्रि—सूर्य किरणों का नाम अत्रि है। "अदन्ति जलानि ये तेऽत्रयः किरणाः"

अब वैदिकार्थ पर ध्यान दीजिये वेद में कहा गया है कि "आसुर स्वर्भानु सूर्य को अन्धकार से ढांक लेता है"। ठीक है। आसुर स्वर्भानु जो चन्द्र वह अपनी छायारूप अन्धकार से सूर्य को ढांक लेता है तब पुनः अत्रि अर्थात् सूर्य किरण ही इसको हटाकर सूर्य की, मानो, रक्षा करता है। शतपथब्राह्मण कहता है कि सोम और रुद्र इस तम को विनष्ट करता है। यह भी ठीक है क्योंकि चन्द्र

ही अपनी छाया सूर्य पर डालता है और कुछ देर के पश्चात् वहां से दूर हट जाता है। रुद्रनाम विद्युत् का है अर्थात् प्रकाश पुनः आ जाता है। यही, मानो, सूर्य का तम से छूटना है, वेद की यह एक बहुत साधारण बात थी इसे न समझ कैसी कैसी कल्पनाएं होती गई।

आधुनिक संस्कृत में "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः" अमर। स्वर्भानु राहु को कहते हैं असुर एक भिन्नजाति मानी जाती है अतः इस प्रकार का महाभ्रम उत्पन्न हुआ है। मैं बार-म्बार कह चुका हूं कि वेदों की एक छोटी सी बात लेकर बड़ी २ गाथाएं बनाते गये इसलिये उचित है कि लोग वेदों को पढ़ें पढ़ावें अन्यथा वे कुसंस्कारों से कदापि न छूट सकेंगे।

ग्रहण क्या है

चन्द्र ग्रहण में सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल दीख पड़ता है किन्तु मण्डल के ऊपर काली और लाल छाया रहती है। कभी सम्पूर्ण मण्डल के ऊपर और कभी उसके कुछ भाग के ऊपर वह छाया रहती है सूर्य्यग्रहण इससे विलक्षण होता है। सूर्य्यमण्डल अधिक वा स्वल्प भाग उस समय छिपा हुआ रहता है।

ग्रहण दो प्रकार के होते हैं। १—जिनमें सूर्य और चन्द्र के मण्डल का कुछ भाग ही छाया आच्छादित होता है वह **भागग्रास वा असम्पूर्णग्रास** कहाता है। लोग उसको उतना ही अनुभव करते हैं जितना मेघ से वे दोनों सूर्य और चन्द्र छिप जांय। २—**सम्पूर्ण ग्रास** में सम्पूर्ण सूर्य और चन्द्र आच्छादित हो जाता है। सूर्य के सम्पूर्ण ग्रास के समय पृथिवी के ऊपर आश्चर्यजनक लीला होती है। पृथिवी के ऊपर उस समय एक विचित्र अन्धकार हो जाता है। न तो रात्रि के समान ही वह अन्धकार है और न ऊषाकाल के समान प्रकाश और अन्धकार युक्त ही है। आकाश में तारांय दीख पड़ने लगती हैं। पक्षिगण अपने घोसले की ओर दौड़ते हैं। रात्रिञ्चर पशु पक्षी रात्रि समझ कर बाहर निकलते लगते हैं। अज्ञानी जन डर जाते हैं। वहुत दिनों की बात है कि दो देशों के मध्य घोर संग्राम हो रहा था उसी समय सूर्यग्रहण लगा। दोनों दलों के सिपाही इतने डर गए कि युद्ध बन्द कर दिया गया और दोनों दलों में सन्धि हो गई। सूर्य के समय ग्रास से आज कल भी अज्ञानी जनों में अधिक भय उत्पन्न होता है। वे समझते हैं कि इससे किसी महान् राजा की मृत्यु होगी महा दुर्भिक्ष, अनावृष्टि अतिवृष्टि, महामारी, भयंकर युद्ध, भूकम्प आदि उपद्रव इस वर्ष होंगे किन्तु ये सब मिथ्या बातें हैं। ग्रहण से मृत्यु और दुर्भिक्षादिकों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

नाना कल्पनाएं

जिन देशों में ग्रहण के तत्व नहीं जानते थे वहां इसके सम्बन्ध में विविध कल्पनाएं लोग किया करते थे १—प्राचीन काल के रोमनिवासी चन्द्रमा को एक देवी समझते थे जब चन्द्र ग्रहण होता था तब वे मानते थे कि इस समय चन्द्रदेवी अपने बच्चे के साथ परिश्रम कर रही है इसकी सहायता के लिये वे चन्द्रदेवी के नाम पर वलि दिया करते थे उन में से कोई मानते थे कि क जादूगर अपने जादू से चन्द्रदेवी को क्लेश पहुँचा रहा है इस हेतु यह काली हो गई है इत्यादि।

२—अमेरिका के कुछ मनुष्य मानते थे कि जब जब चन्द्रमा वीमार हो जाता है तब तब ग्रहण लगता है उनको इससे अधिक भय होता था कि ऐसा न हो कि वह हम लोगों के ऊपर गिर कर नष्ट कर दे। इस आपत्ति से वचने के लिए और चन्द्रमा को जगाने के लिए बड़े २ ढोल पीटा करते थे। कुत्तों को मार मार कर भौंकाते थे स्वयं अपने बड़े ज़ोर से चिल्लाया करते थे। उसके नैरोग्य के लिए देवताओं से प्रार्थनाएं करते थे।

३—अमेरिका के मेक्सिको-देशनिवासी समझते थे कि चन्द्रमा और सूर्य में कभी २ तुमुल संग्राम हो जाता है। चन्द्रमा हार जाता है उस को वड़ी चोट लग जाती है इसी लिये इसकी ऐसी दशा होतीहै। यहां के लोग ग्रहण के समय उपवास किया करते थे। स्त्रियां डर कर अपने देह को ही पीटने लगती थी। कुमारिकाएं अपने बाहु में से रक्त निकालने लगती थी। छोटे २ बच्चे रोने लगते थे।

४—अफ्रीका देश अभी तक महान्धकार में है। यहां के लोग निग्रो (हवसी) कहलाते हैं। वे जंगली अतिमूर्ख पशुवत् हैं। वहुत सी जातियां अभी तक कपड़ा पहिनना भी नहीं जानती हैं। वहां कोई एक यात्रिक चन्द्रग्रहण के समय उपस्थित था वह इसका प्रभाव इस प्रकार वर्णन करता है। एक दिन सन्ध्या समय शीतल वायु चल रही थी। लोग वड़े आनन्द से इधर उधर मैदान में हवा खा रहे थे। चन्द्रमा के पूर्ण और स्वच्छ प्रकाश से और भी लोग बहुत प्रमुदित हो रहे थे। इतने में ही चन्द्र कुछ २ काला होना शुरु हुआ। धीरे २ सर्वग्रास हो गया। ज्यों २ चन्द्र काला पड़ता जाता था त्यों २ आनन्द घटता जाता था, भय और घवराहट बढ़ती जाती थी। सर्वग्रास के समय लोग वहुत घवड़ाकर इतस्ततः दौड़ने लगे। सैकड़ों पुरुष वहां के राजा के निकट दौड़ गये और कहने लगे कि यह 'काश में क्या हो रहा है। इस समय मेघ भी नहीं जिससे चन्द्रमा छिप जाए वे एक दुसरे के मुख अचंभा से देखने लगे कि इस समय क्या आफत हम लोगों के ऊपर आवेंगी। वे ग्रहण के तत्त्व नहीं जानते थे इसलिये इस प्रकार आकुल व्याकुल हो रहे थे। वहुत आदमी बहुत जोर से चिल्लाने लगे। कोई डंकाओं को पीटने लगे कोई तुरही फूंकने लगे। वे मानते थे कि कोई महान् सांप आके चन्द्रमा को पकड़ लेता है इस लिये यहां से इस असुर को डरा देना चाहिये ताकि वह चन्द्र को छोड़ कर भाग जाए। इसी अभिप्राय से वे डंका वजाना, सव कोई मिलकर हल्ला मचाना, तुरही फूंकना आदि काम जरूरी समझते थे। जब धीरे २ पुनः चन्द्रमा स्वच्छ होने लगा तव वे निग्रो (हवसी) बड़ी खुशी मना २ कर अपने पुरुषार्थ की प्रशंसा करने लगे।

५—शोक की वात है कि जिनके पूर्वज अच्छे प्रकार ग्रहण तत्त्व जानते थे वे भी भारतवासी इन्हीं जंगलियों के समान ग्रहण मानने लगे। आश्चर्य यह है कि यहां एक और ज्योतिषशास्त्र चिल्ला चिल्ला कर कह रहा है कि पृथिवी की छाया से चन्द्र ग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्य ग्रहण होता है। न कोई असुर न कोई सांप और न कोई अन्य पदार्थ ही चन्द्र-सूर्य को क्लेश पहुँचा सकता है। चन्द्र-सूर्य एक पदार्थ है। प्रतिदिन छायाकृत ग्रहण रहता ही है इसी कारण चन्द्रमा बढ़ता और घटता है। मेघ के आने से जैसा चन्द्रमा और सूर्य छिपासा प्रतीत होता है। वैसा ही ग्रहण भी

समझो। ग्रहण के कारण कदापि भी महामारी आदि भी उपद्रव नहीं होते इत्यादि विस्पष्ट और सत्य बात ज्योषिशास्त्र बतला रहा है वह शास्त्र पढ़ाया भी जा रहा है किन्तु दूसरी ओर मूर्खता की ऐसी धारा चल रही हैं कि जिसका वर्णन महाकवि भी नहीं कर सकते। ग्रहण के समय हजारों लाखों आदमी काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र आदिक तीर्थों की ओर दौड़ते हैं। राहु नाम के असुर से चन्द्र सूर्य को बचाने के हेतु कोई जप कोई दान कोई पूजा करता। इस समय को अशुभ समझ कोई स्नान करता कोई समझता है कि यदि ग्रहण के समय काशी, गंगा वा कुरुक्षेत्र में स्नान हो गया तो मुक्ति साक्षात् हाथ में ही रक्खी हुई है। डोम और भंगी जोर जोर से चिल्ला चिल्ला कर कहते हैं कि ग्रहण लग गया दान पुण्य करो इत्यादि विचित्र लीला आज भी भारत में भी देखते हैं। पुराणों ने यहां की सारी विद्याएं नष्ट भ्रष्ट कर दीं। वे कैसी मूर्खता की कथा गढ़ते हैं—एक समय देव और असुर मिल के समुद्र मथन कर अमृत ले आए। असुरगण अमृत को ले भागने लगे। देवगण वहां भी मुंह देखते रह गये। तब विष्णु भगवान् मोहिनी स्त्रीरूप धर असुरों के निकट जा उन्हें मोहित कर उनसे अमृत के घड़े को अपने हाथ में लेके दोनों दलों को बराबर बांट देने की सन्धि कर उन्हें विठला मन में छल रख अमृत बांटने लगे। प्रथम देव लोगों को अमृत देना आरम्भ किया। असुरों में एक राहु विष्णु के कपट-व्यवहार से परिचित था अतः वह सूर्य और चन्द्र के बीच में आके बैठ गया था। ज्यों ही विष्णु उस राहु को अमृत देने लगे त्यों ही सूर्य और चन्द्र ने ईशारा किया किन्तु कुछ अमृत इसके हाथ पर गिर चुका था और उसको उसने पी भी लिया। विष्णु ने उसे असुर जान चक्र से इसका शिर काट लिया। वह राहु और केतु दो हो गया। तब से ही वे दोनों अपने वैरी सूर्य चन्द्र को पीड़ा समय समय पर दिया करते हैं। इसी लिये ग्रहण होता है। यह पौराणिक गप्प है।

६—बौद्ध सम्प्रदायी भी पौराणिक ही एक प्रकार से हैं अतः वे भी राहुकृत ही ग्रहण मानते हैं। इनमें चन्द्रप्रीति और सूर्यप्रीति नाम के दो स्तोत्र ग्रहण के समय में पढ़ते हैं। चन्द्रप्रीति में इस प्रकार वर्णन आता है;कि एक समय किसी एक स्थान में बुद्धदेव जी समाधिस्थ थे। उसी समय राहु नाम का असुर चन्द्रमा को अपने पेट में निगलने लगा। चन्द्र बहुत ही दुःखित हुए। बुद्ध को समाधि में देख जोर से पुकार चन्द्र भगवान् कहने लगे कि मैं आप की शरण में हूं। आप सब की रक्षा करते हैं मेरी भी आप रक्षा कीजिये। इस कातर शब्द को सुन दयालु बुद्ध जी ने राहु से कहा कि तू यहां से चन्द्र को छोड़ भाग जा क्योंकि चन्द्र ने मेरी शरण ली है। बुद्ध की इतनी बातें सुन चन्द्र को छोड़ डरता कांपता सांस लेता हुआ वह राहु असुराधिपति विप्रचित्ति के निकट भाग कर जा पहुँचा और कहने लगा कि यदि मैं आज चन्द्रमा को न छोड़ता तो न जाने मेरी क्या दशा होती। बुद्ध ने मेरा अत्याचार देख लिया। सूर्यप्रीति में भी इसी प्रकार की गप्प है।

७—चीन देश निवासी भी निग्रो (हवशी) हिन्दू और बौद्ध के समान ही समझते थे कि कोई लाल और कृष्ण सांप ही चन्द्र और सूर्य को तंग किया करता है। वे हिन्दू के समान न तो स्नान करते और न बौद्ध के समान चन्द्रप्रीति आदि स्तोत्र ही पढ़ते किन्तु अफ्रीका के हवसी के

समान सब कोई मिलकर बड़े जोर से चिल्लाने ढोल बजाने डंका पीटने लगते हैं ताकि इस शोर से डर कर वह सर्प भाग जाए। इत्यादि भिन्न देशवासी, अपनी अपनी कल्पनाएं किया करते हैं।

ये सर्व कल्पनाएं मिथ्या हैं क्योंकि यद्यपि चन्द्रमा और सूर्य यहां से देखने में अतिलघु प्रतीत होता है किन्तु चन्द्रमा भी एक पृथिवी के समान ही लोक है वहां भी जीव निवास करते हैं। पृथिवी से थोड़ा ही छोटा चन्द्र है। सूर्य की कथा ही क्या। १३०००० तेरह लक्षगुणा सूर्य पृथिवी से बड़ा है। वह अग्नि का महा समुद्र है। इस सूर्य के चारों तरफ लाख कोश में शरीरधारी जीव इसकी ज्वाला से नहीं बच सकता है। यह सम्पूर्ण पृथिवी भी पर्वतसमुद्रादिसहित यदि सूर्यमण्डल में डाल दी जाय तो एक क्षण में जलकर भाफ हो जाये जब ऐसी विस्तृत पृथिवी की वहां पर यह दशा हो तो आप विचार सकते हैं कि सर्प और असुर वहां कैसे पहुंच सकते। अतः राहु आदि की कथा सर्वथा मिथ्या है पुनः जब राहुकृत ग्रहण होता तो नियमपूर्वक पूर्णिमा और अमावस्या तिथि को ही चन्द्र, सूर्य ग्रहण क्यों कर होता। वह चेतन राहु स्वतन्त्र है जब चाहता तब ही सूर्य चन्द्र को धर पकड़ता किन्तु सो नहीं होता अतः यह कल्पना मिथ्या है। पुनः विद्वान् गण सैकड़ों वर्ष पहले ही ग्रहणों के मास, तिथि, पल, क्षण, बतला सकते हैं इतना ही नहीं किन्तु किस क्षण में ग्रहण और किस क्षण से मोक्ष होना आरम्भ होगा यह कह सकते हैं। तब आप विचार करें कि यदि कोई सर्प वा राहु का यह कार्य होता तो गणित के द्वारा पण्डितगण इस विषय को कैसे कह सकते थे इस हेतु उपर्युक्त समस्त कल्पनाएं मिथ्या होने से त्याज्य हैं।

पृथिवी की छाया चन्द्रमा के ऊपर पड़ती है अतः चन्द्र ग्रहण होता है। इसी हेतु चन्द्रग्रहण ईषद्रक्त सा प्रतीत होता है। चन्द्र की छाया से सूर्य ग्रहण होता है। चन्द्रमा सर्वथा काला है। अतः सूर्यग्रहण काला प्रतीत होता है इसी कारण लाल और कृष्ण सर्प की भी कथा चल पड़ी है।

वर्ष में २ से कम और ७ से अधिक ग्रहण नहीं हो सकता साधारणतया वर्ष में ४ चार ग्रहण होते हैं। इति।

वेद में विमान की चर्चा

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरो पूर्वमपरञ्च केतुम्॥ यजु० १७।५९॥

(दिवः+मध्ये) आकाश के मध्य में (एषः+विमान आस्ते) यह विमान के समान विद्यमान है (रोदसी+अन्तरिक्षम्) द्युलोक पृथिवी तथा अन्तरिक्ष, मानों, तीनों लोकों में (आपप्रिवान्) अच्छे प्रकार परिपूर्ण होता है अर्थात् तीनों लोकों में इसकी अहत गति है (विश्वाचीः) सम्पूर्ण विश्व में गमन करनेहारा (घृताचीः) घृत=जल अर्थात् मेघ के ऊपर भी चलने हारा (सः) वह विमानाधिष्ठित पुरुष (पूर्वम्) इस लोक (अपरम्+च) उस परलोक (अन्तरा) इन दोनों के मध्य में विद्यमान (केतुम्) प्रकाश (अभिचष्टे) सब तरह से देखता है।

यहां मन्त्र में विमानशब्द विस्पष्ट रूप से प्रयुक्त हुआ है इसकी गति का भी वर्णन है तथा

इस पर चढ़ने हारे की दशा का भी निरूपण है अतः प्रतीत होता है कि ऋषिगण अपने समय में विमान विद्या भी अच्छे प्रकार जानते थे। एक अति प्राचीन गाथा भी चली आती है कि प्रथम कुवेर का एक विमान था। रावण उसे ले आया था। रामचन्द्र विजय करके जब लङ्का से चले थे तब उसी विमान पर चढ़ कर लङ्का से अयोध्या आए थे।

सृष्टि—विज्ञान

आश्चर्य रूप से सृष्टि का वर्णन वेदों में उपलब्ध होता है। वेदों में कथा कहानी नहीं है। अन्यान्य ग्रन्थों के समान वेद ऊटपटांग नहीं बकते। मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रथम इस अति गहन विषय में विविध प्रश्न करते हैं। वेदार्थ-जिज्ञासुओं को और वेदों के प्रेमियों को प्रथम वे प्रश्न जानने चाहियें वे अतिरोचक हैं और उनसे ऋषियों के आन्तरिक भाव का पूरा पता लगता है। वे मन्त्र हम लोगों को महती जिज्ञासा की ओर ले जाते हैं जिज्ञासा ही ने मनुष्य जाति को इस दशा तक पहुंचाया है जिस देश में खोज नहीं वह मृत है। कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकता। मन्त्रद्वारा ऋषिगण क्या-क्या विलक्षण प्रश्न करते हैं प्रथम उन को ध्यान पूर्वक विचारिये।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्म्मा विद्यामौर्णोत् महिना विश्वचक्षाः॥ ऋ० १०।८१।२॥

लोक में देखते हैं कि जब कोई कुम्भकार तन्तुवाय वा तक्षा घट, पट, आदि बनाना चाहता है तब वह पहिले सामग्री लेता है और कहीं एक स्थान में बैठ कर घड़ा आदि पात्र बनाता है। अब जैसे लोक में व्यवहार देखते हैं वैसे ही ईश्वर के भी होने चाहियें। अतः प्रथम विश्वकर्म्मा ऋषि प्रश्न करते हैं कि (स्वित्) वितर्क=मैं वितर्क करता हूं कि (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान अर्थात् बैठने का स्थान (किम्+आसीत्) उस परमात्मा का कौन सा था? (आरम्भणम्+कतमत्) जिस सामग्री से जगत् बनाया है वह आरम्भ करने की सामग्री कौन सी थी (स्वित्) पुनः मैं वितर्क करता हूं (कथा+आसीत्) बनाने की क्रिया कैसी थी (यतः) जिस काल में (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा (विश्व-कर्मा) सर्वकर्त्ता परमात्मा (भूमिम्+जनयन्) भूमि को (द्याम्) और द्युलोक को उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपने महत्त्व से (वि+और्णोत्) सम्पूर्ण जगत् को आच्छादित करता है उस समय इसके समीप कौन सी सामग्री और अधिष्ठान था यह एक प्रश्न है। विश्वचक्षाः=विश्व=सब, चक्षा=देखनेहारा। विश्वकर्मा=सर्वकर्त्ता। पुनः वही ऋषि प्रश्न करते हैं—

किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥ ऋ० १०।८१।४॥

लोक में देखते हैं कि वन में से वृक्ष काट अनेक प्रकार के भवन बना लेते हैं। ईश्वर के निकट कौन सा वन है? (स्वित्) मैं वितर्क करता हूं (किम्+वनम्) कौन सा वन था (कः+उ+सः+वृक्षः+आस) कौन सा वह वृक्ष था (यतः) जिस वन और वृक्ष से (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी को (निष्टतक्षुः) काटकर बहुत शोभित बनाता है (मनीषिणः) हे मनीषी कविगण

(मनसा) मन से अच्छे प्रकार विचार (तत्+इत्+उ) उसको भी आप सब पूछें कि (भुवनानि+धारयन्) सम्पूर्ण जगत् को पकड़े हुए वह (यद्+अधि+अतिष्ठत्) जिसके ऊपर स्थित है। इस ऋचा के द्वारा ऋषि दो प्रश्न करते हैं एक जगत् बनाने की सामग्री कौन सी है और दूसरा सबको बनाकर और पकड़े हुए वह कैसे खड़ा है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ ऋ० १०।८१।३॥

अब स्वयं वेद भगवान् उत्तर देते हैं कि वह परमात्मा (विश्वतश्चक्षुः) सर्वत्र जिसका नेम है जो सब देख रहा है (विश्वतोमुखः) सब ओर जिसका मुख है (विश्वतोबाहुः) सर्वत्र जिसका बाहु है (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र जिसका पैर है जो (एकः+देवः) एक महान् देव है वह प्रथम (बाहुभ्याम्) बाहु से (संधमति) सब पदार्थ में गति देता है तब (पतत्रैः) पतनशील व्यापक परमाणुओं से (द्यावाभूमी) द्युलोक और भूमि को (संजनयन्) उत्पन्न करता हुआ।

एक देव निराधार विद्यमान है। द्वितीय प्रश्न का उत्तर तो यह है कि जब परमात्मा सर्वव्यापक है तब इसके आधार का विचार ही क्या हो सकता है जो एकदेशी होता है वह आधार की अपेक्षा करता है। इस दृश्यमान संसार में वह ऊपर नीचे चारों तरफ और अभ्यन्तर जब पूर्ण है। तब यह प्रश्न कैसा? अब प्रथम प्रश्न का उत्तर यह दिया जाता है कि पतत्र=अर्थात् पतनशील=अतिचञ्चल गतिमान् पदार्थ सदा रहता ही है न वह कभी उत्पन्न हुआ न होता न होगा वह शाश्वत पदार्थ है। उन्हीं पतत्र में गति देकर अपनी निरीक्षण यह सारी सृष्टि रचा करता है। इस मन्त्र से सिद्ध है कि परमात्मा इस जगत् का निमित्तकारण है। जीवात्मा और प्रकृति भी नित्य अज वस्तु हैं इन ही दोनों की सहायता से वह ब्रह्म सृष्टि रचा करता है।

ईश्वर का अस्तित्व

प्रथम यहां शङ्का हो सकती है कि ईश्वर ही कोई वस्तु सिद्ध नहीं होता। इसके उत्तर में बड़े बड़े शास्त्र हैं यहां केवल दो एक बात पर ध्यान दीजिये। भाव से भाव होता है अर्थात् प्रथम किसी पदार्थ का होना आवश्यक है। उस पदार्थ से अन्य पदार्थ होगा। वह पदार्थ चेतन परम ज्ञानी परम विवेकी होवे क्योंकि परम ज्ञानी ही इस ज्ञानमय जगत् को बना सकता है अत कोई परम ज्ञानी पुरुष सदा से विद्यमान है वही परमात्मा ब्रह्म आदि नाम से पुकारा जाता है। ईश्वर के अस्तित्व में दूसरा प्रमाण रचना है। अपने शास्त्र में "जन्माद्यस्य यतः" जिस से इस जगत् का जन्म पालन और विनाश हो उसे ईश्वर कहा है इसको रचना देखकर प्रतीत होता है कि कोई ज्ञानी रचयिता है। किसी वन में सुन्दर भवन, उसके चारों तरफ पुष्पवाटिका, कूप, तड़ाग और उसमें भोजन के अनेक पदार्थ इत्यादि मनुष्ययोग्य वस्तु देखी जाए किन्तु किसी कारण वश कोई अन्य पुरुष वहां न दीख पड़े तो भी द्रष्टा पुरुष यही अनुमान करेगा कि इस भवन का रचयिता कोई ज्ञानी पुरुष है। ऐसा नहीं हो सकता कि स्वयं ये अज्ञानी प्रस्तर, मिट्टी और पानी इकट्ठे हो ऐसा सुन्दर मकान बन गए

हों। यदि ऐसा हो तो प्रति दिन लाखों भवन वन जाने चाहियें और वाल्मीकिरामायण और महाभारत के जितने अक्षर हैं उतने अक्षर काटकर किसी बड़े बर्तन में रख दिए जांय यदि वे अक्षर मिलकर श्लोकों के रूप में बन जांय तो कहा जा सकता है कि ये विद्यमान परमाणु स्वयं जगत् के रूप में बन गए किन्तु ऐसा हो नहीं सकता अतः सिद्ध है कि कोई रचयिता चेतन है वही ईश्वर है। वह ईश्वर स्वयं अपने शरीर से इस जगत् को नहीं बनाता यदि ऐसा करे तो वह विकारी समझा जाय और तब ईश्वर के शरीर के समान यह जगत् भी पवित्र होना चाहिये। दूसरी बात यह है कि ईश्वर का कोई शरीर नहीं वह अशरीरी है। जो शरीरधारी है वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता ईश्वर सर्वव्यापक है। अतः सिद्ध है कि कोई अचेतन जड़ पदार्थ भी सदा से चला आता है इसी को प्रकृति कहते हैं। वेदों में इसका नाम अदिति है। अब वह जगत् जड़चेतनमिश्रित है अतः जड़ भिन्न कोई चेतन भी सदा से विद्यमान था ऐसा अनुमान होता है। उसी का नाम जीव है। इसी प्रकृति और जीव की सहायता से परमात्मा सृष्टि रचा करता है। सृष्टि विज्ञान पर आगे लेख रहेगा। यहां इतना और भी जानना चाहिये कि परमात्मा सदा एक स्वरूप रहते हैं इनमें किसी प्रकार का परिणाम नहीं। जैसे दूध से दही बनता है जल से भाप बर्फ और वर्षा से बनौरे बनते हैं इसी का नाम परिणाम है। जीव भी निज स्वरूप से अपरिणामी है केवल प्रकृति ही परिणामिनी है कैसे आश्चर्य प्रकृति का परिणाम है। वही कहीं सूर्यरूप महाग्नि का समुद्र बनी हुई है। कहीं जलमय हो रही है। कहीं सुन्दर मानव-शरीर की छवि दिखा रही है। कहीं कुसुमरूप में परिणत हो कैसे अपूर्व सुरभि फैला रही है। कहीं मृगशरीर वन के दौड़ रही है और कहीं सिंहशरीर से मृग को खा रही है। आहा !! कैसी अद्भुत लीला उस प्रकृति द्वारा ईश्वर दिखा रहा है। आप विचार तो करें यदि कोई महान् चेतन प्रबन्धकर्त्ता न होता तो जड़ा अज्ञानिनी अमन्त्री प्रकृति ऐसी नियमबद्ध लीला कैसे दिखला सकती। वह जड़ा प्रकृति कैसे विचारती कि कुछ परमाणु मिल के सुगन्धि बने। कुछ पत्ते, कुछ डाल, कुछ बीज बने। यह विचार परमाणु पुंजों में कैसे उत्पन्न हो सकता है। अतः सिद्ध है कि प्रबन्धकर्त्ता कोई महान् चेतन है। यह तो आप देखें कूष्माण्ड (पेठा) का एक बीज किसी अच्छे खेत में लगा देवें। इस एक बीज से अच्छे खेत में अच्छे प्रबन्ध के द्वारा कम से कम सहस्र कूष्माण्ड (पेठे) उत्पन्न होंगे यदि प्रत्येक पेठे में एक एक सौ ही बीज हों तो भी १००० × १०० = १००००० बीज होंगे। अब इतने बीजों को पुनः अच्छे खेतों में लगावें इसी प्रकार लगातार दश वर्ष तक बीज लगाते जावें। आप अनुमान करें वे बीज लतारूप में आके कितनी जमीन घेर लेवेंगे।

यदि इसी प्रकार (१००) सौ वर्ष तक बीज बोए जांय तो मैं कह सकता हूं कि पृथिवी पर कहीं जगह नहीं रहेगी। कहिये कैसी अद्भुत लीला है। एक बीज में कितनी शक्ति भरी हुई है। बीज बहुत ही छोटा होता है इससे कितनी शाखावाली लता बन जाती है। यदि वह लता तौली जाए तो कितने मन होंगे वह वृद्धि कहां से आई बीज से जिस समय अंकुर होता है तो देखने से प्रतीत होता है कि उस का स्थूल भाग ज्यों का त्यों ही बना हुआ है। किसी अदृश्य शक्ति से अंकुर निकल आता है और धीरे धीरे दो तीन मास में ही एक महान् लता कुंज बन जाता है। पुनः इनही पृथिवी, अप्, तेज, वायु की सहायता से पेठे का बीज, अपने समान ही परिणाम पैदा करता है अर मिरची का

बीज अपने समान, अंगूर का बीज मधुरता, नीम का बीज तिक्तता, इत्यादि आश्चर्य परिणाम को ये सारे बीज दिखला रहे हैं। इन बीजों में ऐसा अद्भुत प्रबन्ध किसने कर रक्खा है, निश्चय वह महान् ईश्वर है। जो प्रकृति और जीव के द्वारा इस महान् प्रबन्ध को दिखला रहा है। संक्षेपतः यह जानें कि प्रकृति से ही पृथिवी, अप्, तेज, और वायु बने हुए हैं। ये दृश्यमान सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ताराएं और ये अनन्त ब्रह्माण्ड प्रकृति के ही विकार हैं।

पृथिवी आदि की उत्पत्ति

वेदों में पृथिवी आदि की उत्पत्ति यथार्थ रूप से लिखी हुई है। धीरे धीरे बहुत दिनों में यह पृथिवी इस रूप में आई है। यह प्रथम सूर्यवत् जल रही थी, अभी तक पृथिवी के भीतर अग्नि पाया जाता है। कई स्थानों में पृथिवी से अग्नि की ज्वाला निरन्तर निकल रही है। इसी को ज्वालामुखी पर्वत कहते हैं। कहीं कहीं गरम पानी निकलता है इसका भी यही कारण है कि वहां पर अग्नि है। धीरे धीरे ऊपर से पृथिवी शीतल होती गई। तब जीव जन्तु उत्पन्न हुए। लाखों वर्षों में, वह अग्नि की दशा से इस दशा में आई है। वेद विस्पष्ट रूप से कहते हैं कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम-कल्पयत्। दिवंच पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः" परमात्मा पूर्ववत् ही सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, और सब प्रकार सुखमय पदार्थ बनाया करते हैं।

पुराण और पृथिवी को उत्पत्ति

परन्तु शोक की बात है कि पुराण इस विज्ञान को भी नहीं मानते और एक असंभव गाथा बनाकर लोगों को महाभ्रम और अज्ञानरूप महासमुद्र में डुबो देते हैं। देवी भागवत पद्म पुराण आदि अनेक पुराणों में यह कथा आती है कि—प्रथम विष्णु ने जल उत्पन्न किया और उसी में घर बना कर सो गये। इनके नाभि कमल से जल के ऊपर एक ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। वह कमल पर बैठकर सोच ही रहा था कि मैं कहां से आया मेरा क्या कार्य है इत्यादि, उतने में ही दो दैत्य मधु कैटभ विष्णु के कर्णमल से उत्पन्न हो (विष्णुकर्णमलोद्भूतौ) जल के ऊपर आ के ब्रह्मा को कमल के ऊपर बैठा देख बोले कि अरे तू ! इस पर से उतर जा हम दोनों बैठेंगे। इस प्रकार तीनों लड़ने लगे। पश्चात् ब्रह्मा के पुकार से साक्षात् विष्णु जी आये और इन दोनों असुरों को छल से मारा। तब से ही विष्णु जी मधुसूदन कहलाने लगे इन दोनों के शरीर से जो रक्त, मज्जा, मांस निकला वही जल के ऊपर जम कर पृथिवी बन गई। इसी कारण नाम मेदिनी पड़ा है क्योंकि इन मधुकैटभों के मेद अर्थात् मज्जा से बनी हुई।

प्रमाण—"मधुकैटभयोरासीन्मेदसैव परिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः" इत्यादि प्रमाण देवी भागवत आदि में देखिये। अथवा शब्दकल्पद्रुम आदि कोशों में मेदिनी शब्द के ऊपर इन्हीं प्रमाणों को देखिये। जल की ही प्रथम सृष्टि हुई यह पुराणों का कथन बहुत ही मिथ्या है। जब जलराशि समुद्र बन गया जिसमें विष्णुभगवान् सोये हुए थे तो समुद्र किस आधार पर था। अज्ञानी पुरुष समझते हैं कि नौका के समान यह पृथिवी जल के ऊपर ठहरी हुई है वा शेष-नाग के शिर पर कच्छप की पीठ पर यह स्थापित है। यदि मधुकैटभ के रुधिर मांस मज्जा से यह

पृथिवी बनी तो मधुकैटभ का शरीर कहां से और किस पदार्थ से बना हुआ था। विष्णु यदि शरीरधारी थे तो उनका शरीर किन धातुओं से बना हुआ था। पुनः कान के मैल कहां से आए। कमल कैसे और किन पदार्थों से बने इत्यादि बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि पुराणों के लेखक भ्रमयुक्त थे।

सूर्यचन्द्र की उत्पत्ति

मैं अभी कह चुका हूं कि परमात्मा ने ही इस सूर्यचन्द्र को बनाया है। परन्तु पुराण कुछ और ही कहते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं कि कश्यप ऋषि की अदिति, दिति, दनु, कद्रू विनता आदि अनेक स्त्रियां थीं। इसी अदिति से आदित्य अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, आदि उत्पन्न हुए।

भागवतादि यह भी कहते हैं कि अत्रि ऋषि के नेत्र से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है यथा—

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्त्तयः॥

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात्।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः॥

तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः॥

कोई कहता है कि समुद्र से चन्द्र की उत्पत्ति हुई इसी प्रकार मेघ कैसे बनता वायु क्यों कभी तीक्ष्ण और कभी मन्द होता पृथिवी से क्योंकर गरमजल और अग्नि निकलता ज्वालामुखी क्या वस्तु है भूकम्प क्यों होता विद्युत् क्या वस्तु है मेघ में भयंकर गर्जना क्यों होती इत्यादि विषय विज्ञानशास्त्र के द्वारा प्रत्येक पुरुष को जानना चाहिये। "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" मनुष्य की उत्पत्ति ही इसी कारण हुई है। जिज्ञासा करना मनुष्य का परमधर्म है। वेदों और शास्त्रों में इसकी बहुधा चर्चा आई है। हम अपनी चारों तरफ सहस्रों पदार्थ देखते हैं। उनको विचार दृष्टि से अवश्य जानना चाहिये। आकाशस्थ ताराएं कितनी बड़ी और कितनी छोटी हैं वे पंक्तिबद्ध और बन के समान क्यों दीखतीं, पृथिवी से ये कितनी दूरी पर हैं! एवं नक्षत्रों की अपेक्षा चन्द्र क्यों बड़ा दीखता पुनः इसके इतने रूप कैसे बदलते! प्रायः सबही ग्रह पूर्व से पश्चिम आते हुए क्यों देख पड़ते! इसी प्रकार पृथिवी पर नाना घटनाएं होती रहती हैं—कभी कभी वर्षा ऋतु में मेघ भयङ्कर रूप से गर्जता, बिजली लगकर कभी २ मकान और बड़े २ ऊंचे वृक्ष जल जाते, मनुष्य मरजाते, वह बिजली कहां से और कैसे उत्पन्न होती, मेघ क्योंकर बनता, इतने जल आकाश में कहां से इकट्ठे हो जाते, पुनः मेघ आकाश में किस आधार पर बड़े वेग से दौड़ते, वहां ओले कैसे बनते, फिर थोड़ी ही देर में मेघका कहीं पता नहीं रहता, इत्यादि बातें अवश्य जाननी चाहिये।

ऐ मनुष्यो! ये ईश्वरीय विभूतियां हैं इन्हें जो नहीं जानता वह कदापि ईश्वर को नहीं जान

सकता वह अज्ञानी पशु है स्वयं वेद भगवान् मनुष्य जाति को जिज्ञासा की ओर ले जाते हैं आगे इसी विषयं को देखिये। अतः जिज्ञासाकरना मनुष्य का परम धर्म है इति।

ऐ मनुष्यो ! इस जगत् में यद्यपि परमात्मा साक्षात् दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि इसकी विभूतियां ही दीखपड़ती और इन ही में वह छिपा हुआ है अतएव बड़े २ प्राचीन ऋषि कह गए हैं कि "आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन"। इस परमात्मा की वाटिका को ही सब कोई देखते हैं और इसी के द्वारा उसको देखते हैं साक्षात् उसको कोई नहीं देखता। अतः इसी जगत के वास्तविक तत्त्वों को जो सदा अध्ययन किया करता है वह, मानो, परम्परा से ईश्वर का ही चिन्तन कर रहा है। व्यास ऋषि इसी कारण ब्रह्म का लक्षण कहते हुए कहते हैं कि "जन्माद्यस्य यतः" जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और संहार हुआ करता है वही ब्रह्म है इससे ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध बतलाया अतः यदि जगत् को जान लेवे तो, मानों, ईश्वर की रचना जानली यह कितनी बड़ी बात है। अतः जिज्ञासुओ ! प्रथम ईश्वर की रचना की ओर ध्यान दो॥

॥ इति ॥

❀ वैज्ञानिक सिद्धान्त ❀

जिज्ञासाऽध्याय १

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वय कृतार्था।
इत्याभमन्यन्ति बालाः मुण्डकोपनिषद ॥

ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा। जानने की प्रवल इच्छा का नाम जिज्ञासा है। विज्ञान, अन्वेषण, खोज, तहक़ीक़ात (Research) इत्यादि अर्थों में यहां जिज्ञासा शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रत्येक नरनारी के हृदय में जिज्ञासा का बीज स्वभावतः विद्यमान है। इसी हेतु पश्वादिकों की अपेक्षा मानव जाति की उत्तरोत्तर वृद्धि, सृष्टि की आदि से होती चली आती है। जब बालक उत्पन्न होता है, यद्यपि उसकी इन्द्रिय-शक्ति बहुत स्वल्प रहती है। देखना, सुनना, सूंघना, रसलेना, हिताहित विचार आदि व्यवहार में और अग्नि, सर्पादिकों के ज्ञान इसका इन्द्रियगण अति दुर्बल रहता है। तथापि वह सूतिकागृहकी शय्या पर सोते सोते अपनी चारों ओर आंख फार फार देखता, हाथपैर मारता, अनेक प्रकार की चेष्टा करता ही रहता है। ज्यों ही बढ़ता और बोलने लगता है। तब देखो कितनी इसमें जीज्ञासा की शक्ति बढ़ती जाती है। नवीन वस्तु को देखते ही झट पूछता है मा ? यह क्या है ? कभी छोटे बच्चे को लेकर कहीं वाह्य स्थान में निकालो। प्रत्येक नई वस्तु को देख देख कर वह शिशु उतने प्रश्न पूछता जाएगा कि उत्तर देने हारे की नाक में दम आ जाएगी। इस प्रकार वह थोड़े ही

वर्षों में अपने परितःस्थित वस्तुओं को वाह्य रूप से जानकर ही छोड़ता है। अति मूर्ख जाति में वह जिज्ञासा यहां ही तक रह जाती है। सभ्य में अध्ययन और मननादिकों के द्वारा वह नानाशास्त्रावलम्बिनी होतीं चली जाती है। मध्यमकोटि की मानवजाति में इसको परम दुर्दशा होने लगती है। जिज्ञासा का स्थान साम्प्रदायिक मजहवी (Religious) विश्वास ले लेता है। मूर्ख नर नारी इसके परम वैरी हैं। धूर्त जनों के भोज्य ये ही होते चले आये हैं। ऐ मेरे श्रोताओ! ये वंचक, वकवृत्ति, वैडालव्रतिक जनही व्याघ्र हैं। मनुष्यजातिरूपा अरण्यानी में प्रवेश कर अविवेकी अमन्ता अबोद्धा विश्वासी पुरुषरूप मृग शशकादिकों को पकड़ पकड़ खूब चवाते हैं। वे पशु, मृग शशक तो अपने शत्रु को झट पहचान भी लेते हैं और उनसे डरके भाग भी जाते हैं। कदाचित् विवश होकर उन्हें कवलित होना पड़ता है। किन्तु शोक की वात है कि इस मानव जाति के १०० भागों में से निन्यानवे भाग इतने विचार शून्य हैं कि वे साम्प्रदायिक विश्वासी वन के अपनी विवेक रूप आंखे ऐसी चूर्ण चूर्ण करवा लेते हैं कि वे अपने प्रिय हाथ को भी नहीं देखते इस कौतुक में महान् आश्चर्य यह है कि अन्ध अपने को चक्षुष्मान्, वधिर अपने को श्रोता, मूक अपने को वाचाल, पंगु अपने को धावक और अज्ञानी अपने को परमज्ञानी मानने लगता है। वहुत क्या कहूं वे विश्वासी विहग सर्वथा अविद्या रूपी पिंजरे में वन्द कर दिये जाते हैं। उनको धूर्तजन शुकवत् पढ़ाने लगते हैं कि देखो? यह तुझे परम गुप्त मन्त्र देता हूं किसी से मत कहना। देख! दूसरे को कह देने से मन्त्र का प्रभाव जाता रहता है।

नात्र कार्य्या विचारना। गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयंप्रयत्नतः। एषा शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥

देखो! यह श्री व्यासजी का वचन है। यह साक्षात् श्री भगवान् जी का वाक्य है। यह पार्वती जी की वाणी है। इस में कभी दुर्भाव न करना। तेरा कुल नष्ट हो जाएगा। तू मर जायगा। तेरी सन्तति न रहेगी। इत्यादि २ अनेक शापाभिशाप देके विश्वासी जनों को ठगा करते हैं। ऐ मेरे प्यारे श्रोताओं? क्या इस अज्ञान से तुम बचना नहीं चाहते? किसी ने ठीक कहा है कि "धूर्तैर्जगद् वञ्चितम्" इस दृश्य को याज्ञवल्क्य ने अन्य प्रकार से दिखलाया है यथा—

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानां यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्ति। एकस्मिन्नेव पशावादीयमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्नप्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः।

अर्थ—मैं अन्य हूं वह अन्य है ऐसा समझ जो कोई अन्य देवता की उपासना करता है वह नहीं जानता। जैसा पशु है वैसा ही वह देवना का पशु है। जैसे वहुत से पशु मनुष्य पालते हैं वैसे ही एक एक पुरुष देवों को पालता है। यदि किसी के एक ही पशु को कोई चुरा ले जाए या व्याघ्र मार के खा जाए तो उसको कितना दुःख होगा। यदि इसी प्रकार उसके अनेक पशु चुराए जाएं तो कहिये उसको कितना असह्य क्लेश होगा। अतः देवता इसको अच्छा नहीं समझते हैं कि मनुष्य जान जावें क्योंकि जानकार होने से वह भी देव या देव से भो अधिक हो जाता है तब वह ऐसे

स्वार्थी देवको सेवा नहीं करता अतः देव नहीं चाहते कि मनुष्य ज्ञानी वने । आजकल इस आर्य्यावर्त देश में याज्ञवल्क्य जी का वचन ठीक चरितार्थ हो रहा है। अविवेकी सम्प्रदायी विश्वासी जन ही यहां पशु हैं । वंचक स्वार्थान्ध गुरु जी देव हैं । वे अज्ञानी अपने को नीच, पापिष्ठ, मान अपने वंचक गुरु को ईश्वरावतार, धर्म्ममूर्ति, निष्कलङ्क, परमशुद्ध, पुरुषोत्तम, साक्षात् भगवान् जान उन्हें विधिपूर्वक पूजते हैं, पैर धोते हैं, पैर धो पानी को चरणामृत समझ देह पर सींचते और पीते हैं । उनके चरणों पर प्रेमसे फूल चढ़ाते हैं । मोती सोना चांदी रुपये पैसे भेंट देते हैं, फलों, फूलों, अन्नों तथा अन्यान्य शतशः पदार्थों से उनके गृह भर देते हैं । इतना ही नहीं, किन्तु स्त्रियां तक भी तन, मन, धन, गुसाईं जी को अर्पण करती हैं । ऐसे नरपशु उन २ गुरुदेवों को पाल २ कर ऐसे २ हृष्टपुष्ट सांढ़ बना देते हैं कि वे मदोन्मत्त होके यथेच्छ आहार विहार भोगविलास को ही परमानन्द समझ उद्दण्ड नास्तिक बन सर्वमानव हितकारी नियमरूप शृंखलाओं को तोड़ डालते हैं। वे गुरुदेव जब २ अपने नरपशु को देखते हैं कि यह कुछ जानने लगा है । यह किसी विवेकी प्रकाश के निकट जाता है तो उन्हें बड़ाही क्लेश होता है । सोचने लगते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि वह मेरा पशु कहीं चला जाय । ऐ विवेकी पुरुषो ! देखो ! श्री याज्ञवल्क्य जी क्या कह रहे हैं । देवता नहीं चाहते हैं कि मेरे पशु ज्ञानी हो जाएं । मैं निश्चय कहता हूं कि वे सम्प्रदायी गुरुदेव तुमको कभी विवेकी होने नहीं देवेंगे । अतः प्रथम यदि इनकी हथकड़ी से छूटने का यत्न करोगे तब कहीं जिज्ञासा के अधिकारी बनोगे । मैं तुमसे कहता हूं कि कभी जिज्ञासा से मुख मत मोड़ो। जिज्ञासा के लिये ही मानवजाति बनाई गई है । इन परितः स्थित पदार्थों को देख देख कर जिनके हृदय में उनके विशेष बोधार्थ प्रश्न नहीं उठते हैं वे निश्चय पशु हैं । वे दुर्बल हृदय के पुरुष हैं जिनके हृदय में प्रश्न तो उठते हैं किन्तु किसी खास मजहब में वा धर्म्म सभा में रहने के कारण उन प्रश्नों को विचार में नहीं लाते, प्रकट नहीं करते । बहुत से ऐसे भी हैं जो जानते हुए भी अनजान हैं । वे अपनी अपनी ज्ञाति, परिवार, मजहब, वा किसी लोभ, मोह, भय, आदि कारण वश सत्य को प्रकाशित नहीं कर सकते । वैसे पुरुष परम शोचनीय हैं अहा !!! मनुष्य किस प्रकार गुलाम बनाया गया है ।

ऐ मेरे परमप्रियो ! जो अपने को नीच समझता है वा अपने कर्म्म से आत्मा को दीन दरिद्र बनाता है वह अवश्य नीच हो जाता है। तुम्हारे शरीर में जो आत्मा है वह महान् है वह ज्ञान का राशि है वह अगाध है । गीता में कहा गया है कोई आत्मा को न गिरावे । "उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" । गी० ६।५।। अतएव ऋषिगण प्रार्थना करते चले आये हैं "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" । प्रथम आपको यह जिज्ञासा करनी चाहिये कि यह गुरुदेव मुझ से किस बात में श्रेष्ठ हैं । मेरे ही समान, खाते, पीते, स्त्री रखते, पुत्र जनमाते हैं । फिर वे कैसे देव ? मैं कैसे मनुष्य ? प्रथम तो यह सोचो । अच्छे प्रकार विचारो । यदि उन में कोई विशेष गुण है तो उन का आदर करने में कोई क्षति नहीं । योग्य आदर करो, अति मत करो । यथार्थ में तुम्हारे गुरु आचार्य तो वे हैं जिन्होंने तुम्हें पढ़ाया, जो सदा सदुपदेश देते हैं और स्वयं भी उसके अनुसार चलते हैं । दूसरों के उपदेश देनेहारे तो बहुत हैं किन्तु उसके अनुसार स्वयं चलने हारे बहुत थोड़े हैं ।

कृतकृत्यता—जो अपने को कृतकृत्य समझते हैं वे भी जिज्ञासा के परम वाधक हैं क्योंकि वे खोज से निवृत्त हो जाते हैं। परन्तु मैं कहता हूं, मरण की घड़ी तक तुम अभीष्ट पदार्थों का अन्वेषण करते रहो। मनुष्य जाति को सुशोभित करने द्वारा केवल अन्वेषण है। जिज्ञासु ही सचमुच मनुष्य है। वहुत कहते हैं कि यदि जन्मभर खोजते ही रहें तो परमार्थ की प्राप्ति कव करें। उत्तर—तुमने परमार्थ को क्या समझा है? क्या ईश्वर की विभूति का खोज करना परमार्थ नहीं है ? तुम पहिले ही कृतकृत्य कैसे हो सकते हो ? क्या तुमने परमात्मा की सारी विभूतियों की इयत्ता पा ली ? यह कभी नहीं हो सकता। मनुष्य सर्वदा स्वल्पज्ञ ही रहेगा। परमात्मा परम पिता की सृष्टि का कदापि भी अन्त तक यह जीवात्मा किसी अवस्था में नहीं पहुँच सकता। अतः जहां तक अपने जीवन में जितना ढूंढ निकालोगे वह तुम्हारे लिए परमार्थ है वह परमानन्दप्रद होगा। मैं कहता हूं कि तुम कभी अपने को कृतकृत्य मत समझो। सर्वदा जिज्ञासु ही वने रहो।

जो कोई यह कहते हैं कि बहुत ग्रन्थों के देखने से क्या ? बहुत बकने से क्या ? जब अहं ब्रह्मास्मि का ज्ञान हो गया तो इस से परे क्या है ? एक ही रामनाम काफी है। एकवार गंगा पर्य्याप्त है। एकवार एक आध श्लोक पढ़ लेना ही मुक्ति का कारण है। जगत् में तीन ही वस्तु हैं परमात्मा, जीवात्मा, और प्रकृति सो अच्छे प्रकार जाने गए। मैंने एक यज्ञ कर लिया परम पवित्र हो गया अब क्या करना है इत्यादि नाना अविद्याओं में फंस अज्ञानी अपने को तृप्त मानने लगते हैं इन के ही लिये ऋषि अंगिरा कहते हैं।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
जङ्घन्यमाना परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥८॥
अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्म्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥

इस विषय में भर्तृहरि ने भी अच्छा कहा है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्, तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित् किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतम, तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।

नारद और जिज्ञासा—छान्दोग्योपनिषद् सप्तम प्रपाठक में यह आख्यायिका आई है। एक समय नारद सनत्कुमार के सन्निधि जा बोले कि भगवन् ! मुझे आप उपदेश देवें। सनत्कुमार ने कहा कि आप जितना जानते हैं उतना प्रथम कह जाइये, तब मैं उस के आगे कहूंगा ॥१॥

नारद बोले—मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्वण, पञ्चम इतिहास पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण) पित्र्य, राशि, दैव, निधि, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्र विद्या. नक्षत्र विद्या, सर्प देव यजन विद्या ये १८ अष्टादश विद्याएं जानता हूं ॥२॥

हे भगवन् ! सो मैं अभी तक केवल मन्त्रवित् ही हूं। आत्मवित् नहीं। आप लोगों के समान पुरुषों से सुनता हूं कि आत्मवित् शोक को तैर जाता है। मैं शोक कर रहा हूं अतः मैं आत्मवित् नहीं, मुझे शोक से पार उतारें ॥३॥

इसके पश्चात् सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद ! ये ऋग्वेदादि नाम ही हैं। नाम की जहां तक गति है वहां तक उसकी गति होती है जो नाम ब्रह्म की❀ उपासना करता है। आगे नारद और सनत्कुमार में मनोज्ञ सुन्दर संवाद है।

१ वाणी २ मन ३ संकल्प ४ चित्त ५ ध्यान ६ विज्ञान ७ बल ८ अन्न ९ जल १० तेज ११ आकाश १२ स्मरण १३ आशा १४ प्राण ये चौदह उत्तरोत्तर अधिक माने गए हैं। इसके पश्चात् कहा है कि सत्य ही सब से अधिक है।

नारदने कहा कि—"सत्यं भगवो विजिज्ञासे इति"। हे भगवन् ! मैं सत्य की विशेष रूप से जिज्ञासा करता हूं।

सनत्कुमार—जब जानता है तब सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता है। अतः हे नारद ! विज्ञान ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—विज्ञानं भगवो विजिज्ञासे इति। भगवन् ! मैं विज्ञान की विशेष रूप से जिज्ञासा करता हूं।

सनत्कुमार—जब मनन करता तब जानता है बिना मनन किए नहीं जानता है, मनन ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—मतिं भगवो विजिज्ञासे इति। मति=मनन।

सनत्कुमार—जब श्रद्धा करता है। तब ही मनन करता है। अश्रद्धालु मनन नहीं करता। श्रद्धावान् ही मनन करता है। हे नारद ! श्रद्धा ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—श्रद्धां भगवो विजिज्ञासे इति।

सनत्कुमार—जब निष्ठावान् होता है तब श्रद्धा करता है, अनिष्ठ श्रद्धा नहीं करता। नैष्ठिक ही श्रद्धा करता है। हे नारद ! निष्ठा ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—निष्ठां भगवो विजिज्ञासे इति।

सनत्कुमार—जब किसी वस्तु को क्रिया में लाकर देखता है तब ही निष्ठा होती है, अकर्मी कभी निष्ठावान् नहीं होता। हे नारद ! कृति ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—कृतिं भगवो विजिज्ञासे इति।

सनत्कुमार—जब सुख पाता है तब कर्म करता है। सुख को न पाकर कोई कर्म्म नहीं करता सुख को पाकर ही कर्म करता है सुख ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—सुखं भगवो विजिज्ञासे इति।

सनत्कुमार—जो भूमा अर्थात् परम महान् है वही सुख है अल्पमें सुख नहीं। भूमा ही विजिज्ञासितव्य है।

❀नोट—उपनिषदों में ब्रह्मशब्द बृहत्, परमादरणीय, प्रीतिभाजक, इत्यादि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है

नारद—भूमानं भगवो विजिज्ञासे इति।

इसके पश्चात् सनत्कुमार ने उपदेश दिया है कि सर्वव्यापी परमात्मा ही भूमा है। वही सुखस्वरूप है।

नारद—वह परमात्मा है कहां ?

सनत्कुमार—अपनी महिमा में

अर्थात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सूर्य, चन्द्र, पृथिवी मनुष्य पशु आदि उसकी महिमा है। इसी में प्रतिष्ठित है। इत्यादि नारद और सनत्कुमार का संवाद है। ऐ जिज्ञासु पुरुषो ! प्रथम तुम देखते हो कि नारद जी कितनी विद्याएं जानते थे। तो भी इन्हें सन्तोष नहीं। ये पुनः गुरु के समीप जाते हैं और उनसे परमार्थ के उपदेश ग्रहण करते हैं। क्या तुमने नारद से भी अधिक जान लिये जो जिज्ञासु बनने में संकोच करते हो। यदि तुम में से दो एक सनत्कुमार बन गए हैं तौ भी क्या क्षति तौ भी संतुष्ट न होना चाहिये वे सनत्कुमार भी तो सदा मनन में ही लगे रहते थे।☼

विराट् और वैश्वानर रूप—सनत्कुमार कहते हैं कि यह ब्रह्म अपने महिमा में प्रतिष्ठित है। सूर्य्य से लेकर तृणपर्यन्त ब्रह्म का महिमा है। अतः सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी प्रभृतियों में से जितना भाग जो जानेगा वह मानो उतना ब्रह्म के महिमा को ही जानेगा। पुनः विराट्रूप में वर्णन आता है कि मानो ब्रह्म का चरण यह वसुन्धरा है, नयन दिनमणि, श्रुति दिशाएं, घ्राण वायु है, आस्य अग्नि है, महाकाश उदर है। इत्यादि—

छान्दोग्योपनिषद् पञ्चम प्रपाठक, एकादश खण्ड से एक आख्यायिका आरम्भ होती है कि, प्राचीनशाल औपमन्यव, सत्यज्ञ पौलुषि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य और बुडिल अश्वतराश्वि ये सव महाशाल(बड़ी पाठशालावाले) और महा श्रोत्रिय थे। मिलकर विचारने लगे कि"**को नु आत्मा किं ब्रह्मेति**" आत्मा और ब्रह्म क्या वस्तु है ? निश्चय न कर सके। तब उस समय के सुप्रसिद्ध उद्दालक आरुणि ऋषि के निकट आए। ये भी उनके सन्देहों को मिटाने में अपने को असमर्थ देख उन्हें साथले केकैय अश्वपति के निकट पहुंचे। राजा अश्वपति उन की यथाविधि पूजा करवा कहने लगे हे परम-

---

☼ **नोट—**यद्यपि इन महात्माओं का इतिवृत्त यथार्थ रूप में नहीं पाया जाता। पुराणों ने इनके विश्य में अनेक गल्प कल्पित किए हैं। पुराणों के अनुसार ये ब्रह्मा के पुत्र कहे गए हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चार भाई माने जाते हैं, यह ध्यान रखना चाहिये के जितने अच्छे साधु महात्मा हुए वे सब ही प्रायः विरंची के साक्षात् तनय कहे गए हैं। पुराणों की ऐसी कल्पनाएं त्याज्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सनत्कुमार कोई अनुभवी मननशील हुए हैं। किसी नवीन विद्या के बड़े भारी आविष्कर्त्ता थे। धीरे २ ये परमसिद्ध, सदा एक ही रूप में विद्यमान मान लिए गए इनमें से तीन भाइयों के नाम अभीतक तर्पण की पद्धति में आते हैं और मनुष्य मानकर इनका तर्पण होता है यथा—

मनुष्यांस्तर्पयेद् भक्त्या ऋषिपुत्रानृषींस्तथा। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा। सर्वेते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥इत्यादि।

पूज्यो ! मेरे जनपद में १ स्तेन २ कदर्य ३ मद्यप ४ अनाहिताग्नि और ५ अविद्वान् नहीं हैं और षष्ठ स्वैरी (व्यभिचारी) नहीं हैं तो स्वैरिणी (व्यभिचारिणी कुट्टिनी) कहां से होंगी। हे पूज्यो ! मैं यज्ञ करनेहारा हूं आप यहां निवास करो। एक २ ऋत्विज् को जितना दूंगा उतना आप को भी दूंगा। राजा के इस वचन को सुन वे सब बोले कि पुरुष जिस प्रयोजन के लिये आवे वही उसे देना उचित हैं। आप इस समय वैश्वानर आत्मा को जानते हैं। वही हमको देवें। राजा ने कहा कि मैं प्रातः काल कहूंगा। वे सब भी समित्पाणि हो पूर्वाह्न में राजा के समीप पहुंचे। महाराज ने यथोचित रूप से वैश्वानर आत्मा के विषय में उपदेश दिया है, मैं यहां अतिसंक्षेप से उस संवाद को दिखलाता हूं।

अश्वपति—हे औपमन्यव ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

औपमन्यव=राजन् ! मैं द्युलोक की ही उपासना करता हूं।

अश्वपति—यह तो आत्मा का मूर्धामात्र है। हे सत्ययज्ञ ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

सत्ययज्ञ—राजन् ! मैं आदित्य की उपासना करता हूं।

अश्वपति—यह तो आत्मा का चक्षुमात्र है। हे इन्द्रद्युम्न! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

इन्द्रद्युम्न—राजन् ! मैं वायु की ही उपासना करता हूं।

अश्वपति—यह तो आत्मा का प्राणमात्र है। हे जन ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

जन—राजन् ! मैं आकाश की उपासना करता हूं !

अश्वपति—यह तो आत्मा का मध्य देह मात्र है। हे बुडिल ! आप किस आत्मा की उपासना करत हैं ?

बुडिल—राजन् ! मैं जल की ही उपासना करता हूं।

अश्वपति—यह तो आत्मा का वस्तिमात्र है। हे उद्दालक ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ?

उद्दालक—राजन् ! मैं पृथिवी की उपासना करता हूं।

अश्वपति—यह आत्मा का चरणमात्र है।

राजा ने इस प्रकार उनकी उपासनाओं का खण्डन करके कहा कि आप अभी तक एक एक अवयव मात्र की उपासना में तत्पर हैं यह उचित नहीं। द्युलोक से लेकर पृथिवी तक एक ही वैश्वानर है। हां, एक एक अवयव की उपासना से भी आप कल्याणभागी हैं। यदि सम्पूर्ण वैश्वानर को जानें तो बहुत फल पावेंगे। राजा के उपदेश का मुख्य तात्पर्य यह है कि प्रथम ऐ महाश्रोत्रियो ! इस अपने शरीर को ही वैश्वानर समझिये। इस देह में शिर द्युलोक, नयन आदित्य, प्राण वायु, मध्यदेह आकाश, मूत्रस्थान जल और पैर पृथिवी है। छाती ही वेदि है। लोम ही कुश है। हृदय ही गार्हपत्य

अग्नि है। मन ही अन्वाहार्य्यपचन अग्नि है। मुख ही आहवनीय अग्नि है। ऐ श्रोत्रियो ! प्रथम इसके महत्त्व को जानिए पश्चात् ब्राह्य जगत् की गवेषणा कीजिये तब ही पूर्ण कल्याण भागी होवेंगे। निःसन्देह जो कोई अपने आत्मा के महत्त्व को नहीं जानता है वही वास्तव में अधम है इसके पश्चात् इस पृथिवी पर के पदार्थों का अच्छे प्रकार अध्ययन करे।

शोक की बात है कि अज्ञानी जन स्वर्ग की बड़ी बड़ी लम्बी लम्बी बातें करेंगे परन्तु जिस पृथिवी पर वे रहते हैं वहां की सच्ची सच्ची बात जानने के लिए उद्योग न करेंगे। ये पृथिवी, हिमालय पर्वत, समुद्र, वनस्पति, पशु, पक्षी, आदि सहस्रों पदार्थों को वास्तव रूप में नहीं जानते। ऐ मनुष्यो ! प्रथम पैर का ही बोध उत्पन्न करो, धीरे धीरे आकाशस्थ मेघ, वायु, विद्युत्, प्रकाश, चन्द्र, सूर्य्य. आदि पदार्थों के तत्त्व सीखो ! जब समूह के विज्ञान में गवेषणा करोगे तब तुम ब्रह्म की विभूति के अति क्षुद्र अधिकारी माने जाओगे।

इस आख्यायिका से सिद्ध है कि इस अनन्त ब्रह्माण्ड महा विराट् रूप में से जो जितना जानेगा वह मानो उतना ब्रह्म के ही रूप को जानेगा। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बोध कदापि नहीं हो सकता सूर्य्य से लेकर पृथिवी तक प्रथम जानने का प्रयत्न करें। पुनः ऐसे ऐसे सूर्य्य सहस्रशः, पृथिवी सहस्रशः हैं जहां तक हो उन्हें भी जाने। यहां ध्यान रखना चाहिये कि उपासना शब्द का अर्थ अध्ययन है जब ऐसे ऐसे महाशाल महाश्रोत्रिय आपके पूर्वज एक एक पदार्थ के विज्ञान में अपना संपूर्ण जीवन लगा देते थे तौ भी सन्तुष्ट न होकर पुनः जिज्ञासा किया करते थे तब क्या आप इस परमोद्योग से सदा के लिए वंचित ही रहेंगे ? आपने अभी क्या जाना है। अतः सदा जिज्ञासु बनो।

वेदान्त के कर्त्ता वादरायण, मीमांसा-कर्त्ता जैमिनि ये दोनों **"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। अथातो धर्मजिज्ञासा।"** ऐसा प्रतिज्ञासूत्र लिखते हैं वे यह नहीं कहते हैं कि हम ब्रह्म और धर्म को जानते हैं। वे ब्रह्म और धर्म की जिज्ञासा में कितने दिन लगे होंगे और कितने दिनों के मनन के पश्चात् ग्रन्थ लिखकर तैयार किये होंगे। अतः ऐ भारत वासियो ! अपने पूर्वजों के महान् कार्य पर दृष्टि डालो और जिज्ञासु बनो।

वेद में जिज्ञासा।

स्वयं आम्नाय (वेद) जिज्ञासा की ओर मनुष्य को भूयोभूयः ले जाते हैं। मनुष्य की प्रतिभा तीक्ष्ण हो, सूक्ष्माति सूक्ष्म वस्तु में इसकी अप्रतिहतगति हो और आत्मचेष्टा की परम काष्ठा तक पहुंचे इस कारण श्रुतियां परमहितकारिणी होके मनुष्य को इस गवेषणा की ओर ले जाती हैं।

एक स्थान में वेद कहते हैं कि वह विश्वकर्म्मा परमात्मा किस आधार पर खड़ा होकर और किस आरम्भिक पदार्थ से इस जगत् को बनाता है। यथा—

१—किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन् महिना विश्वचक्षाः॥ ऋ० १०।८१।२॥

जैसे लोक में देखा जाता है कि कुम्भकार किसी स्थान पर बैठ मृत्तिका ले चाक के ऊपर यथाभिमत घट और विहगादि की मूर्तियां बनाया करता है वैसे ही क्या ईश्वर भी कहीं आसन लगा, जगत् बनाने को सामग्री ले सूर्य्य चन्द्र पृथिवी प्रभृति अनन्त सृष्टि रचा करता है ? इसी विषय को प्रश्न और उत्तर रूप से कहते हैं (स्वित्) वितर्क अर्थात् इस ऋचा के द्रष्टा ऋषि वितर्क करते हैं कि (अधिष्ठानम्+किम्+आसीत्) पृथिवी से लेके द्युलोक तक सृजन कहते हुए परमात्मा का बैठने का स्थान कौन था ? क्योंकि लोक में निरधिष्ठान हो के कोई भी कुछ नहीं करता अतः ईश्वर का भी कोई अधिष्ठान होना उचित है सो वह स्थान कौन है ? जहां बैठ के जगत् रचता है। (स्वित्+आरम्भणम्+कतमत्+आसीत्) पुनः वितर्क करते हैं कि आरम्भ करने की सामग्री क्या थी (कथा) क्रिया भी किस प्रकार की थी अर्थात् निमित्त कारण कैसा था? यतः जिस काल में(भूमिम् द्याम्)भूमि द्युलोक को बनाता हुआ (विश्वकर्म्मा) सकल सृष्टि-कर्त्ता (विश्वचक्षाः) सर्व-द्रष्टा परमात्मा (महिना) अपने महिमा से (द्याम्+भूमिम्) द्युलोक और भूमि को (वि) विशेष रूप से (और्णोत्) आच्छादित अर्थात् बना रहा था उस समय उसकी बैठक और सामग्री कौन सी थी ? **विश्वकर्म्मा**= विश्वकर्त्ता=सबके बनाने हारा। विश्वचक्षाः=विश्व=सब। चक्षा=देखनेहारा। और्णोत्=ऊर्णु ञ् आच्छादने।

वहां ही पुनः कहते हैं कि वह कौन सा वन और वृक्ष है जिसको काट कर यह संसाररूप भवन बनाता है ? हे मनीषि पुरुषो ! यह भी विश्वकर्म्मा से पूछो कि वह इन समस्त भुवनों को पकड़े हुए किस पर खड़ा है। यथा—

२ किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ ऋ० १०।८१।४॥

(स्वित्) द्रष्टा ऋषि इस ऋचा के द्वारा वितर्क करते हैं (किम्+वनम्) वह कौन वन है ? (कः+उ+सः वृक्षः) वह कौन वृक्ष है ? (यतः+द्यावापृथिवी) जिस वन और वृक्ष से विश्वकर्म्मा ने द्युलोक और पृथिवी को (निष्टतक्षुः) काटकर अलंकृत किया है (मनीषिणः) हे मनीषी विद्वानों। (मनसा+तत्+इत्+उ) मन से पर्य्यालोचना करके उनको भी (पृच्छत) पूछिये। (भुवनानि+धारयन्)सम्पूर्ण भुवनों को पकड़े हुए वह विश्वकर्म्मा (यद्+अधि+अतिष्ठत्) जिसके ऊपर खड़ा रहता है अर्थात् इस जगत् को पकड़ कर वह किस आधार पर खड़ा रहता है। ऐ विद्वानों ! इस बात को भी तो कभी पूछो॥

तीसरी जगह कहते हैं कि आश्चर्य की बात है इसको कौन जानता है कौन कह सकता है कि ये विविध सृष्टियां कहां से आईं सब ही पीछे उत्पन्न हुए हैं। इसका कारण कौन जानता है कि वह सृष्टि कहां से आईं यथा—

३ को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ ऋ० १०।१२९।६॥

(कः+अद्धा+वेद) कौन इसको निश्चय रूप से जानता है (कः+इह+प्र+वोचत्) कौन

यहां इसका व्याख्यान कर सकता है (कुतः+आजाता) यह सृष्टि कहां से आ गई (कुतः+इयम्+विसृष्टिः) कहां से ये त्रिविध प्रकार की सृष्टियां बनीं ? (देवाः) विद्वद्गण वा सूर्यादि देव सब ही (अस्य+विसर्जनेन+अर्वाग्) इस सृष्टि के बनने के पश्चात् हुए हैं (अथ+कः+वेद+यतः+आ+बभूव) तब कौन जानता है कि यह सृष्टि कहां से उत्पन्न हुई है ?

सूर्य को अस्त होते देख कहते हैं कि यह सूर्य कहां चला जाता है । इसके किरण अब किस लोक को प्रकाशित करते होंगे । यथा—

४—क्वेदानीं सूर्य्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्याततान ॥ ऋ० १।३५।७ ।

अब सूर्य कहां है ? इसे कौन जानता है ? किस द्युलोक में इसके किरण अब फैल रहे हैं ।

यह गौ कृष्णा है किन्तु इसका दूध श्वेत क्यों ? यथा—

५—सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥ ऋ० १।६२।९ ।

(स्वपस्यमानः) सुन्दर कर्म्म करता हुआ (सुदंसाः) और सदा शोभन कर्म्म करनेहारा (शवसा+सूनुः) बल का पुत्र जो यह इन्द्र=जीवात्मा है (सनेमि+सख्यम्) वह प्राचीन मित्रता (दाधार) रखता है । हे इन्द्र ! आप (आमासु+चित्) अपरिपक्व गौवों के (अन्तः) भीतर (पक्वम+दधिषे) परिपक्व दूध को स्थापित करते हैं (कृष्णासु) काली और (रोहिणीषु) लाल गौवों में तद्विरुद्ध (रुशद्+पयः) देदीप्यमान श्वेत दूध बनाते हैं ।

यह पृथिवी और यह द्युलोक है इन दोनों में कौन ऊपर और कौन नीचे इस प्रकार के कोई ऋषि वेद द्वारा प्रश्न करते हैं यथा—

६—कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः कोवेद ।

(आयोः) इस पृथिवी और द्युलोक में से (कतरा+पूर्वा) कौन पहिली या ऊपर है (कतरा+परा) और कौन पिछली या नीचे है (कथा+जाते) वे दोनों कैसे उत्पन्न हुए (कवयः+कः+वेद) हे कविगण! इस को कौन जानता है ।

कोई ऋषि पूछते हैं कि जो नक्षत्र बहुत ऊंचे रात्रि में दीखते हैं वे दिन में कहां चले जाते हैं । यथा—

७—अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा ।
नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ॥ ऋ० १।२४।१०॥

(अमी) ये (ये) जो (ऋक्षा) नक्षत्रगण (उच्चाः निहितासः) ऊंचे स्थापित (नक्तम्+ददृश्रे) रात्रि में दीखते हैं (दिवा) दिन में (कुह+चित्+ईयुः) कहां चले जाते हैं ?

वे स्त्रियां हैं किन्तु पुरुष कहते हैं आंख वाला देखता है अन्धा नहीं देखता । जो पुत्र विद्वान् है वह इसको जानता है । जो उनको जानता है वह पिता का भी पिता होता है । यथा—

८—स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ ऋ० १।१६४।१६॥

(सतीः स्त्रियः) जो उत्तम स्त्रियां हैं अर्थात् सर्वत्र विस्तृत हो के लोगों को मोहित कर रही हैं (ताम्+उ+पुंस+आहुः) उन्हीं को कोई कोई पुरुष कहते हैं (अक्षण्वान्+पश्यत्) ज्ञान दृष्टि वाला देखता है (अन्धः) अन्ध पुरुष (न+वि+चेतत्) नहीं जानता । (यः+कविः+पुत्रः) जो विद्वान् पुत्र है (सः ईम्) वही (आचिकेत) सब प्रकार से जानता है (यः+ता+विजानात्) जो उनको जानता है (सः+पितुः+पिता+असत्) वह पिता का पिता होता है ।

इतना ही नहीं किन्तु कई एक स्थानों में द्रष्टा ऋषि वेद द्वारा कहते हैं कि मैं अज्ञानी हूं नहीं जानता, पवित्र मन से पूछता हूं । यथा—

९—पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्ततन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ऋ० १।१६४।५॥

(पाकः) पक्तव्य अर्थात् परिपक्वमति मैं (मनसा+अविजानन्) सुसंस्कृत समाहित मन से भी उस के गहन तत्त्व को न जानता हुआ (पृच्छामि) पूछता हूं क्योंकि (एना+पदानि) ये अतिगहन और सन्देहास्पदतत्त्व (देवानाम्) परमविद्वान् पुरुषों के समीप भी (निहिता) छिपे हुए हैं ।

दीर्घतमा ऋषि कहते हैं कि मैं अज्ञानी हूं मैं विद्वान् नहीं हूं । मैं विद्वानों से पूछता हूं । इन षट् संसारों को किसने एक कर रखा है यथा—

१०—अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ऋ० १।१६४।६॥

(अचिकित्वान्) देवतत्त्व को न जानता हुआ मैं (चिकितुषः+चित्) परमार्थ तत्त्व के जानने हारे (कवीन्+अत्र) कवियों को यहां (पृच्छामि) पूछता हूं (न+विद्वान्) मैं विद्वान् नहीं हूं (विद्मने) जानने के लिए पूछता हूं (यः) जो परमेश्वर (इमान्+षट्+रजांसि) इन छः लोकों को (वि+तस्तम्भ) अच्छे प्रकार अपने नियमों में बांधे हुए है (अजस्य+रूपे) उस परमात्मा अजन्मा के स्वरूप में (एकम्) एक ही (किमपि स्वित्) कुछ है ।

सौचीक ऋषि कहते हैं कि मैंने पाप किया है । मैं नहीं जानता कि इसका कौनसा प्रायश्चित्त होगा । यथा—

११—किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् । ऋ० १०।७९।६॥

मूर्धावान् आङ्गिरस कहते हैं—हे पितरो ! हे कविगणो ! मैं अज्ञानी होकर पूछता हूं । आप को क्लेश पहुंचाने के लिये नहीं, किन्तु विज्ञान के लिये मैं जिज्ञासा कर रहा हूं । अग्नि कितने हैं ? सूर्य कितने हैं ? उषाएं कितनी हैं ? जल वा अन्तरिक्ष व्यापक पदार्थ कितने प्रकार के हैं ।

१२—कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥ ऋ० १०।८८।१८॥

मैं आपको कितने उदाहरण दिखलाऊं ऋषि गणों में से एक ही नहीं किन्तु प्रायः सब ही जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हैं। परमात्मा ने मानवजाति में जो मननशक्ति दी है उसी ने इस को प्रेरणा करके अद्भुत-अद्भुत बातें खोज करवाई हैं। खोज हो रहे हैं और होते रहेंगे। ऐ विद्वद्वर्गो ! गवेषणा ही ने मानवजाति को पशुदशा से मनुष्यदशा तक पहुंचाया है।

॥ इति जिज्ञासाध्यायः ॥

जिज्ञास्याऽध्याय २

जिस पदार्थ की जिज्ञासा की जाती है। उसको जिज्ञास्य कहते हैं। अब प्रथम किसकी जिज्ञासा करनी चाहिये ? इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि प्रथम सबसे परमोपयोगी रात्रिन्दिवा कार्य में आनेवाले जो २ पदार्थ हैं। उनको अच्छे प्रकार जानो। जैसे जल। किन-किन-पदार्थों से जल बना हुआ है ? पृथिवी से ऊपर जल कैसे चढ़ता वा वाष्प होता है ? और वाष्प होके मेघ रूप में और मेघरूप से वर्षारूप में कैसे आता है ? पुनः कभी २ देखते हैं कि वही जल छोटे २ श्वेत उपल पत्थर—बनौरी बन २ कर मेघ से गिरता है। इसका क्या भेद है ?इसी प्रकार कभी कुहक(कुहेसा,कुहरा)लोगों की दृष्टि घेर लेता है। कभी रात्रि में हिम इतनी गिरती है कि समस्त वृक्ष, लताएं, गेहूं, जौ आदि फसलें सूख जातीं हैं। इसका क्या कारण है ? जब कोई डुब्बा किसी कूएं वा नदी में डूबता है और बीस २ हाथ जलके नीचे चला जाता है। तब इस डुब्बे को जल का बोझा क्यों नहीं प्रतीत होता। कोई वस्तु पानी में तैर जाती और कोई डूब जाती है। इसका क्या कारण इत्यादि अनेक वार्त्ताएं प्रथम जल के सम्बन्ध में जानो। जो लोग कहते हैं कि जल एक स्वतः स्वतन्त्र तत्त्व है वे नहीं जानते। ऐसे ही एक इन्द्र नामका देव मेघ वर्षाया करता है। मेघ के ऊपर जो कभी २ धनुष सा प्रतीत होता है। वह इन्द्रधनुष है। मेघ में जो महागर्जन होता है। वह इन्द्र गर्जता है। जो बिजुली चमकती है वह रुद्राणी है। जो बिजुली गिरती है,वह बलि को मारने के लिये इन्द्र वज्रफेंका करता है। मिट्टी के महादेव पूजने से वर्षा होती है वा, जप, तप, करने से वा मेंडकों को मेघ देवता के नाम पर मार के चढ़ाने से वृष्टि होती है। इत्यादि जो सहस्रों बातें देश में फैली हुई हैं, वे सब ही मिथ्या हैं या सत्य हैं। उनकी परीक्षा करो। ऐ प्यारे ! खोजो मेघ होने का यथार्थ कारण क्या है। इसके सम्बन्ध में आधुनिक बड़े विज्ञान शास्त्र पढ़ो।

जल के पश्चात् वायु परम आवश्यक पदार्थ है। वायु भी स्वतन्त्र तत्त्व नहीं। कई एक पदार्थ मिलकर वायु बना हुआ है। हम सब सदा देखा करते हैं कि ग्रीष्म तथा कभी २ वर्षा ऋतु में वायु बहुत वेग से चलता है। हेमन्त और शिशिर में मन्द पड़ जाता है। किसी २ देश में पूर्वीय और किसी २ में पश्चिमीय वायु सदा चला करता है। समुद्र का वायु कुछ विलक्षण होता है। इन सब का क्या कारण ? वायु को आंख से नहीं देखते किन्तु जब वेग से बहने लगता है तो बड़े २ वृक्ष और

मकान गिर पड़ते हैं। इस में ऐसी शक्ति कहां से आती है? वायु में गुरुत्व है या नहीं? हर एक आदमी के ऊपर वायु का बोझा कितना रहता है? बोझा रहने पर भी हम लोगों को बोध क्यों नहीं होता? इस आश्चर्य बात को क्या आप जानना नहीं चाहते। पृथिवी से ऊपर कितनी दूर तक यह वायु है। वायु के न रहने पर क्या हम क्षणमात्र भी जी सकते हैं?

इसके द्वारा शब्द कैसे दूर २ फलते हैं। इस के बिना अग्नि क्यों नहीं जलता शब्द क्यों नहीं होता। यदि एक कोठरी से किसी यन्त्र के द्वारा वायु निकाल दिया जाय तो वहां न तो ध्वनि हो सकती और न अग्नि जलता, इसका क्या कारण इत्यादि वायु में भगवान् की लीला का अन्वेषण कीजिये। ज्यों २ वायु सम्बन्धी विज्ञान में निपुण होते जायंगे त्यों २ परमात्मा में परम प्रीति होती जायगी। जो कोई कहते हैं कि वायु एक चेतन देव है। वह कभी २ मनुष्य का रूप धर स्त्रियों पर मोहित हो उनके पातिव्रत को भग्न करता है। जैसे केसरी की स्त्री अंजना और वायु की कथा है। यह वायु ४९ भाई हैं। इत्यादि मिथ्या २ कथाएं सुना २ कर जगत् को भ्रम-जाल में फंसा रहे हैं, वे स्वार्थान्ध अज्ञानी मनुष्यजाति के महाशत्रु हैं। जिज्ञासुओ! जैसे जल एक जड़ वस्तु है वैसे ही यह पवन भी जड़ है, यह कभी मनुष्य का रूप धारण नहीं कर सकता। वायु विज्ञान पढ़ो आपको सब कुछ का ज्ञान होगा।

इसके पश्चात् जिस पृथिवी के ऊपर आप निवास करते हैं उसको अच्छी तरह से जानें। परमात्मा की अद्‌भुत् लीलाएं इस पृथिवी में देखेंगे। यद्यपि उसकी विभूतियां सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि में भी बहुत ही आश्चर्य जनक हैं, तथापि वे सब दूर हैं। सुगमता से आप उन्हें नहीं जान सकते। पृथिवी सम्बन्धी विद्याएं बहुत सरलता से जान सकते हैं। इसकी लम्बाई, चौड़ाई मोटाई कितनी है। यह गोल या चटाई के समान चिपटी है। सूर्य की चारों तरफ करीब ३६५ दिन में कैसे घूम आती है। इसके घूमने से दिन रात्रि कैसे बनजाते हैं। ऋतु कैसे परिवर्त्तन होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायण क्योंकर होते है। अथवा यह घूमती है या नहीं। यदि नहीं घूमती तो किस आधार पर है यह नीचे या ऊपर जा रही है। आप देखते हैं कि कहीं पृथिवी के भीतर से अग्नि और कहीं गर्म जल निकल रहा है। कभी भूकम्प होता। कभी समुद्र का पानी हटकर एक द्वीप बन जाता। इसके विपरीत कहीं सूखी जमीन समुद्र बन जाती। कहीं सदा रात्रि के समान ही रहता। कहीं ६ कहीं ५ कहीं ४ कहीं ३ कहीं २ कहीं १ ऋतु होती है। इन सब का क्या कारण? पृथिवी के ऊपर विचित्र घटनाओं को देखकर भी क्या आपके हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती? सूर्य पूर्व से पश्चिम आते हुये दीखता है क्या यह सत्य है क्या कभी आपके हृदय में ऐसा प्रश्न उठता है? जब आप पृथिवी सम्बन्धी विद्याएं पढ़ेंगे तो आपको विस्पष्ट मालूम होगा कि सूर्य पूर्व से पश्चिम को नहीं जाता। जैसे नौकास्थ पुरुष को अपने विपरीत वृक्ष आदि चलते हुए प्रतीत होते हैं। वैसे ही पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करती हुई पृथिवी के ऊपर स्थित मनुष्यों को सारे ग्रह पश्चिम की ओर आते हुए प्रतीत होते हैं। पुनः यह भूमि जल से कितनी घिरी हुई है। समुद्र किस रूप से इसके ऊपर स्थित हैं।

समुद्रों के कारण भूमि पर क्या २ परिवर्त्तन होता है। कैसे समुद्र से वाष्प चलकर आकाश में मेघ बन वर्षा होने लगती है। ज्वारभाटा क्योंकर हुआ करता है। इत्यादि सहस्रशः बातें पृथिवी के

सम्बन्ध में अध्ययन कीजिये। यह पृथिवी पहले कैसे बनी फिर धीरे २ इसके ऊपर जीवजन्तु कैसे हो गये। मनुष्य कहां से आ गये। पर्वत,नदियां,समुद्र, कंसे बन गये? क्या इत्यादि बातों के जानने के लिये आप के मन में उत्कण्ठा नहीं होती? यही तो ईश्वर की परम विभूति है। भूगोल, भूगर्भ विद्या, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, प्राणियों के क्रमाभ्युदयशास्त्र इत्यादि विद्याओं के अध्ययन से परमात्मा के अकथनीय कौशल का किञ्चित् २ बोध होने लगता है।

इस प्रकार प्रथम पृथिवीस्थ पदार्थों की पूरी जिज्ञासा कीजिये। तदनन्तर ऊपर दृष्टि दीजिये। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की ओर दृष्टि दीजिये। जिन नक्षत्रों को यहां से बहुत ही छोटे २ टिमटिमाते हुए देखते हैं। क्या सचमुच उतने ही छोटे या बहुत ही बड़े हैं? इस पृथिवी से वे कितनी दूरी पर हैं? वे हमारे ऊपर क्यों नहीं गिर पड़ते? पृथिवी से सूर्य चन्द्र कितने दूर व कितने लम्बे चौड़े हैं, वे हैं क्या? ऐ मनुष्यो! इन बातों को जानिये। मिथ्या २ बातों में क्योंकर फंसे हुए रहते हैं। आप प्रथम उनके विषय में प्रश्न कीजिये। जानिये और वारम्वार विचारिये। जिन को आंखों वा अन्यान्य इन्द्रियों से वा किसी दूरनिरीक्षण और सूक्ष्म वस्तुनिरीक्षण यंत्रों से देखते वा अनुभव करते हैं। आप अपनी चारों तरफ स्थित वस्तुओं को जानें। परन्तु शोक की बात है कि प्रथम ही आप उन विषयों को पूछना वा जानना चाहते हैं जिनको आप देख नहीं सकते। जैसे वे बतला दिए जाएंगे वैसे ही आपको मान लेने पड़ेंगे, सोचिये तो वैसे प्रश्नों से आप को अभी क्या प्रयोजन? आप जानना चाहते हैं कि शरीर को छोड़ यह जीव कहां जाता कैसे जाता? पृथिवी पर कितने दिन रहता। पुनः कहां जाता। कोई इसको साथ ले जाता वा एकाकी ही यात्रा करता है। देह छोड़ते ही क्या दूसरा देह पालता या कहीं जाकर स्वर्ग वा नरक में वास करता रहता है। यह जीव कैसा है। कितना छोटा, कितना वड़ा, कितना मोटा इत्यादि अज्ञेय वस्तु को आप जानना चाहते हैं। किन्तु इस जीव में कितनी शक्ति है। क्योंकर कोई बुद्धिमान् और कोई मूर्ख बना रहता हैं। क्योंकर बुद्धिमानों ने ऐसी २ विद्याएं निकालीं, कैसे इस जीवात्मा से रेल, तार, विमान इत्यादि सहस्रशः विद्याएं निकलीं, कैसे उत्तम २ काव्य शास्त्र बन गए इत्यादि प्रत्यक्ष वस्तुओं की जिज्ञासा नहीं करते। आप सोचें तो किसी ने आप से कह दिया कि जीवात्मा अणु है वा विभु है वा मध्यम परिमाण है। आप अब क्या मानेंगे। आंख से देखते नहीं। पदार्थ ज्ञान बिना तर्क के ठीक भी नहीं हो सकता। इस अवस्था में केवल विश्वास करना ही पड़ेगा। अब ऐसे २ प्रश्नों से क्या प्रयोजन? पुनः किसी ने कहा कि यह जीवात्मा शरीर को छोड़कर एक ही दिन में चार लाख कोश दूर यमपुरी में पहुंच जाता है, दूसरे ने कहा कि नहीं। यह शरीर को छोड़ प्रथम दिन बीस हजार कोश चलता है। दूसरे दिन चालीस हजार कोश, तीसरे दिन साठ हजार कोश इस प्रकार दश दिन चलकर यम पुरी में जा पहुंचता है। किसी ने कहा कि यह सब झूठी बात है। आत्मा न कहीं जाता न आता। यहां ही रहता है। किसी शरीर में प्रवेश कर जाता इत्यादि। तीसरे ने आके कहा कि यह भी मिथ्या है। आत्मा कोई वस्तु ही भिन्न नहीं है। यह भ्रम मात्र है। ब्रह्म ही जीव है। यह भी कथन मात्र है। न मैं हूं न तू है। सारी माया है। माया क्या है? अरे माया भी कोई वस्तु नहीं। किसी ने कहा कि ये सब पागल हैं। जीव एक शरीर से पृथक् वस्तु है। परन्तु हम नहीं कह सकते

हैं कि वह कैसा है। अब आप विचार करें कि जहां ऐसी अंधेर लीलाएं हैं, वहां आप क्या जान सकते हैं ? हां, मूर्ख, मंदमति, पुरुषों के लिये ऐसे ही विषय रोचक होते हैं। ऐ मेरे धार्मिक पुरुषों ! प्रथम आप प्रत्यक्ष पदार्थों की जिज्ञासा करें अप्रत्यक्ष की ओर न जाएं। जब देश में विद्या नष्ट हो जाती है पाखण्डी, धूर्त, स्वार्थी उत्पन्न होते हैं तब वे मूर्खों को फंसाने के लिये अनेक जाल बनाते हैं। इस लिये आप कभी ऐसी बातों की ओर न जायं जिन को आप देखते नहीं।

पदार्थ ज्ञान की परमावश्यकता

चारों वेद, छहों अङ्ग, छहों उपाङ्ग, धर्मशास्त्र तथा १८अष्टादश पुराण इत्यादि २ सब शास्त्र पदार्थ ज्ञान के अधीन हैं। जब तक आप को पूर्णरीति से पदार्थों का परिचय नहीं होता तब तक न लौकिक और न पारलौकिक ही कार्य यथाविधि निष्पन्न होंगे। बात २ में आप ठगे जायंगे। वैदिक यज्ञ काल में कुछ उत्तर प्रत्युत्तर होते हैं उनके पदार्थज्ञान न होने से वैदिक यज्ञ ही व्यर्थ है जैसे—

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्।
कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ यजुर्वेद २३ ५९ ॥

(अस्य भुवनस्य नाभिं कः वेद) इस संसार के नाभि अर्थात् बन्धनस्थान आदिकारण और परस्पराश्रयाश्रयिभाव को कौन जानता है ? (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्) द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक इन तीनों लोकों को कौन जानता है ? (बृहतः सूर्यस्य जनित्रं कः वेद) इस महान् सूर्य के जन्म को कौन जानता है ? (यतोजाः चन्द्रमसं कः वेद) जहां से चन्द्र उत्पन्न होता है। अर्थात् शुक्लपक्ष में बढ़ता और कृष्णपक्ष में घटता कैसे है इसको कौन जानता ? यहां चार प्रश्न हैं। इनके समाधान में कहा जाता है कि मैं जानता हूं। अब आप बतावें कि कोई मूर्ख या किंचित् पढ़ा हुआ अथवा एक २ शास्त्र का ज्ञाता कभी भी इन चारों का यथाविधि यथोचित समाधान कर सकता है ? मैं छोटे से अन्तिम प्रश्न पर विचार करता हूं तो सारे सम्प्रदायी पुस्तकों में इसका समाधान अशुद्ध पाता हूं। चन्द्रमा क्यों घटता क्यों बढ़ता। उसकी उत्पत्ति कैसे हुई इस पर नाना विप्रतिपत्तियां (परस्पर विरुद्धवचन) देखता हूं। कोई कहता है कि छः दिनों में ही यह सम्पूर्ण विश्व बन गया कोई कहता है कि समुद्र से या अत्रि की दृष्टि से चन्द्र उत्पन्न हुआ है। देवता और पितर दोनों दल बारीबारी चन्द्रस्थ अमृत पीते हैं। इस हेतु यह घटता बढ़ता रहता है। कहिये यही चन्द्रोत्पत्ति का ज्ञान है ? प्यारे मित्रो ! इस प्रश्न के उत्तर के लिये क्या २ जानना चाहिये। शास्त्र पढ़कर देखो अतः तुम यदि वेदों की रक्षा करना चाहते हो तो पहले पदार्थविज्ञान सम्बन्धीं शास्त्रों को अच्छे प्रकार पढ़ो। उन चारों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है—

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ यजुः २३।६०॥

१—मैं इस संसार के नाभि को जानता हूं। २—मैं द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष को जानता हूं। ३—मैं महान् सूर्य का जन्म जानता हूं। ४—मैं चन्द्रमा को जानता हूं जहां से वह उत्पन्न होता है। वेद भगवान् का यह उत्तर जतला रहा है कि ऐ मनुष्यो ! प्रथम तुम पदार्थतत्त्ववित् बनो तब वैदिक

कर्मों में प्रवृत्त होवो। इसी प्रकार नैयायिक तर्क क्या करेंगे जब उन्हें पदार्थज्ञान ही पूरा पूरा नहीं है। पदार्थज्ञान के ऊपर ही तर्क भी आश्रित है। मान लो कि कोई कहता है कि पृथिवी तीक्ष्ण वेग से लट्टू के समान घूम रही है। अब इस पर नैयायिक यदि कहें कि नहीं। आंख से पृथिवी को घूमती हुई नहीं देखते अतः आपका कथन मिथ्या है तो क्या नैयायिक का इतना कहना पर्याप्त होगा ? नैयायिकों के उस कथन को वैज्ञानिक पुरुष अति तुच्छ दृष्टि से देखेंगे और जैसे बालक के वचन पर विद्वान् हंसता है वैसे ही हंस देवेंगे। इसी प्रकार आजकल के वैशेषिक और नैयायिक मिलकर कहें कि वायु और जल अमिश्रिततत्त्व हैं तो क्या वैज्ञानिक इन के शिर को साबित रहने देंगे ? मुख्यतया आक्सीजन और नैट्रोजन इन दो वाष्पीय पदार्थों से वायु बना हुआ है और आक्सीजन और हैड्रोजन इन दो पदार्थों के रासायनिक संयोग से जल बनता है। इसी प्रकार भारत भूषण प्रातः स्मरणीय श्री भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि प्रभृतिग्रन्थ विरचयिता यदि जीते रहते तो पृथिवी अचला है स्वशक्ति से आकाश में स्थिर है और सूर्य इसकी परिक्रमा करता है ऐसे कहते हुए श्री भास्कराचार्य जी के आगे मोटे मोटे लम्बें लम्बे लट्ठ ले ले कर वैज्ञानिक पुरुष खड़े हो जाते। किमधिकम्। प्यारे आलस्य त्यागो पदार्थज्ञान की ओर आओ। पदार्थज्ञान विज्ञान के ही गुलाम समस्त शास्त्र हैं। हां मैं यह अवश्य जानता हूं कि पुराणों ने आप की बुद्धि के ऊपर ऐसा अटूट ताला लगा दिया है कि उस कोठरी का खुलना दुष्कर हो गया है। कुछ चिन्ता नहीं। यह शास्त्र तीक्ष्ण महान् चुम्बक लोहा है। अथवा इसके निकट सब तरह की कुञ्जियां हैं। यदि तुम चाहोगे तो वह ताला खुल जाएगा।

॥ इति जिज्ञास्याध्यायः ॥

वेद—जिज्ञास्याध्याय ३

पूर्व उदाहरणों से विदित है कि वैदिक समय के ऋषिगण बहुत ही तलाश में लगे हुए थे। ऋषियों के अनुगामी पुरुषों को उचित है कि उनके पथ पर चलें। वे नर पशु हैं जिनका मन प्राकृत घटनाओं से प्रेरित हो खोज में नहीं लगता है। अथवा उस उस विद्या के ज्ञाता के समीप जाके नहीं पूछते हैं। भूकम्प, सूर्यचन्द्र का उपराग, चन्द्र का घटना बढ़ना, इन्द्रधनुष, बवण्डर, पूर्वीय पश्चिमीय वायु और समुद्र का ज्वारभाटा आदि शतशः घटनाएं प्रतिदिन, प्रतिमास प्रतिवर्ष होती ही रहती हैं। इनके सत्य कारण जानने के लिए जो प्रयत्न नहीं करता है वह जगत् में अजागलस्तनवत् व्यर्थ है। यदि कहें कि ये सब अति तुच्छ वातें हैं। पुराणों में इन सब का उत्तर एक एक श्लोक में देके झंझट तै कर दिया गया है। अब हम इन में क्या तलाशी करें ? जिस के सहस्र फणों पर पृथिवी पुष्पवत् स्थापित है वह जब जब करवट लेना चाहता अथवा जब कभी देह सुग-बुगाता तब ही भूकम्प होता, इस में कौनसी विशेषता, और आश्चर्यप्रद बात है जिसकी जिज्ञासा में अपना समय व्यर्थ बितावें। राहु को सूर्य चन्द्र से शत्रुता हो गई है वह कभी कभी बदला लेने के हेतु उन पर धावा करता है। यही ग्रहण है। देवता और पितर बारी बारी चन्द्रस्थ अमृत पिया करते हैं अतः वह घटता बढ़ता है। बलि के

मारने के लिए इन्द्र अपना धनुष तैयार करना । भूत प्रेतों को जब कभी यात्रा करनी होती है तो वात्या अर्थात् बवण्डर पैदा होता है । देवता जब सभा करने को बैठते हैं तब सूर्य और चन्द्र की चारों तरफ परिधि=गोलचक्र बन जाता है वहां बैठकर देवगण विचार करते हैं। समुद्र का पुत्र चन्द्रमा है। अपने पुत्र से मिलने के हेतु समुद्र बढ़ता है। इत्यादि सहस्रशः बातों का समाधान ऐसा बुझा बुझा कर पूर्ण करते हैं कि एक छोटा बच्चा भी समझ जाता है। तब ऐसी ऐसी प्राकृत घटनाओं के विचार में केवल बालक और बालिश जिन्हें कोई काम नहीं, भले ही पड़े रहें। ईश्वर का भजन करना ही मनुष्य जीवन का परम उद्देश व पुरुषार्थ है। परमार्थ की बात कीजिये। माया की बातें क्यों जगत् में फैलाते हो। इस में क्या धरा है? लोग नास्तिक हैं ही इस से अधिक घोर क्रूर हिंसक वन के क्षयकारी हो जायंगे । समाधान—श्रद्धालु विश्वासी जनो! आपने जो कहा है वह आपका दोष नहीं, ऐसे ही कुल और समाज में आपका जन्म हुआ है कि ऊपर की ओर दृष्टि नहीं जाएगी। रेणुकण ऊर्ध्व जा के भी नीचे ही गिरता है। शुक जैसे काक नहीं पढ़ता। भारतवासी इस समय विपरीत दिशाको जा रहे हैं न जाने किस अन्धकारमय कोठरी में ये गिरेंगे। सोचिये। आपने पुराणों पर विश्वास कर लिया तब तो वातुल जैसे बकते हैं। स्वयं भी कभी भृगु जैसे तप कर इन घटनाओं की परीक्षा की है।[१] डार्विन जैसे कभी दो चार दिन भी इसके लिये सर्फ किए हैं।[२] ऋषि भरद्वाज जैसे एक जीवन भी इस महान् कार्य में परायण हुए हैं।[३] जो जन-समुदाय किसी एक के पीछे चल पड़ता है उस का अधःपतन बायबिलीय आदम[४] सा पौराणिक नहुष[५] सा अथवा नियागरा जलप्रताप सा अथवा रात्रि का ज्योतिष[६] का सा होता है। पुराणों के ही पीछे मत चलिये। पृथिवी पर और भी तो कोहनूर जैसे बहुमूल्य शास्त्र हैं और आप के अभ्यन्तर में भी तो विवेक रेडियम स्थापित है। इन के द्वारा भी देखा कीजिये।

नोट-१—ऋषि भृगुजी पांचवार अपने पिता के निकट ब्रह्म विद्या की शिक्षा ले ले कर मनन करते रहे। २—डार्विन साहब ने मनुष्य का विकास पृथिवी पर कैसे हुआ इस के खोज में पृथिवी पर के प्रायः चारों प्रकार के जीवों की पूरी तलाशी लेली और इसी में अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया। ३—भरद्वाज जब परम वृद्ध हो गए तब इन्द्र आके बोले कि ऋषे यदि मैं आप को एक शतायु और दूं तो आप उस से क्या करेंगे। भरद्वाज ने कहा कि विद्या ही खोजता रहूंगा। इन्द्र वर देके चले गये और पुनः विद्या खोजने लगे। इस प्रकार भरद्वाज को तीन शतायु और भी दिये गए वह विद्या ही खोजते रहे। अन्त में आके इन्द्र ने कहा "अनन्ता वै वेदाः" वेद अर्थात् विद्यायें अनन्त हैं कहां तक आप ढूंढेंगे। बहुत प्रशंसनीय जीवन आपका बीता है। अब मुक्ति धाम चलिये। यह आलङ्कारिक कथा है। ऋषियों के परम परिश्रम दिखलाने के लिए अतिशयोक्ति और मनुष्य प्रवृत्त्यर्थ रोचक है। ४—बायबिल में कथा आती है कि एक शैतान के बहकावे से आदम ने निषिद्ध फल खाया इस अपराध के लिये वह स्वर्ग से गिरा दिया गया। ५—इन्द्राणी के फन्दे में पड़के राजा नहुष स्वर्ग से गिर गया और अजगर सांप हो गया। ये दोनों ही काल्पनिक कथायें हैं। ६-किसी किसी रात्रि को आकाश से बहुत सी ज्योतियां गिरती हुई दीखती हैं। इसे कोई तारा टूटना कहते हैं। वास्तव में वह वायु है किसी कारणवश अग्निवत् जल उठता और गिरता हुआ प्रतीत होता है।

विश्वासियो ! जब प्रत्यक्ष पदार्थों का ज्ञान ठीक से पुराणों में वर्णित नहीं है तब अज्ञेय, समाधिगम्य परमात्मा का निरूपण उनमें तथ्य ही है हम कैसे कह सकते हैं ? देखिये ! पुराण कहते हैं कि यह गंगा स्वर्ग से गिरती है किन्तु अब लाखों विज्ञ देख आये हैं कि वह हिमालय के एक झील से वहके निकलती है। वहां ऊपर से इसको गिरती हुई कोई नहीं देखता। फिर क्योंकर ऐसी बात पर विश्वास करें। यदि कोई भी सिद्ध पौराणिक भागीरथी को रुद्र की जटा से वा विष्णु के पैर से निकलती हुई दर्शन करवादे तो सब ही इसको कबूल कर ही लेवेंगे। इनकार करने की कोई भी गुंजाईश न रहेगी। दूसरे कहते हैं कि मगध की कर्मनाशा नदी के ऊपर लटके हुए त्रिशंकु के मुंह से लार गिरता रहता है अतः उस में नहाना पाप है। यहां विचारने की बात है मेघ से गिरते हुए पानी को लोग बराबर देखा करते हैं तब वैसा ही त्रिशंकु का लार गिरता हुआ क्यों नहीं दीखता यदि वह नहीं दीखता तब कर्मनाशा का जल भी न दीख पड़े। शैव कहते हैं कि काशी त्रिशूल पर स्थापित स्वर्णमयी है। इसी हेतु अभीतक मैथिल ब्राह्मण वहां से मिट्टी वा मिट्टी के बर्तन नहीं लाते क्योंकि वहां की मिट्टी सोना है उतना दाम दे नहीं सकते। किन्तु भूगर्भ विद्या के अध्ययन से जाना जाता है कि यह सारी बातें मिथ्या हैं। यदि वहां कुछ भी विश्वनाथ का प्रताप होता तब औरङ्गजेब इनका मन्दिर तुड़वा मसजिद ही कैसे बनाते ? पौराणिक चिरंजीवी मार्कण्डेय, बलि, व्यास, महावीर, विभीषण कहां हैं ? किस पर्वत पर परशुराम तप कर रहे हैं। उनका वह २१ बार क्षत्रियों को अन्त करनेहारा बल कहां है ? प्यारे ! ये सब गप्प हैं। तुम कहते हो कि अभी तक लंकाद्वीप में राक्षसों के साथ विभीषण राज्य कर रहे हैं। अंगरेजों का राज्य वहां नहीं है। भला सोचो तो अयोध्या में अंग्रेज राज्य करते हैं या नहीं ? जब रावणान्तक राम राज्य में ये विराजमान हैं तब रावण राज्य में इनके राज्य का होना असंभव कैसे ? पुराण कहता है कि मुंगेर के एक कुण्ड में जो गरम जल निकलता है उसका कारण वहां सीताजी का स्नान है। परन्तु यदि वैसा होता तब वहां ही खोदकर अंग्रेज कैसे गरम जल निकाल इसको मिथ्या सिद्ध करते। तुम ३३ तैंतीस कोटि देवता पूजते हो। कभी अपने आंखो से किसी देवता को देखा नहीं। विचारशील पुरुषो ! इन मदोन्मत्त कथाओं में पड़कर अपना अप्राप्य जीवन मत जाने दो। आजकल विज्ञान का समय है यदि इसमें पीछे रह जाओगे तो तुम्हारा कहीं भी पता नहीं लगेगा। सोनपुर के कार्तिकी मेले में जैसे अबोध बालक भूल जाते हैं ऐसे तुम भी मनुष्य समाजों से कहीं पृथक् हो जाओगे। पुराणों की बातें मत किया करो, वे बायबिल के शैतान के समान हैं।

जैसे निरपराधी समुद्र के उत्तरतटवासियों को राम के बाणने शोष लिया। विष्णु के चक्र ने दुर्वासा को पतित कर ही छोड़ा वैसा ही पुराण आर्यावर्त को निगले विना न छोड़ेगा, पुराण-महाऽजगर इस भारत विहग के समीप पहुँच गया है अब निगलने की थोड़े ही देरी है। भाईयो ! यदि इस अजगर से अब भी बचना चाहते हो तो विज्ञान की शरण में भाग आओ। त्राण की भी अब आशा है। जयपुर के रामनिवास बाग के फूल, कलकत्ते के अजायबघर के मृत शरीर पंजर, जियालोजिकल गार्डन के समस्त प्राणी, जापान की रंगबिरंगी मछलियां, आफ्रिका के विचित्र पक्षी आपके मन को अपनी ओर आकर्षण नहीं करते? पृथिवी पर घूम घूम कर देखो। चकित हो जाओगे।

मैं कहां तक लिखूं, यदि आपको वेदों, शास्त्रों, तथा अन्यान्य धर्म पुस्तकों में विश्वास है तो उन्हीं ग्रन्थों से कुछ बातें दिखाता हूं कि वे किस-किस वस्तु के वर्णन करने से इतने महत्त्व को पाए हुए हैं। पूर्व में वेदों के अनेक उदाहरण दिखला चुका हूं कि परमात्मा से प्रेरित होकर ऋषिगण कैसी-कैसी बातों की जिज्ञासा करते हैं। ऐ मेरे श्रावको ! सुनो ? महर्षि इन्ही अग्नि वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य, पृथिवी, जल, वृक्ष, वनस्पति, प्रातःकाल, पूर्णिमा, अमावस्या, घोड़े, हाथी, जलचर, थलचर, नभचर, आदिकों के ही तो वर्णन करते हैं। परमात्मा की विभूतियों से वे ऋषिगण इतने मोहित हुए कि सुध बुध भूलकर इनके ही वर्णन करते ठकक गए। मैं दो चार बातें प्रथम यजुर्वेद की कहता हूं—

यजुर्वेद—प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा। मनसे स्वाहा। यजुः २२।२३॥

यहां पर प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, वाक् और मन के लिए कहा गया है। परन्तु ये प्राण अपानादि कौन वस्तु हैं यह आप यदि न जानेंगे तो इस से कौनसा फल प्राप्त करेंगे पुनः—

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा। प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा। उदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहर्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा॥ यजुः। २२।२४॥

यहां सब दिशाओं और विदिशाओं के नाम के पाए जाते हैं। प्राची=पूर्वदिशा। दक्षिण दिशा। प्रतीची=पश्चिमदिशा। उदीची=उत्तरदिशा। ऊर्ध्वा=ऊपर की दिशा और अर्वाची=नीचे की दिशा और इन दिशों की बीचली दिशाएं जो अर्वाची कहाती हैं इन सब के लिये स्वाहा। ज्ञानी पुरुषों ! इन ही वस्तुओं का वैशेषिक और आज कल के बड़े बड़े विद्वान् बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ निरूपण कर रहे हैं। सोचिये तो पूर्व पश्चिम दिशा कहां से और कौन वस्तु हैं। इनका कहां अंत है। ऐसे ख्यालात क्योंकर उत्पन्न होते हैं ? क्या इसके पता लगाने के लिए आपको प्रयत्न नहीं करना चाहिये ? पुनः—

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा। कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा। २२।२५॥

यहां सब प्रकार के जलों के नाम पाए जाते हैं। आप् वार् और उदक ये तीनों नाम तीन प्रकार के जलों के हैं। तिष्ठन्ती=नदियां वा समुद्रादिकों के जल जो खड़े हैं। स्रवन्ती=किसी पर्वत के वा पृथिवी के छिद्र से जो जल स्रवित हो रहा है। स्पन्दमाना=जो धीरे धीरे वह रहा है। कूप्या=कूएं का जल। सूद्या=खाते का जल। धार्य्या=गृह में वा कहीं जमा किया हुआ जल। अर्णव और समुद्र ये दोनों नाम सागर के हैं।

एक ही कण्डिका में सब प्रकार के जलों के नाम आ गए हैं। कहिये आजकल के वैज्ञानिक पुरुष इन्हीं जलों के तो तत्त्वावधान कर रहे हैं जल क्या वस्तु है। क्या आप जानते हैं नैयायिक, वैशेषिक, और सांख्य इसको कौन वस्तु ठहराते और आज कल के वैज्ञानिक क्या कहते हैं। इनके भिन्न भिन्न सिद्धान्त तो पढ़िये। जैसे पिपासित मृग जल की ओर दौड़ता है वैसे ही इस विद्या की ओर दौड़िये। आप समुद्र से डरते हैं क्योंकि समुद्र आप से बहुत दूर है। प्रति साल कई लक्ष नर-नारियां समुद्र को देखे विना ही मर जाते हैं। भारतवर्ष के मरुदेश निवासी प्रायः नदियों का भी दर्शन नहीं करने पाते हैं। कोलम्बस वास्कोडेगामा और मजिल्लां के समान सामुद्रिक यात्रा करके परमात्मा की आश्चर्य विभूतियां देखो। पुनः—

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहा अभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षतेस्वाहा अववर्षते स्वाहा। उग्रं वर्षते स्वाहा। शीघ्रं वर्षते स्वाहा। उद्गृह्णते स्वाहा। उद्गृहीताय स्वाहा। प्रुष्णते स्वाहा। शीकायते स्वाहा। प्रुष्वाभ्यः स्वाहा। ह्रादुनीभ्यः स्वाहा। नीहाराय स्वाहा। यजुः २२।२६॥

यहां सब प्रकार के मेघों का वर्णन है। मेघ कैसे बनता है इसकी कौन-कौन दशाएं होती हैं यहां इन के नाम देखते हैं। सूर्य की गरमी की सहायता से वायु पानी को ऊपर चढ़ाता है। फिर वह धूमसा दीखता है। फिर मेघ अर्थात् बरसने सा हो जाता है तब उस में विद्युत् गर्जन, वर्षण किञ्चित् वर्षण, अधिक वर्षण आदि व्यापार होने लगते हैं। पीछे छोटे-छोटे बूंद होके समाप्त होने लगता है। पुनः इसी जल का एक भेद कभी-कभी जाड़े के महीने में कुहेसा (कुहरा) दीखता है। इसको वेद में नीहार कहते हैं।

चिन्तकजनो! क्या तुम समझते हो कि कैसे समुद्र से वा पृथिवी से जल उठके मेघ बन पृथिवी को पुनः पुनः सिक्त करता रहता है। कभी-कभी मेघ से पानी के छोटे-छोटे पत्थर क्यों कर गिरते हैं। ये उपल कैसे बनते हैं? फाल्गुन, चैत्र, वैशाख में कभी भयंकर रूपसे जलीय पत्थर गिरते हैं जिस से किसानों को बड़ी हानि पहुंचती है। क्या इसका कारण है, कुहेसा क्या पदार्थ और कैसे बनता है, क्या मेघ की दौड़ती हुई काली घटा आप के मन को मोहित नहीं करती? इसके चरित्रों से परिचित होना क्या आप नहीं चाहते। यदि चाहते हैं तो पदार्थ विद्या को ध्यान से पढ़िये। कैसी-कैसी आश्चर्य विभूतियां दीख पड़ेंगी। पुनः—

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा। ऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा। द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा। रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा। फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा। यजुः २२।२८॥

यहां नक्षत्र से लेके ओषधि पर्यन्त के नाम हैं। रात्रि में नक्षत्र क्यों दीखते। वे संख्या में

कितने और कितनी दूर हैं। इन को कौन गिन सकेगा किन्तु आज कल वड़े-बड़े दूरवीन वनाए गए हैं जिन के द्वारा इनके बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। शुक्ल और कृष्णपक्ष क्यों होते। सूर्य और चन्द्र कहां उदय अस्त लेते हैं। चन्द्र तो दिन में भी दृश्य होता परन्तु सूर्य रात्री को कहां चला जाता। फिर वायु जल गरमी और प्रकाश की सहायता से कैसे मूल, शाखा, वनस्पति, पुष्प, फल, और विविध ओषधियां उत्पन्न होती हैं। इनके क्या क्या स्वभाव हैं। प्यारे ! इस एक कण्डिका के तत्त्व जानने के हेतु अनेक विद्याओं की जरूरत है। ज्योतिष शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, भौतिक शास्त्र प्रभृति विद्याओं को जाने विना इनका भेद कैसे भासित होगा। पुनः—

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान्। यजु० २४।२०॥

यहां वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर इन छवों ऋतुओं के नाम हैं। पुनः यहां एक और भी वड़ी विलक्षणता और विद्या की ओर ले जाने वाली वार्ता देखते हैं। वसन्त ऋतु के लिए कपिञ्जल=पौडूकी या कबूतर, ग्रीष्मार्थं कलविंक=चरकपक्षी, वर्षा के लिए तीतर, शरद के लिए बटेर। हेमन्त के लिए ककरनाम के पक्षी, और शिशिर के लिए विककरनाम के पक्षियों को प्राप्त करें। जब तक ऋतु विद्या और पक्षी विद्या का वास्तविक तत्त्व न जानेगा तव तक इसका भेद कैसे मालूम होगा। वसन्त और कपिञ्जल से क्या सम्बन्ध है ? इन पक्षियों का क्या क्या स्वभाव है यह सब अवश्य ज्ञातव्य है।

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान्। २१।

सोमाय हंसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान्। २२॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्। ॥ २३ ॥ इत्यादि।

यजुर्वेद के इस चौबीसवें अध्याय के अन्त तक बहुत से जलचरः स्थलचर, नभश्चर प्राणियों के नाम आए हैं। पता सहित उन के नाम यहां लिख देते हैं विचार कीजिये। जहां तक होगा भाषार्थं कर दिया है, परन्तु इन वैदिक नामों को भी तो स्मरण रखिये।

देवता के नाम	प्राणियों के नाम	पता	देवता के नाम	प्राणियों के नाम	पता
		(२१)	मित्र,,	— कुलीपय =केंकरा	
समुद्र के लिये ···	शिशुमार=जलजन्तु जो अपने बच्चों को भी मार के खा जाए।		वरुण,,	— नाक्र =मगर	
			सोम,,	— हंस =हंस	(२२)
पर्जन्य,, ···	मण्डूक =मेंढ़क, मेढ़ुक		वायु,,	-- बलाका =बगुली	
जल ,, ···	मत्स्य =मछली		इन्द्राग्नी	— क्रुञ्च =सारस	

देवता के नाम	प्राणियों के नाम	पता		देवता के नाम	प्राणियों के नाम	पता	
मित्र,,	… मद्गु	=शुतुरमुर्ग		अन्तरिक्ष,,	… पाङ्क्त	=जो पंक्ति बांध कर चले	
वरुण,,	… चक्रवाक	=चकवा, चकई		द्युलोक,,	… कश	=	
अग्नि,,	… कुटरु	=मुर्ग	(२३)	दिशा,,	… नकुल	=नेउला	
वनस्पति,,	… उलूक	=उल्लू		अवान्तर दिशा	… बभ्रुक	=भूरा नेउला	
अग्नीषोम,,	… चाष	=नीलकण्ठ		वसु,,	… ऋश्य	=ऋश्य जाति का हरिण	(२७)
अश्वी,,	… मयूर	=मोर		रुद्र,,	… रुरु	=मृगविशेष	
मित्रावरुण,,	… कपोत	=कबूतर		आदित्य,,	… न्यङ्कु	= ,,	
सोम,,	… लव	=बटेर	(२४)	विश्वेदेव,,	… पृषत	= ,,	
त्वष्टा,,	… कौलीक	=कौलीक नाम का पक्षी		साध्य,,	… कुलुङ्ग	= ,,	
देवपत्नी,,	… गोषादी	=गौवों पर बैठने हारे पक्षी		ईशान,,	… परस्वान	= ,,	(२८)
देवजामि,,	… कुलीक	=		मित्र,,	… गौर	=मृग	
अग्नि,,	… पारुष्ण	=		वरुण,,	… महिष	=भैंस	
दिन,,	… पारावत	=पौंडकी,कबूतर	(२५)	वृहस्पति,,	… गवय	=नील गाय	
रात्रि,,	… सीचापू	=		त्वष्टा,,	… उष्ट्र	=ऊंट	
अहोरात्रसन्धि	… जतु	=		प्रजापति	… पुरेषारथी	=	(२९)
मास,,	… दात्यौ	=काले कौआ		वाग्,,	… प्लुषि	=मच्छर	
संवत्सर	… सुपर्ण	=सुन्दर पंख वाला पक्षी		चक्षु,,	… मशक	=मच्छर	
भूमि,,	… आखु	=चूहा	(२६)	श्रोत्र,,	… भृङ्ग	=भौंरा	

अब आगे केवल पशु पक्षियों के नाम लिखे देता हूं ।

गोमृग	कुलुङ्ग=पक्षी	कंक=उजजीचील्ह	श्वावित्=सेही
मेष=मेढ़ा	अज=वकरा	वक=वगुला	शार्दूल=केशरी सिंह
मर्कट=वानर	शक=	धुक्ष=कौआ	वृक=भेड़िया
रोहिदृषि=लाल मृग	क्रोष्टा=सियार	कलविङ्क=चिपैरा	पृदाकू=सांप
वात्तका=वत्तक	पिद्व=मृग	लोहिताहि=लाल लांप	शुक=सुग्गा
नीलङ्गो=	कक्कट=	पुष्करसादी=तालावमेंरहनेहारा	अति=
मयु=किन्नर	सागर=पपीहा	वाहस=अजगर	कश्यक=कछुआ
उल=छोटा कीड़ा	सृजयः=	दार्त्विद=काठ फोड़नेहारा पक्षी	कुण्डूणाची=
हालक्ष्ण=सिंहविशेष	शपाण्डक	अजल=	गोलत्तिका=
वृषदंश=विलार	शारी=सुग्गी	पैङ्गराज=	वृषभू=मेडुकी

प्लव=	कश=	शल्यक=सोही, सोही	पिक=कोकिल
कूर्म=कछुआ	मान्थल	एणी=हरिण	खड्ग=गेंडा
पुरुष } =	अजगर=	मूषिक=चूहा	श्वा=कुत्ता
मृग	शश=खरहा	लोपाश=	गर्दभ=गदहा
		ऋक्ष=रीच्छ	तरक्षु=व्याघ्र
गोधा=	वृणीवान्=	जतू=	शूकर=सूअर
कालका=	वार्ध्रीनस=कण्ठमें थन-वाला वकरा	सुषिलीक=	सिंह=सिंह
दार्वाघाट=कठकोखा		जहका=	कृकलास=गिरगट
कृकवाकु=मुर्गा	सृमर=नीलगाय	अन्यवाप=कोकिल	पिप्पका=
मकर=मगर	कृपि=	उद्र=जलचर गिंगचा।	

इस २४ वें अध्याय में नाना प्रकार के पशु पक्षियों के नाम कहे गए हैं। इन सवों का यज्ञ में प्रयोजन होता है।

षट् शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽह्नि।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य नवभिश्चाधिकानि च ॥

प्रतिदिन तीन सवन=प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, और तृतीय सवन होते हैं। इन में से जब माध्यन्दिन होने लगता है तब ६०० और ९ प्रकार के पशुओं की प्रदर्शनी होती है। ग्राम-ग्राम नगर-नगर से यज्ञदर्शनार्थ लोक आते हैं। उनके मनोविनोदार्थ और इन पशुओं पक्षियों तथा ओषधि आदिकों के स्वभाव गुण आदि से सव कोई परिचित होवें और इनको यथायोग्य काम में लावें या त्यागें इन कारण यज्ञ में सब प्रकार के पदार्थ एक स्थान में एकत्रित किये जाते हैं। जो लोग आज-कल को कलकत्ते, वम्बई, प्रयाग, लाहोर आदि बड़े-बड़े शहरों की प्रदर्शनी देखा करते हैं। वे समझ सकते हैं कि किसी एक स्थान में इतने पदार्थ सरकार की ओर से क्योंकर इकट्ठे किये जाते हैं। क्यों इसमें इतने व्यय किए जाते हैं। प्राचीनकाल में भी प्रकृतिविमोहित ऋषिगण भी सम्राड्द्वारा ऐसी ऐसी प्रदर्शनी लोकोपकार के लिये करवाया करते थे। आप देखिये उस समय के ऋषिगण कितने उद्योगी और प्रकृति के प्रेमी थे। उन पशुओं में २६० के करीव जंगली पशु होते थे। इनको कैसे जीवित रक्खें इसके लिये कात्यायनसूत्र में उपाय दिया हुआ है—

नाड़ीषु प्लुषिमशकान्। करण्डेषु सर्पान्। पञ्जरेषु मृगव्याघ्रसिंहान्। कुम्भेषु मकरमत्स्य मण्डूकान्। जालेषु पक्षिणः। करासु हस्तिनः। नौषु चौदकानि यथार्थं मत्त्वानिति।

नाड़ी=एक प्रकार के तृणों से वनी हुई पेटी उनमें भर कर प्लुषि=छोटी २ चींटी से लेकर मशकपर्यन्त प्राणी रक्खे जांय। करण्ड=एक प्रकार की सापों के रखने के लिये पेटी। इन कण्रडों में सांप रक्खें। पींजरे में मृग, व्याघ्र, सिंह आदि। घटों में मकर, मछली और मण्डूक=मेड़क आदि। जालों में पक्षीगण। कराओं में हाथी। नौकाओं पर जलचर जन्तु। अर्थात् जिस तरह से जिसका सुविधा हो उस-उस उपाय से उन-उन जन्तुओं को यज्ञप्रदर्शनी में अवश्य रक्खें।

जिज्ञासुओं ! विचारों वेदभगवान् और ऋषिगण क्या मन्दोमत्त थे जो इस माया में फंसे हुये थे और राम-राम नहीं भजते थे। बात सत्य यह है कि पदार्थज्ञान विना ईश्वर को कोई पहचान नहीं सकता। मूर्ख अज्ञानी भक्त से ईश्वर डरता रहता है। वह अज्ञानीजन, मिथ्या-मिथ्या कलंक अपने इष्टदेव पर लगाया करता है। पुनरपि सुनिये वेदभगवान क्या वतला रहे हैं—

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । यजुर्वेद १८।१२॥

व्रीहि=धान। यव=जौ। माष=उर्द। मुद्ग=मूंग। खल्व=चने। प्रियङ्गु=कौनी। अणु=चीन। श्यामाक=कोदों=शामा। नीवार=जंगली धान।

यहां सब प्रकार के खाद्य अन्नों के नाम हैं। प्रार्थना की जाती है कि यज्ञ के द्वारा हे परमत्मन् ! ये सब पदार्थ मुझे दो। ईश्वर केवल प्रार्थना से नहीं देते किन्तु उन्होंने मनुष्य जाति को इस कार्य के लिये बुद्धि दी है। आजकल कृषि विद्या की भी दिन-दिन उन्नति हो रही है। अनेक नहरें खोदी गई हैं। तिरहुत के पूसा ग्राम में तथा पंजाब के लायलपुर नगर में तथा अन्यान्य स्थान में कृषि विद्या सिखाने को सरकार ने पाठशालाएं स्थापित की हैं पुनः—

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे । हिरण्यञ्च मे ऽयश्च मे श्यामं च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । यजुर्वेद १८।१३।

अश्मा=पाथर। मृत्तिका=अच्छी मिट्टी। गिरि=छोटे २ पर्वत। पर्वत=बड़े २ हिमालय पहाड़। सिकता=बालू, रेती। वनस्पति=फूल बिना फल देने हारे वृक्ष जैसे कटहल, गूलर वगैरह। हिरण्य=सोना वा चांदी। अयस्=लोह। श्याम=ताम्र, लोह, कांसा। लोह=काला लोह। सीस=सीसा। त्रपु=रांगा।

इस अठारहवें अध्याय को पढ़िये देखिये कितने पदार्थों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना है। परन्तु ईश्वर मेरा पुत्र होवे, मैं उसके साथ क्रीड़ा करूं, मैं इसका मानवरूप देखाना चाहता हूं, मुझे कब मुक्ति मिलेगी, मैं केवल भक्ति चाहता हूं और कुछ नहीं इत्यादि ऐसी ऐसी प्रार्थना वेदों में कहीं भी नहीं है। अब आगे मन्त्र न देके सिर्फ अनुवाद लिखे देता हूं। इन पर विचारिये और इन के तत्वावधान के लिये सिकन्दरिया के राजा **टालेमी**[1] जैसे अजायबखाना स्थापित कीजिये।

नोट—१-सिकन्दर आज़म का यह एक सेनापति था। बल्कि इसको सिकन्दर का भाई समझना चाहिये क्योंकि सिकन्दर के पिता फ़िलिप की दासी "आरसिनो" से इस की उत्पत्ति हुई है। सिकन्दर के बाबीलन नगर में मृत्यु के पश्चात् मिस्र देश में टालेमी ने अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया, यह योग्य विद्वान् था। विद्या-प्रचारार्थ इस ने सिकन्दरिया नगर में एक विशाल अजायब घर बनवाया।

यजुर्वेद १७।२ में निम्नलिखित संख्याओं के नाम आते हैं और प्रार्थना है कि इतनी ईंटों का कुण्ड बनाने की शक्ति दो।

एक = १

दश = १०

शत = १००

सहस्र = १०००

अयुत = १००००

नियुत = १०००००

प्रयुत = १००००००

अर्बुद = १०००००००

न्यर्बुद = १००००००००

समुद्र = १०००००००००

मध्य = १००००००००००

अन्त = १०००००००००००

परार्ध = १००००००००००००

गणित के लिये संख्याओं की आवश्यकता होती है। पुनः गणित की ओर प्रवृत्ति के लिये दो प्रकार से संख्याएं कहते हैं। १।३।५।७।९।११।१३।१५।१७।१९।२१।२३।२५।२७।२९।३१।३३। यजुर्वेद १८। २४। दूसरा—४।८।१२।१६।२०।२४।२८।३२।३६।४०।४४।४८। यजुर्वेद १८।२५।

प्रधानतया यजुर्वेद यज्ञों का निरूपण करता है। यज्ञ शब्द के मुख्य तीन अर्थ हैं। "यजदेव-पूजासंगतिकरणदानेषु" १ देवपूजा २ संगतिकरण ३ और दान। पदार्थों को यथायोग्य मिलाने का नाम संगतिकरण है। इस हेतु ऋषिगण जहां तक जिस २ वस्तु को जानते थे इन सब पदार्थों का यज्ञ में संगति अर्थात् संगम=एकत्र किया करते थे। अतएव उस समय तक जितने पदार्थ विदित थे प्रायः उन सब का प्रयोग किसी न किसी रूप से यज्ञस्थल में किया करते थे। खेती की सामग्री हल, बैल, कूप, बीज, खनित्र हल का चलाना, बोना, काटना, सींचना आदि। खाने में जो भात, दाल, रोटी, धान, करम्भ-सक्तु, परीवाप, दूध, दही, आमिक्षा, मधु, जल, आसन, पीढ़ी आदि। यज्ञ के स्रुक, चमस, वायव्य, द्रोणकलश, ग्रावा, अधिषवण, पूतभृत, आधवनीय वेदी, कुश इत्यादि और मनुष्यों के जितने भेद हो सकते हैं ये सब यहां इकट्ठे किये जाते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तस्कर, वीरहा क्लीव, अयोगू, पुंश्चलू, मागध इत्यादि दो सौ से अधिक नाम ३० वें अध्याय में आए हैं। मैं कहां तक गिनाऊं। एक कोश ही बनजायगा। स्वयं यजुर्वेद और उसका ब्राह्मण शतपथ पढ़के देखिये। यज्ञ में कितने पदार्थ आयोजित होते थे।

यजुर्वेद में दर्शपौर्णमासेष्टि, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेध, और सर्वमेध आदि यज्ञों का वर्णन आया है । परन्तु किसी में भी ईश्वर प्रयोग नहीं पाया जाता । ईश्वरीय पदार्थों का ही बहुत प्रयोग देखते हैं। इस से विशदतया परमात्मा अपनी विभूति जताने के लिए ही प्रेरणा करते हैं यह सूचना होती है । एवमस्तु । इसी प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नदी, पर्वत, समुद्र,, वर्षा, मेंढक, कपिन्जल, पृथिवी, मनुष्य, वाण, आदियों की ही स्तुति से भरा हुआ है। सामवेद इन को ही विशेषरूप से गाते हैं ।

वेदों से लेकर तुलसीदास जी के भाषा रामायण तक, ऋग्वेद के आद्य ऋषि मधुछन्दा से ऋषि दयानन्द तक, प्रथम कवि वाल्मीकि से विहारी तक, कथा लेखक व्यास से सोमदेव भट्ट तक, इतिहासान्वेषी ग्रीसदेश के हिरेडोटस से वंगवासी रमेशचन्द्र तक, एवं सम्प्रदाय प्रवर्तक इरानी ज़रदुस्त, यहूदीमूसा, कपिलग्रामनिवासी बुद्धदेव, जेरुशलम प्रदेशविभूषक ईसामसीह, अरबदेशालंकार मुहम्मद, तथा भारतभूषण शंकराचार्य, रामानुज, वल्लभ माध्व, विष्णु, कवीरदास, नानक साहिब, गुरु गोविन्द, दादूराम, नारायण, राजा राममोहनराय, केशवसेन और नूतन नूतन विद्याओं के सृष्टि-कर्त्ता षट्शास्त्र रचयिता कपिल, पतञ्जलि, गौतम, कणाद, व्यास, जैमिनि, तथा विदेशी एथेन्स नगर शिरोमणि साक्रेटीज, प्लेटो, अरिष्टोटल, विलायती गलेलियो, सरकाइजेक न्यूटन कहां तक मैं नाम गिनाऊं सृष्टि की आदि से अभी तक जितने आचार्य वा ग्रन्थ लेखक हुए हैं। ऐ जिज्ञासु पुरुषो ! वे किन वातों का वर्णन कर गए हैं और कर रहे हैं । कदाचित् आप समझते होंगे कि वे किन्हीं महा महा अति अद्भुत बातें कह गए हैं जो हम लोगों की समझ में न आवेंगी । वे कोई महान् देव थे वा आश्चर्य सिद्ध सिद्धेश्वर योगी थे जो आंखों से प्रत्यक्ष करके सब बातें कह गए हम लोगों में इतनी बुद्धि नहीं कि उनके जानने में समर्थ हों । प्यारे विद्याभिलाषियो ! सुनों वे प्राचीन किन्हीं महा महा अति अद्भुत् बातों को न लिख गए और न नवीन किन्हीं अज्ञेय वातों को लिख रहे हैं। ऐ शुद्ध हृदय ग्रामीणजनो! जिन पदार्थों को आप अपनी चारों तरफ प्रति दिन देखते हैं उन्हीं का वर्णन यथामति सब कर गये हैं और अब तक कर रहे हैं । आप चारों ओर किन वस्तुओं को देखते हैं कहिये तो । क्या आप रात्रि में ऊपर शिर करते हैं तो अनन्त असंख्य आकाश में लटके से हुए नक्षत्र समूहों को नहीं देखते ? जब उससे नीचे आते हैं तब क्या वर्षा ऋतु के मेघ की घटाएं, बिजुली, घोरगर्जन और वृष्टि आपको चकित, विस्मित, भीत, आनन्दित नहीं कर देती । कभी मन्द, सुगन्ध, शीतल, कभी तीव्र, दुर्गन्ध, उष्ण और आंधी तूफान, ववण्डर लिए हुए वायु कैसे झोंको से चलता है। पृथिवी पर अग्नि, जल, पशु, पक्षी, तृण, गुल्म, वीरुध, लता धान्य, औषध, धल मूल कन्द, स्थलचर, जलचर, नभश्चर कीटपतंग कीड़, मकोड़ इत्यादि सहस्रों पदार्थ देखते हैं। जिसी ओर आप आंख उठावें उसी ओर ईश्वर की विभूतियां दीख पड़ती हैं। इन ही का वर्णन सर्वत्र है। ऋग्वेद सब से पहले अग्नि की ही स्तुति करता है। सामवेद प्रथम मन्त्र में अग्नि से ही ब्रह्म का गान करता है। यजुर्वेद आदि काण्डिका में श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्ति के और पशुओं की रक्षा के लिए प्रार्थना करता है । अथर्ववेद त्रिसप्त अर्थात् उत्तम, मध्यम, और अधम भेद से इक्कीस प्रकार के जो दो आंखे, दो कान, दो नासिकाएं एक मुख हैं उनका ही वर्णन से आरम्भ होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थ—वेदों के पश्चात् ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य गोपथ, कृष्णयजुर्वेद, तैत्तिरीय, कौषीतकि आदि शतशः जो ब्राह्मण नाम से ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। और आपस्तम्ब, आश्वलायन, कात्यायन, बौद्धायन सत्याषाढ़ीय वैखानस आदि श्रौत वा गृह्यसूत्र हैं। वे सब ही कर्मकाण्ड का ही वर्णन करते हैं। कदाचित् कर्मकाण्ड शब्द सुनकर आपके मन में अलौकिक भाव की उत्पत्ति हुई हो। नहीं। उन में भी किसी अलौकिक बात का वर्णन नहीं। आप भी कर्म करते हैं स्नान, सन्ध्या, पूजापाठ, होम, बलि, तर्पण आप भी प्रतिदिन अब भी करते हैं। उस सब का ही ढंग रंग से उन ग्रन्थों में वर्णन है। दर्शेष्टि, पूर्णमेष्टि, राज्यसूय, सर्वमेध, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम, गवामयन, आदित्यानामयन, अंगिरसानामयन, इत्यादि २ विविध यज्ञों का निरूपण उन ग्रन्थों में है। वैदिक यज्ञों का यदि आप अध्ययन करें तो आश्चर्यान्वित हो जायंगे। वह लीला देखते देखते उकस जायेंगे। ब्राह्मण विहित याज्ञिक समय के पश्चात् **उपनिषद और आरण्यक** का समय आता है। उपनिषद् अध्यात्म और वेदान्त शास्त्र कहलाता है परन्तु इन में है क्या ? सज्जनो ? नयन, कर्ण, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, मन, चित्त आत्मा इनको ही तो विविध अंगों से ऋषिगण निरूपण करते हैं। परमात्मा से इस जगत् का क्या सम्बन्ध है और वह कैसा है। उस ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है। यह विषय भी बहुधा वर्णित हुए हैं। **आरण्यक** ग्रन्थ वह कहलाता है जिसको प्राचीन ऋषि मुनि अरण्य=वन में जाके पढ़ते पढ़ाते और विचारते थे। जैसे वृहदारण्यकोपनिषद्। यहां आरण्यक और उपनिषद् दोनों शब्द आये हैं। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और वृहदारण्यकोपनिषद् ये दश उपनिषदें परम प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कौषीतकी, श्वेताश्वतर और मैत्रेयी आदि भी उपनिषदें उपयोगी हैं। ऐतरेयारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक आदि आरण्यक ग्रन्थ हैं इन में भी प्रधानतया अध्यात्म वस्तु का ही वर्णन आया है॥

॥ इति वेदजिज्ञास्याध्यायः ॥

षट्शास्त्रजिज्ञास्याध्याय ४

वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त ये षट्शास्त्र वा षट्दर्शन कहाते हैं। इनके रचयिता क्रमशः कणाद, गौतम, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि, और बादरायण व्यास हैं। वैशेषिक शास्त्र का सहायक न्याय, और सांख्य का सहायक योगशास्त्र है इस प्रकार चार ही शास्त्र कहे जा सकते हैं। विषयों के भेद से ये तीन में विभक्त हो सकते हैं। प्रकृतिकारणवाद, परमाणु कारणवाद और ब्रह्मकारणवाद। इस में वैशेषिक और सांख्य शास्त्र स्वतन्त्र और मीमांसा और वेदान्त परतन्त्र हैं। कपिल और कणाद को नूतन विद्यास्थापक कहते हैं। जैमिनी और व्यास ये दोनों किसी नूतन विद्या के आविष्कार कर्त्ता नहीं किन्तु ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतिपादित अर्थों को निज निज युक्तिरूप फूलों से भूषित करनेहारे हैं। ये छवों शास्त्र जिन जिन रूपों से प्रकट हुए थे वे

उनके रूप अब नहीं हैं। इन में सांख्य बहुत प्राचीन है परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि कपिल प्रणीत ग्रन्थ कोई भी अब उपलब्ध नहीं होता। उनका सिद्धान्त प्रचलित है इस में सन्देह नहीं। वैशेषिक और न्याय दोनों आगे चलकर गंगा, यमुना के समान मिल गए और न्याय नाम से प्रसिद्ध हुए। आगे न्याय भी इसका यथार्थ नाम नहीं रहा। इस शास्त्र को तर्क नाम से पुकारने लगे। इसकी अपने ढंग पर बड़ी तरक्की हुई परन्तु कणाद वा गौतम की पद्धति नहीं रहीं। वेदान्त का स्वरूप सर्वथा बदल गया। जिस वेदान्त का व्यास प्रचार करते थे वह अब नहीं रहा। यह मायावाद बनकर जगत् के मोह के लिये हो गया। व्यास ने जिस ब्रह्मोपादान कारण की स्थिरता के लिए उतना उद्योग किया था, वह ब्रह्म भी उपादान कारण न रहा। बीच में माया आ गई। अजातवाद की शंखध्वनि हो गई, जो पिता पुत्र का सम्बन्ध ब्रह्म और जगत् में स्थापित किया गया था स्वप्न हो गया, भ्रम ठहराया गया। न यह सृष्टि कभी बनी और न बनेगी फिर पिता पुत्र का सम्बन्ध ही क्या? जब सृष्टि हुई ही नहीं तो सम्बन्ध का अन्वेषण कैसा? इस प्रकार वेदान्त की महती अधोगति हो रही है। मीमांसा की भी अपने समय में कुछ तरक्की हुई परन्तु वह बढ़ने न पाई। मीमांसा प्रतिपादित कर्म काण्डों से जनता घृणा करती ही रह गई क्योंकि ये कर्म प्राय: हिंसा से रहित नहीं हैं। यज्ञों में पशु हिंसा की इन्होंने रक्षा की। जैमिनी कुमारिलभट्ट और शबर आदि अनुयायी जितने हुए वे इस यज्ञ को सप्रमाण पुष्ट करते गए। शंकराचार्य जैसे विद्वान् गण भी इसी पक्ष में रहे। पर इस के विरुद्ध मोटी मोटी लाठी लेके बौद्ध और जैन खड़े थे। पीछे वैष्णव—सम्प्रदाय भी इस प्रसंग में बौद्ध का ही अनुगामी हुआ। यद्यपि शंकराचार्य हिंसा को वैदिकी और कर्त्तव्य कह कर मुंह छिपा लेते थे। तथापि इन्होंने ऐसी युक्ति निकाली जिस से मीमांसा के कर्मकाण्ड का अभ्युदय न होने पाया।

शंकराचार्य ने कहा कि कर्म एक तुच्छ चीज़ है। अज्ञानियों के लिये उपदिष्ट है। ब्रह्मज्ञान की ही श्रेष्ठता है। कर्म से कदापि मुक्ति नहीं होगी। कर्म महाबन्धन है। ज्ञान से ही मुक्ति होती है। ब्रह्म और हम जीवों में कोई भेद नहीं। अहं ब्रह्मास्मि का बोध होने से ही कृतकृत्यता होती है। सामवेदी छान्दोग्योपनिषद में इस के बहुत उदाहरण हैं। तत्त्वमसि श्वेतकेतो यह नववार कहा गया। इत्यादि वर्णन ने मनुष्यों के चित्त को आकर्षित कर लिया। इस कारण भी मीमांसा की तरक्की न न हुई। इस के सिवाय भक्ति मार्ग का ऐसा प्रवाह बहने लगा कि जिस में छवों शास्त्र डूब गए, मीमांसा को यहां कौन पूछता। वेदान्त भी एक कोने में छिप गया। मनुष्य इस भक्ति से भी प्रसन्न न रहे। इस समय सब ही सम्प्रदायें खिचड़ी होके भयंकर रूप धारण किये हुए हैं। भारतवर्ष में इस समय काल रात्रि का समय है। हां पश्चिम से कुछ प्रकाश आ रहा है। देखें क्या परिवर्तन लाता है। अब में यहां सक्षेप से षट्दर्शनों का निरूपण करता हूं।

वैशेषिक शास्त्र—छवों शास्त्रों में वैशेषिक शास्त्र की अधिक प्रतिष्ठा है। आप को आश्चर्य होगा कि यह किस अलौकिक वस्तु को दिखलाता है जिससे इसका इतना गौरव है। यह शास्त्र प्रधानता से पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच भूतों का तथा समय, दिशा, शरीर, इन्द्रिय, मन,

जीवात्मा का वर्णन कर रहा है। आप प्रतिदिन इन पृथिवी आदि पांच महाभूतों को क्या आंखों से नहीं देखते? क्या इन से यथाशक्ति यथा बोध काम नहीं ले रहे हैं? पृथिवी से सहस्रों पदार्थ आप उत्पन्न करते हैं। स्वच्छजल पीते हैं। अग्नि से आप कितने स्वादिष्ट भोजन तैयार करते हैं। मन्द, शीतल, सुगन्ध, वायु को आप बहुत पसन्द करते हैं। आकाश चारों ओर घेरे हुए है। इसके अतिरिक्त आप देखते हैं कि प्रातः काल जैसा रमणीय होता है। सायंकाल कैसी दैवी घटना दिखलाकर परमात्मा की विभूतियों की ओर मनुष्य को ले जाता है। अब दिन नहीं रहा। अन्धकार रात्रि आ गई। पशुपक्षी चुप साध गए। उलूक और चमगीदर दौड़ने लगे। इस प्रकार प्रतिदिन वही दिन वही रात्रि चक्रवत् घूमते रहते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, दिशाओं का अन्त आपको नहीं लगता। शरीर में मन कैसा एक अद्भुत वस्तु है। जीवात्मा विना यह देह किस काम का। अब आप परीक्षा और समीक्षा कर सकते हैं कि जिसकी इतनी महती प्रतिष्ठा है वह भी इनहीं वस्तुओं के वर्णन में अपना समय बिता रहा है।

वैशेषिक कर्त्ता कणाद कहते हैं कि—

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्" ।१।४।

छः पदार्थ हैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। इनके ही जानने से मनुष्य मुक्तिलाभ करता है।

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मामन इति द्रव्याणि ।१।५॥

१—द्रव्य के नौ भेद हैं-पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, और मन।

रूपरसगंधस्पर्शाः संख्याः, परिमाणानि, पृथक्त्वं, संयोगविभागौ, परत्वापरत्वे, बुद्धयः, सुखदुःखे, इच्छाद्वेषौ, प्रयत्नाश्चगुणाः ७।६।

यह निबन्ध 'वैदिक रहस्य' ग्रन्थमाला के चतुर्थ भाग में इतना ही छपा था। अगला पञ्चमभाग मुद्रित न हो सकने के कारण यह अधूरा रह गया। सम्पा०

ईश्वरीय पुस्तक कौन है ?[1]

ईश्वरीय ग्रन्थ कौन है ? इस पर विवेचना के पहिले आप से संक्षिप्त निवेदन यह है कि मैं वेद, जेन्दावस्था, बायबल, त्रिपिटक, कुरान तथा पुराण इत्यादि धार्मिक ग्रन्थों को समान दृष्टि से देखता हूं। जैसे मैं ऋषियों को निज पूज्य पूर्वज समझता हूं। वैसे ही जारोएष्टर, आदम, मूसा, सुलेमान, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि को भी। संस्कृत, पहलवी, हिब्रू, ग्रीक, अरबिक, आदि पृथिवी पर की भाषाओं को मैं तुल्य समझता हूं। पृथिवी पर के मनुष्य मात्र को भाई मानता हूं। और पर्वतकृत अथवा समुद्रकृतादि अन्यान्य सीमा के कारण भेद नहीं स्वीकार करता। मैं इसको पूर्ण तरह से अनुभव करता हूं कि सब ही मनुष्य जातियां और प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं और सब ही ईश्वरीय विभूतियों के तुल्य अधिकारी हैं। जो कुछ परस्पर विरोध या भेद हो गया है वह अज्ञान कृत है। संभव है कि विद्या-प्रचार से इस अविद्या का कभी विनाश हो जायगा। हां, इतनी बात अवश्य है कि इन्हीं ग्रन्थों के उपदेशानुसार मैं सत्य का जिज्ञासु हूं। इसलिये मेरे भाव या लेख में प्रमादवश यदि किसी प्रकार की त्रुटि आ गई हों तो अवश्य आप क्षमा करेंगे।

ईश्वरीय ग्रन्थ कौन ?

मेरे विचार में वक्ष्यमाण लक्षणयुक्त ग्रन्थ ईश्वरीय कहलाने योग्य हो सकता है। लक्षण ये हैं:—

१—वह ग्रन्थ मानव-सृष्टि के साथ ही दिया गया हो।

२—जिस समय पृथिवी पर कोई विभिन्न भाषाएं उत्पन्न न हुई हों।

३—जिसमें ईश्वर के गुण, स्वभाव, सत्यता, न्याय-परायणता तथा दयालुता आदि का परस्पर विरोध रहित विवरण हो।

४—जिसमें ईर्ष्या, द्वेष, पक्षपात आदि का लेश भी न हो।

५—जिसमें मनुष्य की स्थिति अर्थात् आकृति आयु, जन्म, कर्म और मुक्ति प्रभृति का अच्छे प्रकार वर्णन हो।

६—जिसमें सृष्टि के अनादित्व, अनन्तत्व और वास्तविक स्वरूप का उल्लेख हो।

---

१. स्वर्गीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु जून १९३३ में स्व० श्री पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ के घर 'कमतौल' जि दरभंगा गये थे। उस समय उनके घर में विद्यमान 'ईश्वरीय पुस्तक कौन है' ? शीर्षक एक निवन्ध इन्हें प्राप्त हुआ था। इसे पूज्य गुरुवर्य ने श्री बलदेव जी आर्य समाज काशी द्वारा प्रकाशित कराया था, पुनरपि यह निवन्ध अज्ञात सा ही रहा। उसे हम सर्वसाधारण के लाभार्थ पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। सम्पादक।

७—जिसमें जीव के पूर्व भाव, अविनश्वरता तथा कर्मानुसार निग्रहानुग्रह आदि का अनुशासन हो।

८—जिसमें मिथ्या माहात्म्य न हो।

९—जो ग्रन्थ लौकिक विज्ञान से विरुद्ध न हो।

१०—जिसमें ईश्वरीय कार्य्यों के ही उपलक्ष में उत्सव, पर्व आदि का विधान हो।।

उपर्युक्त लक्षणों की सार्थकता और तद्युक्त ग्रन्थ की समालोचना होने से विद्वानों को प्रतीत होगा कि वास्तविक ईश्वर प्रेरित ग्रन्थ कौन है?

१—वह ग्रन्थ मानव सृष्टि के साथ ही दिया गया हो।

यह प्रथम लक्षण है। कई एक भाई इस लक्षण की आवश्यकता न समझते हों तो उनसे मैं पूछता हूं कि उतने दिन वे मनुष्य सन्तान कर्तव्याकर्तव्य के बोध से विमुख रह पाप-पुण्य के भागी होते थे या नहीं। यदि कहें कि नहीं, तो वे मनुष्य कदापि नहीं कहला सकते। क्योंकि उनमें विवाह, खाद्याखाद्य और दण्डादण्ड आदि का कुछ भी विचार न होता होगा। तथा आद्य शिक्षा के बिना उनमें मानव भाषा भी न आई होगी। अतः वे पशु ही माने जा सकते हैं। इसलिये ईश्वरीय ग्रन्थ का मनुष्यसृष्टि के साथ-साथ आविर्भाव मानना उचित है।

वायबल, कुरान भी कहते हैं कि आदम और हौव्वा को उत्पन्न कर और अदन में रख कर्तव्याकर्तव्य का परमात्मा ने उपदेश दिया था। उसका एक उदाहरण यह है कि एक विशेष वृक्ष के फलों को खाने से वे दोनों रोके गए थे। तथापि इतिहास से मालूम है कि ४००० चार सहस्र वर्ष के अभ्यन्तर में वायबल बन कर समाप्त हुआ है और कुरान का आविर्भाव भी १३०० तेरह सौ अथवा तेरह सौ से कुछ अधिक काल से है। इसी प्रकार जेन्दावस्था आदि का भी वर्णन है। आद्य सृष्टि की यदि कोई पुस्तक कही जा सकती है तो वह केवल वेद ही है। वर्तमान कालिक विद्वान् भी वेद को ही सब से प्राचीनतम ग्रन्थ निश्चित करते हैं। अतः इस लक्षण से वेद ही ईश्वर प्रेरित ग्रन्थ कहा जा सकता है।"

२—जिस समय पृथिवी पर कोई विभिन्न भाषाएँ उत्पन्न न हुई हों।

यह द्वितीय लक्षण है। सब धर्म ग्रन्थों के अनुसार यह सिद्ध है कि आदि सृष्टि में बड़े प्रेम से ईश्वर ने मानव जाति को प्रकट किया। और इसमें उन्नति के कारणों में से एक कारण विस्पष्ट भाषा है। अब प्रश्न होता है कि क्या ईश्वरीय शिक्षा के विना ही इस जाति में व्यक्त भाषा आई है या शिक्षा के कारण? इस प्रश्न के उत्तर में धर्म ग्रन्थों की सम्मति यही प्रतीत होती है कि मानवजाति को प्रकट करके ईश्वर ने उसे शिक्षा दी है और विधि-निषेधों के बहुत से उपदेश भी दिए हैं।।

अब जिज्ञासा करनी चाहिए कि वे उपदेशमय ग्रन्थ लुप्त हो गये या कहीं सुरक्षित हैं। वायबल आदि वे ग्रन्थ नहीं हो सकते क्योंकि इतिहास से मालूम है कि इन वायबल आदिकों के आविर्भाव

के काल में विविध भाषाएं और सम्प्रदाय जगत् में राज्य कर रहे थे। तब वे कैसे ईश्वर प्रेरित कहलाने योग्य हो सकते। अब वेद की ओर यदि देखते हैं तो परीक्षा और समालोचना से प्रतीत होता है कि वेद के समय न तो कोई भाषा ही या धर्म ही पृथिवी पर विद्यमान थे। अतः वेद ही ईश्वरीय ग्रन्थ कहलाने योग्य है॥

और भी जब मानव जाति निज उद्योग से व्यक्त भाषा बोलनेवाली हो गई हो और स्वानुभव से यत्किञ्चत् धर्म की और अन्यान्य कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था भी करली हो तो उस अवस्था में विधिनिषेधमय ग्रन्थ देने से भी ईश्वर अधिक लाभ मनुष्य वर्ग में नहीं पहुंचा सकता। वे मनुष्य उस पिता से कह सकते हैं कि इतने वर्ष उस विपत्ति में हमको त्याग अब आप हमारे अभ्युदय के समय में साहाय्य देने को आए हैं। अतः आपको हम कैसे मानें और पूर्व व्यवस्था को कैसे छोड़ें॥

और भी उस समय जितनी भाषाएं पृथिवी पर विद्यमान होंगी उतनी भाषाओं में ईश्वर को उपदेश करना उचित होगा अन्यथा वह पक्षपाती समझा जायगा। अतः इस लक्षण से भी वेद ही ईश्वरीय है यह सिद्ध होता है॥

३—जिसमें ईश्वर के गुण स्वभाव, सत्यता, न्यायपरायणता तथा दयालुता आदि का परस्पर विरोध रहित विवरण हो।

इस लक्षण का भी सर्वत्र अभाव है। इस पर विचार करते हुए मुझे अतिशय शोक होताहै कि वास्तव में लोगों ने धर्म के नाम पर कैसी कभी अविद्याओं और अन्यायों का अटूट जाल फैलाया है। ईश्वर के पवित्र गुणों का वर्णन कहां है? सब सम्प्रदायी कहते हैं कि ईश्वर मूर्तिमान् मनुष्याकार है। इसके निकट दूत, वाहन, धन, भोगोपकरण, स्त्री, पुत्र सभा इत्यादिक हैं। वह किन्हीं धर्मियों का पक्ष लेकर किन्हीं को अपराध के विना ही मार देता है। किसी पर निष्कारण अनुग्रह कर उसके समीप दूत द्वारा निज संदेश भेजता है और उसको धर्म के लिये युद्ध की भी आज्ञा देता है। किन्हीं विशेष जातियों पर ही उसकी कृपा होती है। वह एक स्थल में बैठकर न्याय करता है। वह सोता, जागता, भोग विलास करता इत्यादि। जब कोई सिद्ध पुरुष चाहता तब उसका दर्शन और उससे कर्तव्याकर्तव्य की शिक्षाएं भी ले आता है। उसको प्रसन्न रखने का यह सरल उपाय है कि उसको अच्छी अच्छी चीजें भोग के लिये और पहनने के लिये देवे इत्यादि। अर्थात् अपने अपनेस्वभाव के तुल्य ही परमात्मा को भी गढ़ते हैं। जैसा ईश्वर है वैसा कहीं भी विवरण नहीं। प्रथम सब सम्प्रदायी ईश्वर को साकार निरूपण करते हैं। सो हो नहीं सकता। इस अनन्त संसार का शासक मनुष्याकृति नहीं हो सकता। इसीलिये वेद में कहा गया है कि—

'अकायम्'। यजु० ४०।८॥
वह ईश्वर शरीर रहित है।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति'। यजु० ३२।३॥
न उसकी कोई मूर्ति है, और न उसकी कोई उपमा वा सादृश्य है।

'सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' । यजु० १३।४६ ।।

वह सबका स्रष्टा तथा स्थावर और जंगम दोनों का अन्तरात्मा है । वही प्राण का प्राण है । वह सर्वव्यापक कहा गया है । यथा—

'तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्' । यजु० २५।१८।।

इत्यादि यदि वह शरीरधारी है, तो वह कम से कम दो पदार्थों से बना है, यह सिद्ध होगा । एक उसका शरीर और दूसरा आत्मा । शरीर उसका अवश्य प्राकृत होगा, और प्राकृत होने से वह अवश्य विनश्वर भी होगा । अतः वह कभी मरता और कभी जीता होगा, और वह स्थूल शरीरधारी होकर सब में व्यापक, नहीं हो सकता । इत्यादि इत्यादि अनेक दोषों के कारण वेद भगवान् उसको अकाय,अमूर्त्त, व्यापी अप्रतिम आदि शब्दों से पुकारते हैं । परन्तु अन्यान्य सब ही धर्मग्रन्थ उसको साकार ही मानते हैं । अतः वे ग्रन्थ ईश्वर-प्रेरित नहीं हो सकते ।

यदि मैं सब विचारों को त्याग केवल—**"ईश्वर एक ही है"** इस पर दृष्टि डालता हूं तो इसमें भी सब धर्मग्रन्थ बालोन्मत्तवत् वर्णन करते हैं । प्रथम ईश्वर एक है, इसका आशय समझना चाहिये । वह अपने कार्य्य में किसी अन्य से सहायता न लेता हो, तब ही उसकी एकता बन सकती है । यदि उसके निकट दूत हैं, और अपने कार्य्य के लिये जहां तहां उन्हें भेजता है, तो वह एक नहीं है यह सिद्ध हुवा, क्योंकि वह अकेला ही अपने कार्य्य करने में असमर्थ है । यों तो प्रत्येक व्यक्ति एक ही है, जैसे शासक राजा एक ही है, परन्तु अपने समस्त कार्य्यों को वह अकेला संभाल नहीं सकता, अतः सहस्रशः कर्मचारियों को राज्य में नियुक्त करता है । यदि ईश्वर भी एतत्सदृश ही है, तो वह एक ही कैसा । कुरान, बायवल आदिकों मे विस्पष्ट वर्णन आता है कि ईश्वर के निकट दूत हैं । तथा च पुराणों में तो एकेश्वरवाद की गन्ध भी नहीं है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, काली आदि और उनके परिवार आदि कितने ब्रह्म है उसका पता ही नहीं ।

वेदों में ऐसी व्यवस्था नहीं—

'द्यावाभूमिं जनयन् देव एकः' । यजु० १७।१९ ।।

इत्यादि मन्त्रों में उसको एक कहते हुए कहीं भी उसके दूतों, स्त्रियों, और मन्त्री आदिकों का निरूपण नहीं । उसके न्याय का भी वर्णन यथार्थ रूप से कहीं भी नहीं । कुरान का खुदा केवल अरब निवासियों के लिये, बायवल का जिहोवा केवल यहूदियों के लिये । इसी प्रकार पुराणों का ईश्वर ब्राह्मणों के लिये ही है । यह कौनसा न्याय है ? इस पर विशेष न लिख कर विवेकी पुरुष स्वयं विचार करें ।

सर्वज्ञता का भी वर्णन कहीं भी नहीं । ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपनी सृष्टि का भी पता नहीं । पृथिवी और चन्द्र सूर्य्यादिक कौन हैं, और उनकी आकृति, गति, विस्तार आदि कितने हैं, वे सब उनको किञ्चिन्मात्र भी विदित नहीं । चन्द्र ग्रहण कैसे होता है, यह न तो त्रिदेवों को, न राम कृष्ण को और न खुदा और जिहोवा को ही ज्ञात था, तब उन्हें हम पण्डित की भी पदवी नहीं दे सकते, सर्वज्ञता की तो बात ही क्या ?

बायबल में यह प्रसंग आता है कि ईश्वर ने आदम और हव्वा को बना और एक बाग में रख कर कहा कि—देखो इस एक वृक्ष के फल न खाकर और सब का फल खाओ। उन दोनों ने उस निषिद्ध वृक्ष के भी फल खाए। ईश्वर उन पर इसलिये अत्यन्त क्रुद्ध हुए, शाप दिए और अन्त में उस बाग से निकाल बाहर किया। क्या यही ईश्वर की सर्वज्ञता है। उसको यह भविष्यत् बोध नहीं हुआ कि हमारे निषेध करने पर भी वे दोनों न मानेंगे। एक बालक के निकट वे दोनों उत्तमोत्तम फल देकर कहा जाय कि ये फल मत खा। क्या वह शिशु कभी इसको मान सकता है? उसके निकट वे दोनों शिशु ही थे, तथापि उनको दण्ड दिया जाता है, यह कहां का न्याय और सर्वज्ञता है?

पुनः जल प्रलय की भी यही दशा है। उत्तम विज्ञानी कारीगर अपनी बनाई हुई चीज की स्थिति अच्छे प्रकार जानता है। घड़ी बनानेवाले कह देते हैं कि इतने दिन यदि इसमें कुंजी न दी जायगी तो कोई क्षति न होगी। और यह घड़ी करीब इतने वर्ष इन उपायों से ठहर सकती है। किन्तु सर्वज्ञ ईश्वर यह नहीं जानता है कि मेरी बनाई हुई चीजें इतने वर्षों के पश्चात् बिगड़ जायेंगी। मनुष्य ईश्वर के उपदेश से विरुद्ध चलने लगे। ईश्वर क्रोध कर जल प्रलय ले आया, भला, मनुष्य पापी हुये थे, अन्यान्य जीवों का क्या अपराध था, जो उस जल प्रलय से सबका नाश कर दिया गया। यह कौन सी सर्वज्ञता है?

"ईश्वर पवित्र है" ऐसा वर्णन सब सम्प्रदायी करते हैं। किन्तु कार्य्य में यह गुण प्रकाशित नहीं होता। ईश्वर होकर वृन्दा के पातिव्रत्य को भग्न करता है। एक विश्वासी भक्त से शपथ उतार देने के लिए कहता है, और मनुष्यवत् पुत्र पैदा करता है। इसके अतिरिक्त जिहोवा ने मिश्रदेश की सारी नदियां मूसा के द्वारा रुधिर कर डालीं। सारी भूमि को मेंढ़कों से भर दिया। उस देश की धूलों से चीलर ही चीलर बना डाले। आग बरसाई, सब लोगों के देह पर फफोले उत्पन्न हो गए। सब के ज्येष्ठ पुत्र मार दिए गए, इत्यादि अनेक लीलाएं ईश्वर ने मिश्र देश में इसलिये रचीं थीं कि वहां के लोग मूसा को स्वर्गीय दूत और भविष्ययद् वक्ता मानें। इन बातों से अन्याय, पक्षपात और अशुद्धता प्रतीत होती है। वेद में ऐसी ऐसी एक भी बात नहीं। मैं इन बातों को कहां तक वर्णन करूं। स्थान स्वल्प है, और अत्यावश्यक अन्यान्य विषयों पर चर्चा करनी है।

४—जिसमें ईर्ष्या, राग, द्वेष और पक्षपात आदि की बात न हो।

वेदों में कहीं भी वर्णन नहीं आता है कि अमुक जाति अथवा अमुक व्यक्ति के उपर परमात्मा का निष्कारण, दया वा कोप राग वा द्वेष है। अमुक आदमी ईश्वर की ओर से भेजा जाता है, उसकी सारी बातें सब कोई मान लेवें। कुरानी अल्लाह के दयापात्र अरब निवासी। जिहोवा की कृपा यहूदियों के ऊपर है। पुराण के ईश्वर ने ब्राह्मण जाति को छोड़ सबको निकृष्ट ही बनाया है। शूद्र तो श्मशान तुल्य है। ब्राह्मण के भोजनमात्र से ईश्वर तृप्त हो जाता है, मुहम्मद साहिब ईश्वर के परम प्रिय बन्दा हैं, यद्यपि उन्होंने स्वयं एक अक्षर भी नहीं पढ़ा, तथापि वे सब कुछ जानते थे। वे मानव रूप में अल्लाह के निकट पहुंचाए गये। उनके ऊपर उसकी इतनी दया थी कि शपथ उतारने के लिए भी मुहम्मद साहब को आज्ञा दी। इसी प्रकार अन्यान्य अनेक बातें अनुचित कही गई हैं।

वेदों में जो आर्य्य और दस्यु की बात आती है,[१] वह किसी विशेष जाति का विवरण नहीं। दस्यु यह नाम ही चोर, डाकू, लंपट, बदमाश, नास्तिक और महाघोर पापिष्ठ का है जिनमें धर्म का किञ्चिंन्मात्र भी लेश नहीं। इसी कारण उसके लिये अव्रत, अयज्वा ब्रह्मद्विट्,क्रव्याद् दस्यु और दास आदि शब्द आते हैं। दस्यु यह "उपक्षयार्थक दस" धातु से बनता है, अर्थात् जो अपनी ही समीपी जाति के क्षय करने में लगा रहे।। मनुष्यों के धनों और प्राणों दोनों को हरण करे, वह दस्यु। इसी धातु से दास शब्द भी बनता है। एक मन्त्र में दस्यु का वर्णन यों आया है कि वे किसी ईश्वर वा देव को नहीं मानते, और न दानादि शुभ कर्म ही करते हैं। वे अपने मुख को ही हवन कुण्ड समझते हैं। यथा—

स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत । ऋ० १।५१।५॥

(ये) जो (स्वधाभिः) विविध अन्नों से (अधि+शुप्तौ) मुख में ही (अजुह्वत) हवन करते हैं। अन्य मन्त्र में लिखा है कि वे नानारूप धारण कर नाना कुकर्म करते हैं।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ ऋ० ७।१०४।२२॥

(उलूकयातुम्) जो उलूक के रूप बना कर आक्रमण करते हैं (शुशुलूकजातुम्) जो छोटे उलूक के समान चलता है (श्वयातुम्) कुत्ते के समान रूप बनाने वाले इत्यादि प्रकार के दुष्ट मनुष्यों को हे राजन्! समाज से दूर कर, इत्यादि।

इनको राक्षस इस लिये कहते थे कि इनसे रक्षा अति कठिनता से होती थी। कच्चे मांस के खाने के कारण वे क्रव्याद कहाते थे। पिशाच भी इसी कारण कहाते थे। इसी प्रकार के अन्यान्य नाम हैं। एक नाम कीकट है (किं क्रियाभिः) जो कहा करते हैं कि शुभ कर्म करने से क्या होता है, इससे विपरीत को आर्य्य कहते हैं। जिसमें सर्व श्रेष्ठ गुण हों। धीरे धीरे आर्य्यों का एक दल बन गया। वेद में किसी देश, जाति, व्यक्ति का वर्णन नहीं है, तब पक्षपातादि दोष कैसे आ सकता है?

५—जिसमें मनुष्य की स्थिति अर्थात् आकृति आयु जन्म, कर्म और मुक्ति प्रभृति का अच्छे प्रकार विवरण हो।

इस लक्षण का भी सर्वत्र अभाव ही पाते हैं, क्योंकि कोई कहते हैं कि पहले आदमी लम्बाई में उनचास हाथों के होते थे, उनकी आयु भी दो चार हजार वर्षों की होती थी। जन्म कर्मों का भी कोई ठिकाना नहीं। क्योंकि कोई आदमी सूर्य्य से, कोई अग्नि से, कोई घड़े से, कोई कान से, कोई

---

१. इस विषय के विस्तार से परिज्ञान के लिये श्री पं० रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य लिखित 'वेद में आर्य-दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन' पुस्तक नितान्त उपयोगी है। प्रकाशक—रामलाल कपूर ट्रस्ट—मूल्य प्रचारार्थ ७५ पैसे मात्र।

नदी और कोई समुद्र से, कोई हाथ से ही उत्पन्न हुए। कोई जन्म लेते ही सूर्य्य को निगल गए। कोई समुद्र ही पी गये। कोई वशिष्ठ आदि इत ने समर्थ हुए कि जिनकी गौ से मनुष्य की विविध जातियां उत्पन्न हुई, इत्यादि मनुष्य के सम्बन्ध में नाना कल्पनाएं ईश्वरीय पुस्तकाभास ग्रन्थों में देखते हैं।

परन्तु आश्चर्य्य यह है कि वेद में ऐसी एक बात भी नहीं। जो आकृति मनुष्य की आज है, पहले भी करीब वही थी। हां यह सत्य है कि सभ्यता असभ्यता के कारण मनुष्य की आकृति में कुछ भेद होता रहता है जैसे भारत के कोल भील हैं।

वेद में मनुष्य की आयु माध्यमिक संख्या सौ वर्ष है। क्वचित् ३०० सौ वर्ष की आयु के लिये प्रार्थना है किन्तु वैसा एक ही मन्त्र है —"त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि। अनेक मन्त्रों में शतवर्ष की ही आयु का वर्णन आता है यथा—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम्। यजु० ३६।२४।

पुनः

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्। ऋ० १०.८५।३९।।
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।। य० २५।२२।।

जैसे आजकल भी कोई पौत्र के जन्म तक जीते हैं, वैसे ही यहां प्रार्थना है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः।। ऋ० १।१५८।६।।

यहां दशम युग शब्द देख कोई कोई कहते हैं कि दीर्घतमा दशयुग तक जीते रहे। परन्तु वेद का तात्पर्य वे नहीं समझते हैं। जब सैकड़ों मन्त्रों में शतवर्ष आयु की ही चर्चा है तब एक मन्त्र में इसके विरुद्ध कैसे होगी ? और भी चारों वेदों में सत्ययुग आदि का कहीं भी वर्णन नहीं। चार युगों की कल्पना बहुत ही आधुनिक और अवैदिक है। यहां युग नाम मास का है। क्योंकि कृष्ण और शुक्ल दो पक्षों के योग से मास बनता है। दशम युग में मामतेय - ममता युक्त जीव उत्पन्न होता है, यह इसका अर्थ है जैसा कि वेद में आता है।

दशमास्यांच्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि।। ऋ० ५.७८।८।।

आजकल भी सुपुष्ट बालक दशमास में उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण वेद में दशम मास ही मनुष्योत्पत्ति की अवधि मानी गई हैं, इसके विरुद्ध कहीं वर्णन नहीं है। परन्तु इसके विरुद्ध अन्यान्य ग्रन्थ में लेख आता है। मनुष्य के जन्म के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैसे अन्यान्य जीवों का आविर्भाव इस पृथिवी पर हुआ, उसी नियम के अनुसार मनुष्य सृष्टि भी हुई।

मनुष्य सृष्टि का कोई विलक्षण वर्णन वेद में नहीं। यदि मनुष्य मिट्टी से बनाया गया तो अन्यान्य जीव पशु आदि किससे बनाए गए? क्या प्रत्येक जीव को रचने के लिए भिन्न भिन्न सामग्री थी? सो हो नहीं सकता। पुनः मिट्टी से मनुष्य बनाया गया, इसका क्या आशय है? क्या आत्मा भी मिट्टी ने बनाया गया? यदि ऐसा ही है तो मरण के साथ इसकी समाप्ति हो जायगी। पुनः किसको दोज़ख और बिहिश्त? इस हेतु वेद में मनुष्य शरीर की रचना का कोई विशेष वर्णन नहीं, और आजकल वैज्ञानिक सिद्धान्त से भी यही सिद्ध होता है। जीव का अनादित्व आगे मैं सिद्ध करूंगा।

मुक्ति के विषय में इतना वक्तव्य है कि जब तक प्रकृति और ईश्वर का पूर्ण ज्ञान नहीं होता और ईश्वर की आज्ञा पर नहीं चलता, तब तक वह दुःख से नहीं छूटता। अज्ञान ही दुःख का मूल है। अतः वेद में कहा गया है कि—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णम्' ॥ यजु० ३१।१८॥

मनुष्य के कर्मों का वर्णन वेद के आदि से अन्त तक है। इस पर हम विशेष लिखना नहीं चाहते। इतना कहकर समाप्त करते हैं कि वेद के स्थान स्थान में यह वर्णन आता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि से सत्यता की गवेषणा (खोज) करे। मनुष्य कभी अनन्त सृष्टि का सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

"मनुष्य की सर्वज्ञता"

शोक की बात है कि प्रत्येक सम्प्रदायी ग्रन्थ में आचार्यों को सर्वज्ञ कहा है किन्तु जब उनके ग्रन्थों की परीक्षा करते हैं तो वे आजकल की विद्या के सामने एक बालक ही प्रतीत होते हैं जिस पृथिवी पर वे पर वे निवास करते थे उसकी दशा जिन्हें नहीं मालूम थी। इतने पर भी उनके शिष्य उनको सर्वज्ञ बतलाते हैं तो कहा करें। मनुष्य की जिह्वा को कोई रोक नहीं सकता।

वेद में कहीं भी वर्णन नहीं आया कि अमुक ऋषि सर्वज्ञ हुए हैं। इस लिये वेद की सत्यता जितनी ही परीक्षित होती है, उतनी अधिक अधिक मालूम होती है। अतः वेद में सत्यता की ओर जाने के लिए प्रार्थना आती है।

'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' (म० ब्रा० १।६।८॥) इत्यादि।

७—जिसमें सृष्टि के अनादित्व अनन्तत्व और वास्तविक स्वरूप का उल्लेख हो।

यह लक्षण भी किसी अन्य धर्म पुस्तक में नहीं घटता। सत्पदार्थवादी कोई भी सम्प्रदाय नहीं। यदि ईश्वर के साथ साथ अनादि कोई पदार्थ नहीं था तो इस जगत् को किससे बनाया। यदि कहा जाय कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। तत्काल ही उत्पन्न करा लिया। तो मैं पूछता हूं कि ईश्वर सृष्टि के पहले क्या करता था और कहां था किसका स्वामी और किसका अधिपति था? वस्तु रचने के पहले सृष्टि का ज्ञान भी उसको न होगा। क्योंकि उसने पहले सृष्टि देखी नहीं। किन्तु परीक्षा से प्रतीत होता है कि किसी वस्तु का विनाश नहीं होता किन्तु केवल रूपान्तर मात्र

होता है। इससे पदार्थ का अनादित्व सिद्ध है। ईश्वर ने कहा कि सृष्टि हो जाय और सृष्टि हो गई यह कैसी आश्चर्य की बात है। कोई कहते हैं कि पानी के ऊपर बैठे हुए ब्रह्मा ने सारी सृष्टि रची इत्यादि अनेक मिथ्या कल्पनायें हैं॥

वेद में विस्पष्ट रूप से कहा गया है कि पहले प्रकृति थी। जीव भी पहले से ही थे। ईश्वर इनका निमित्त कारण है। अभाव से भाव नहीं हुआ किन्तु भाव का विकाश हुआ है। वेद के दो मन्त्रों में सृष्टि किस प्रकार बनी इस विषय के प्रश्न आते हैं।

यथा—

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोत् महिना विश्वचक्षाः॥ यजु० १७।१८॥

जब कुम्भकार घटादि वस्तु बनाना चाहता है तब मृत्तिका आदि प्रयोजनीय वस्तुओं को एकत्रित कर किसी एक स्थान में बैठ घटादि निर्माण करता है। यह लोक में देखते हैं। यह लौकिक न्याय वेद में भी प्रवृत्त होना चाहिये। अतः प्रथम इस प्रकार प्रश्न करते हैं। यथा (अधिष्ठानम्) इस जगत् को बनाते हुए ईश्वर का निवास स्थान (किं स्वित्+आसीत्) क्या था और (आरम्भणम्) आरम्भ करने की सामग्री (कतमत्+स्वित्) कौनसी थी (यतः) जिस काल में (भूमिम्+द्याम्+च) पृथीव और द्युलोक को (जनयन्+विश्वकर्मा) उत्पन्न करता हुआ विश्वकर्त्ता (विश्वचक्षः) और सर्वद्रष्टा परमात्मा (महिना) अपने सामर्थ्य से (वि+और्णोत्) समस्त जगत् को ढांक लेता है॥

किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥ यजु० १७।२०॥

(किम्+स्वित्+वनम्) यह वन कौन था (कः+उ सः वृक्षः+आस) और वह वृक्ष कौन था (यतः द्यावापृथिवी) जिस वन और वृक्ष से पृथिवी से लेकर द्युलोक (निष्टतक्षुः) अलङ्कृत किया गया है (मनीषिणः) हे विद्वानो (मनसा+इत्+तत्) मन से यह भी (पृच्छत) उससे पूछो कि (भुवनानि+धारयन्) भुवनों को धारण करता हुआ (यद्+अधि+अतिष्ठत्) वह जिस स्थान में खड़ा रहता है वह कौनसा है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ यजु० १७।१९॥

(विश्वतश्चक्षुः) जो सब देखता और (विश्वतोमुखः) जिसका मुख सर्वत्र है (विश्वतोबाहुः) जिसका बाहु और (विश्वतस्पात्) पैर सर्वत्र हैं वह (एकः+देवः) एक ही देव (द्यावाभूमी+जनयन्) सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम्) मानो अपने बाहु से (पतत्रैः) परमाणुओं के साथ (संधमति) गति देता है। अर्थात् सर्व परमाणुओं में गति उत्पन्न करता है॥

पतत्र नाम नित्य पदार्थ का है वे पहिले से ही थे उनसे ही परमात्मा ने यह सृष्टि रची इत्यादि इसका आशय है। इसी प्रकार अनन्त सूर्य्य, अनन्त ताराएं और अनन्त पृथिवी आदिक लोक

लोकान्तर हैं इत्यादि वर्णन वेदों में आता है अतः इस लक्षण के अनुसार भी वेद ही ईश्वरीय कहे जा सकते हैं ॥

७—जिसमें जीव के पूर्वभाग, अविनश्वरता तथा कर्मानुसार निग्रहानुग्रह आदिका अनुशासन हो ।

जीव अनादि हैं इसके वर्णन से वेद भरे हुए हैं । "इन्द्रः" यह नाम जीव का है । यहां मैं इसका केवल एक ही प्रमाण देता हूं । आंख, कान, नाक, इत्यादिकों का नाम इन्द्रिय इस लिये है कि इन्द्र जो आत्मा उसके ये दर्शक हैं । इस अर्थ में इन्द्र शब्द से इन्द्रिय बना है । । इन्द्र अनादि हैं सदा रहते हैं इसका निरूपण वेद में बहुत हैं । पुनः

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ० १।१६४।२०॥

इस ऋचा से भी जीव का अनादित्व सिद्ध होता है । जो आदमी जीव को अनादि नहीं मानते हैं उनके पक्ष में बहुत दोष हैं । परमेश्वर ने इनको असमान क्यों बनाया । किसी को दुःखी और किसी को सुखी । पुनः अभाव से भाव कैसे हो सकता है । पुनः जब एक नई चीज बनाई तो अच्छा परमात्मा अच्छे पदार्थ बनावे । निकृष्ट और उत्कृष्ट शरीर क्यों । पुनः बुद्धि भी ऐसी ही देता जिससे उसकी शुभकर्म में ही प्रवृत्ति होती । 'पुनः क्यों किसी को मुक्ति मिले और किसी को नहीं' क्योंकि जैसा ईश्वर चाहता है वैसा ही उससे काम करवाता फिर इसमें दोषी कौन ? एवं मनुष्य जीव और पशु इत्यादिक जीव में भेद मानते हैं । पशु आदि में आत्मा मानते ही नहीं । कुरान में वर्णन आता है कि पहले ही से अल्लाह ने कुछ मनुष्यों को नरक के लिए और कुछ मनुष्यों को स्वर्ग के लिए बनाया इत्यादि अनेक बातें अयौक्तिक कही गई हैं । वेद में कर्मानुसार सब विभाग हैं । लोक में भी कर्मानुसार चोर को दण्ड और शिष्ट को पारितोषिक दिये जाते हैं । अतः इस लक्षण पर भी विचार करने से ईश्वरीय ग्रन्थ वेद ही प्रतीत होता है ।

८—जिसमें मिथ्या माहात्म्य न हो ।

वेद में कहीं भी चर्चा नहीं है कि ईश्वर के नाम जपने से या किसी विशेष सूक्त के पढ़ने से या केवल ईश्वर पर या ऋषियों के ऊपर विश्वास करने से तुम कृतपापों से छूट जाओगे । इसके अतिरिक्त वेद में किन्हीं मन्दिरों का उल्लेख नहीं जिनके दर्शन से आदमी पापरहित हो जाए या तीर्थों का भी वर्णन नहीं जहां यात्रा करने मात्र से मनुष्य अपने को निष्पाप समझने लगता हो । सम्पूर्ण वेद के अध्ययन से भी वह अध्येता लाभ नहीं उठा सकता यदि उसकी आज्ञा के अनुसार वह आचरण नहीं करता और ईश्वरीय विभूतियों को अच्छी तरह नहीं जानता ।

यथा—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ० १।१६४।३९॥

तथा वेदों में पापों से छूटने की प्रार्थनाएं आती हैं किन्तु उन प्रार्थनाओं के करने से वे ऋषि या कोई कृतपाप से छूट गए हैं या छूटते हैं वैसा कहीं वर्णन नहीं। क्योंकि कृत कर्मों का फल उसे अवश्य भोगना ही होगा।

पाप वाचक शब्द—वैदिक पापवाचक शब्द ही दिखला रहे हैं कि कृतपापों से कर्त्ता कदापि छुटकारा नहीं पा सकता जैसे पाप के नामों में से एक नाम "किल्विष" है अर्थात् किल्=कुत्सित विष जो वहुत बुरा विष हो। जैसे विष के खाने से उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। वैसे ही दुष्कर्म करने का फल वह कर्त्ता अवश्य पावेगा। दूसरा नाम अंहस है अर्थात् अच्छे प्रकार आघात करनेवाला। इसमें सन्देह नहीं कि कृतपाप बुरी तरह से आदमी को वींधता है जिसके वेध से कर्त्ता को बचना कठिन है।। तीसरा नाम "दुरित" है जिसका आगमन दुःखदायक हो। इस प्रकार प्रत्येक पापवाची शब्द वतला रहा है कि कृतपाप का फल अवश्य भोगेगा। परन्तु आश्चर्य की बात है कि केवल ईसा के ऊपर विश्वास या राम राम कहने मात्र से पाप से छूट जाता है। ऐसा वर्णन अन्यत्र विद्यमान है।।

९—जो ग्रन्थ लौकिक विज्ञान से विरुद्ध न हो।

इस लक्षण का तो सर्वथा सब ही सम्प्रदायी पुस्तकों में अभाव ही है। मुझे वड़ा आश्चर्य लगता है कि जो ग्रन्थ प्रत्यक्ष ज्ञान से विरुद्ध हो वह ईश्वरीय कैसे कहा सकता है। ईश्वरीय क्या विद्वत्प्रणीत भी वह कहलाने योग्य नहीं हो सकता। इसी से मालूम होता है कि वेद को छोड़ भूमि पर कोई ग्रन्थ ईश्वरीय नहीं।

१—पृथिवी आदि का सूर्य के चारों ओर भ्रमण—लौकिक विज्ञान, प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध कर रता है कि अन्यान्य चन्द्र शुक्र वृहस्पति प्रभृति ग्रह के समान यह पृथिवी भी दौड़ रही है। सूर्य्य के चारों तरफ घूम रही है और यह गोल है इत्यादि। इसके अनुकूल कोई भी धर्म ग्रन्थ नहीं, किन्तु वेद भगवान् इसके अनुकूल हैं। यथा—

"कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः को विवेद।
विश्वं त्मना विभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव॥ ऋ० १।१८५।१॥

इस ऋचा से केवल पृथिवी ही का नहीं किन्तु समस्त नक्षत्रराशि का नियमबद्ध होकर घूमना सिद्ध होता है और ऊपर नीचे पूर्व पश्चिम आदि व्यवहार मात्र के लिये कल्पित है वास्तविक नहीं यह भी इस से जाना जाता है।

पुनः यह पृथिवी सूर्य्य के चारों तरफ घूमती है। इसमें यह ऋचा प्रमाण है—

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणित् विश्वायवे नि शिश्नथः॥ ऋ० १०।२२।१४॥

पुनः सूर्य्य अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी को चारों तरफ घुमा रहा हे इसमें यह ऋचा प्रमाण है—

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ।। ऋ० १०।१४९।१।।

इससे भी सिद्ध होता है कि अनेक नक्षत्र इस सूर्य्य के चारो तरफ घूम रहे हैं।

२—चन्द्रमा के प्रकाश का कारण सूर्य रश्मियां—चन्द्रमा सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ।। ऋ० १।८४।१५।।

इस ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य्य कहते हैं कि—

तदेनोपेक्षितव्ययम्—आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति

पुनः—

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्य्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ।
ऋ० १०।८५।९।।

इससे भी यही सिद्ध होता कि सूर्य्य से ही चन्द्र प्रकाशित है। ऐसे ऐसे अनेक ऋचाएं वेद में हैं।

ग्रहण की चर्चा—

३—ग्रहण की भी चर्चा वेद में आती है। पृथिवी की छाया से चन्द्र ग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्य्य ग्रहण होता है। इस विषय के प्रमाण में ये ऋचाएं हैं यथा—

यत्त्वा सूर्य्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ।। ऋ०५.४०।५।।
यं वै सूर्य्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ।। ऋ० ५।४०।९।।

४—आकर्षणशक्ति—आकर्षण शक्ति का भी विवरण वेद में पाया जाता है—

यथा—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।। ऋ० १।३५।२।।

अतएव वेद में सूर्य का एक नाम ही कृष्ण आया है क्योंकि वह अपनी ओर पृथिवी आदि भुवनों को खैचे हुए स्थित है यथा—

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपोवसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ।। १।१६४।४७।।

वेद में सूर्य्य का एक और नाम विचर्षणि आता है। कृष धातु से चर्षणि शब्द सिद्ध होता है।

कृष धातु का अर्थ प्रायः आकर्षण होता है। इसी से आकर्षण आकृष्टि और कृष्ण आदि अनेक शब्द बनते हैं। ऋचा यह है—

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्य्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ।। ऋ० १।३५।९।।
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ।। ऋ० १।१६४।१३।।

इस एक ऋचा से कई वस्तु सिद्ध होती हैं।

(क)—भुवनानि विश्वा—सम्पूर्ण भुवन सूर्य्य के रथ पर स्थित है। यह सिद्ध करता है कि पृथिव्यादि लोकों से यह सूर्य्य बहुत बड़ा है।

(ख) भूरिभारः— इससे आकर्षण सिद्ध होता है।

(ग) सनाभिः—बन्धनार्थक णह धातु से नाभि बनता है। जैसे इस मानव शरीर का नाभि सम्पूर्ण शरीर का बान्धनेवाला एक प्रकार से है वैसे ही यह सूर्य्य पृथिवी आदि लोकलोकान्तरों को बान्धने वाला है। यह अपनी आकर्षणशक्ति से ही अपने परितः स्थित लोकों को खैंचकर यथावास्थित है पुनः—

व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः। ऋ० ७।९९।३।।

रोदसी यह नाम द्यावापृथिवी दोनों का है इस कारण यहां द्विवचन है। जो रोकनेवाली हों वे रोदसी। प्रथम "रोदसी" कहने से सिद्ध है कि यह पृथिवी और इसके अतिरिक्त अन्यान्य लोक भी रोदसी है अर्थात् अपनी ओर आकर्षण करनेवाली है।

इसी के अनुसार भास्करीय ग्रन्थों में यह श्लोक आता है—

आकृष्टशक्तिश्च मही तयायत्
खस्थं गुरु स्वाभिमुखी करोति ।
आकृष्यते तत् पततीव भाति
समे समन्तात् कुरियं प्रतीतिः ।।

वैदिक भाषा में एक और भी विचित्रता है कि वस्तुओं के नाम ही ऐसे रक्खे गए हैं जिनसे उनके स्वभाव और स्थिति बीजरूप से प्रतीत होती है।

जगत् और संसार शब्द—ये दोनों शब्द ही प्रकाशित करते हैं कि प्रत्येक पदार्थ स्वरूप से चलायमान हैं। पुनः पुनः वारम्बार गच्छतीति जगत्=जो सर्वथा गति में है उसे जगत् कहते हैं। तथा संसरतीति संसारः जो अच्छे प्रकार चल रहा है वह संसार। एक साधारण से साधारण बुद्धि-वाला भी अनुमान कर सकता है कि पृथिवी पर से चन्द्र नक्षत्र राशि चलते दीखते हैं वैसे ही अन्य-लोकस्थ प्राणियों को पृथिवी चलती दीखती होगी और जब आकाशस्थ बड़े से बड़े नक्षत्र गतिमान् हैं तब यह भूमि गतिमती क्यों नहीं। पुनः—

बिना आधार के भ्रमण करते हुए अनन्त नक्षत्र राशि अपने अपने स्थान में विद्यमान है तो यह पृथिवी इस प्रकार की क्यों नहीं अतएव पृथिवीके नामों में से एक नाम ही गौ है 'गच्छतीति गौः' जो चलता है उसे गौ कहते हैं इत्यादि अनेक विज्ञान इसमें हैं । अतः यही वेद ईश्वरीय पुस्तक है ।

१०—जिसमें ईश्वरीय कार्य्यों के उपलक्ष में उत्सव, पर्व पूजा आदि का विधान हो ।

इस लक्षण के उपर भी विचार करने से वेद ही ईश्वरीय ग्रन्थ प्रतीत होता है क्योंकि इसमें ईश्वरीय कार्य्यों के महात्म्य के वढ़ाने और उन्हें जानने के लिए ही बड़े बड़े यज्ञों का विधान किया गया है ।

१—प्रथम प्रत्येक मास में यज्ञ करने के लिए दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि का विधान है। अमावस्या तिथि में प्राकृत आश्चर्य्य घटना होती है । उस तिथि में चन्द्रमा किञ्चिन्मात्र भी नहीं दीखता । इसके विरुद्ध पूर्णिमा तिथि में सम्पूर्ण चन्द्र दृश्य होता है। पुनः उसी दिन से घटने लगता है । यह ईश्वरीय विचित्र प्रवन्ध की वात है और प्रत्येक मनुष्य को चन्द्र के क्षय और वृद्धि का कारण जानना है अतः वेद में इन दोनों तिथियों पर विशेष रूप से पूजा पाठ की विधि हैं । इसी प्रकार चतुर्मासेष्टि यज्ञ का इसलिये विधान है कि वर्षा ऋतु भी एक प्राकृत अपूर्व घटना है । इतने मेघ कहां से आ जाते हैं, किस प्रकार समुद्र से वाष्प होकर मेघ उठते हैं, इन मासों में इतने वाष्प क्यों होते, किसी देश में न्यून और किसी देश में अधिक वृष्टि क्यों होती इत्यादि वर्षा सम्वन्धी अनेक विषय प्रत्येक मनुष्य को विज्ञातव्य हैं ।

ज्योतिषामयन, गवामयन, आङ्गिरसनामयन अश्वमेध इत्यादि महान् यज्ञ इसलिये किये जाते हैं कि सौरवर्ष और चन्द्र वर्ष में क्यों कर भेद हो जाता है पुनः दोनों की एक रूप में व्यवस्था कैसे हो सकती है ? ऋतु परिवर्तन कैसे होता और ऋतु का विभाग किस तिथि से आरम्भ होकर किस तिथि पर समाप्त करना चाहिये एवं सौरमास की गणना और पूर्ति किस रीति पर होनी चाहिये ? इत्यादि वर्ष सम्वन्धी विज्ञान के हेतु ये ज्योतिषामयन आदि तीनों यज्ञ किये जाते हैं और वर्षान्त्य दिवस मनाया जाता है इसी प्रकार अग्निष्टोम आदि यज्ञों का विधान है ।

आर्य्यों के प्रात्यहिक क्रियाओं पर ध्यान देने से भी यही बात प्रतीत होती है । जैसे सन्ध्योपासन । यद्यपि परमात्मा की उपासना जब चाहे तब कर सकता है तथापि प्रातः और सायंकाल प्राकृत विचित्र घटनाएं होती हैं । प्रातः और सायंकाल में कितने परिवर्तन होते हैं आप लोग प्रति दिन अनुभव करते ही हैं । एक तरफ समस्त नक्षत्र राशियों का अस्त होना दूसरी ओर सूर्य्य का उदित होना । अन्धकार का विनाश और ज्योति का प्रकाश । मनुष्य जाति के लिये शयन का परित्याग और दूसरी और जीवन का आरम्भ । प्रातः काल होते ही कुछ जन्तुओं को छोड़ सब ही प्राणी जाग जाते हैं और अपनी-अपनी वोलियों से रात्रि की सन्नाहटों को तोड़ डालते हैं । जो समय एक प्रलय सा महा भय का कारण चोर डाकू लम्पटों का महा सहायक वनाया वही अव सृष्टि का, आनन्द का और साधुजनों का अपना होगया । थोड़ी ही देर की निशीथ में कितनी घवड़ाहट और कितनी निःशब्दता छा गई थी । प्रभात होते ही वे सव आपत्तियां जाती रहीं । इत्यादि शतशः परिवर्तन के साथ जो प्रातः काल होता है उस समय में वैदिक सन्ध्या का विधान है । इसी प्रकार सायं

काल में। ये दोनों ही काल ईश्वरीय प्रवन्ध की आह्लादजनक लीलाएं दिखला रहे हैं। इसमें ईश्वरोपासन करने से चित्त अति प्रसन्न होता है।

अग्निहोत्रादिक कर्म भी ईश्वरीय विभूतियों के प्रदर्शक हैं। प्रातः और सायंकाल वैदिक गण स्वाहा शब्द द्वारा अपने सर्वस्व का त्याग लोकोपकारार्थ करते हैं। चारों ओर सुगन्धिमय द्रव्य फैल जाते हैं। लोगों का चित्त प्रसन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त उपासक जन मानो प्रति दिन अपने अभिमान और क्रोधादिक दुर्गुणों को अग्नि में भस्म किया करते हैं इत्यादि अग्निहोत्र के लाभ पर विचार करने से मालूम होगा कि ये सब कर्म ईश्वरीय विभूतिप्रदर्शक है।

यज्ञ में पशु हिंसा—बहुत आदमी कहते हैं कि **अश्वमेध, गोमेध और नरमेध** आदि यागों का विधान जिसमें हो वह ईश्वरीय कैसे ? और उन यागों में पशु प्रभृतियों का वध होता था इस में सन्देह नहीं, क्योंकि इस समय में भी काली दुर्गा के नाम पर सहस्रशः पशु मारे जाते हैं। गङ्गा आदि नदियों और कई एक धर्मस्थानों में नर-बलिदान भी प्रचलित ही था, जिसको इंगलिश गवर्नमेण्ट ने बलात्कार रोका है, इत्यादि आक्षेपों के कारण अश्वमेध यज्ञ का यहां संक्षिप्त विवरण दिखलाना परमावश्यक है।

अश्वमेध यज्ञ का वैदिक तात्पर्य इस प्रकार है—वैदिक भाषा में 'अश्व' नाम प्राणों और इन्द्रियों का है। यथा "इन्द्रियाणि हयानाहुः।" मेध नाम संगम का है। प्रत्येक जीव में प्राणों और इन्द्रियों का सङ्गम-संयोग किस प्रकार हुआ है, और उसके संयोग से प्राणियों की कितनी वृद्धि हुई, और मनुष्य में इन्द्रियसंख्या और प्राणसंख्या तुल्य रहने पर भी तथा एक ही वंश में अथवा अति समीपी सम्बन्ध में भी इतना भेद क्योंकर हो जाता है ? एक आदमी की बुद्धि सद्व्यवहार की ओर और दूसरे की असत्यता में जा गिरती है। कोई वीरता को, कोई विद्याव्यवसाय को, और कोई धन संचय को पसंद करने लगता है, इसका क्या कारण है ? एवं तत्तद् व्यवहार करने से मानव-हृदय में तथा मुखों के ऊपर क्या क्या परिवर्तन होते हैं, इत्यादि विज्ञान के हेतु अश्वमेध यज्ञ किया जाता था। वैदिक क्रिया के ऊपर ध्यान देने से यही अर्थ विस्पष्ट होता है। मैं अति संक्षेप से इसकी दो एक बात यहां दिखलाता हूं—

यजुर्वेद ३० वें अध्याय की आज्ञानुसार १७२ प्रकार के व्यवसायी तथा चोर डाकू आदि मनुष्य इस यज्ञ में सञ्चित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के मनुष्य हों, तो इसमें उन्हें भी सम्मिलित कर लेना चाहिये। उन में से कुछ नाम ये हैं :—

ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र, तस्कर, वीरहा, क्लीव, अयोगू, पुंश्चलू, मागध, सूत, शैलूष, सभाचर, भीमल, रेम, कारि, स्त्रीषख, कुमारी पुत्र, रथकार, तक्षा, कौलाल, कर्मार, मणिकार, वय इत्यादि।

प्रिय पाठको ! इस एक विवरण से आप समझ सकते हैं कि हत्या के लिये यह यज्ञ नहीं था। क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि १७२ प्रकार के मनुष्य इस में मारे जाते थे, और इससे होम किया जाता था ? कदापि नहीं। **यह एक प्रकार की प्रदर्शनी थी। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिकों के स्वभाव से प्रजाओं को परिचित होने के वास्ते यह प्रदर्शनी की जाती थी।**

रामलाल कपूर ट्रस्ट और उस के सहयोगियों द्वारा प्रकाशित

कतिपय नये प्रकाशन

१—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन (भाग १)—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन जो इस बार परिवर्धित और संशोधित संस्करण के रूप में तीन भागों में छप रहे हैं, उसका लगभग ६०० पृष्ठों का प्रथम भाग प्रकाशित हो गया है। मूल्य ३५ रु० पक्की सुन्दर पूरे कपड़े की जिल्द। तीनों भागों का मूल्य १०० रुपया होगा। जो महानुभाव इसका पेशगी ६० रुपया मूल्य मनिआर्डर से भेज देगें, उन्हें तीनों भाग केवल ६० रु० में दिये जायेंगे (डाक व्यय पृथक्)।

तीनों भागों पर लगभग ५५ सहस्र रुपया व्यय होगा। प्रथम भाग पर १७ सहस्र रुपया व्यय हुआ है। सभी ऋषिभक्त पाठकों से निवेदन है कि ६० रुपया देकर इस के स्थायी ग्राहक बनें या इस ग्रन्थ के छपवाने में आर्थिक सहयोग देकर ट्रस्ट की सहायता करें। आप महानुभावों के सहयोग की आशा से ही ट्रस्ट ने इतना व्यय-साध्य कार्य हाथ में लिया है। दूसरा भाग छप रहा है।

२—गोपथ ब्राह्मण (मूल मात्र)—इस ग्रन्थ का प्रकाशन रा० ला० कपूर ट्रस्ट के सहयोगी **"सावित्री देवी बागड़िया ट्रस्ट (कलकत्ता)"** ने किया है। लगभग ४० वर्ष से अप्राप्य ग्रन्थ का सुन्दर शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है। इस का सम्पादन डा० श्री पं० विजयपाल जी विद्यावारिधि ने बड़े परिश्रम से किया है। सुन्दर शुद्ध मुद्रण तथा पक्की सुन्दर जिल्द युक्त का मूल्य ४०-००।

३—मीमांसा शावरभाष्य=व्याख्या (भाग ३)—इस भाग का लेखन मुद्रण और प्रकाशन पूर्व भागों के समान ही किया गया है। कागज की दुर्लभता के कारण इस भाग में दो प्रकार का कागज न लगा कर एक ही प्रकार का सुन्दर सुदृढ़ कागज लगाया गया है। कागज और छपाई के बढ़ते व्यय के कारण इस भाग का मूल्य अधिक रखना पड़ा है। सुन्दर सुदृढ़ पक्की पूरे कपड़े की जिल्द का मूल्य ५० रु० और साधारण जिल्द का मूल्य ४५ रु० है (कागज दोनों में समान है)।

भावी प्रकाशन

१. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन का द्वितीय भाग छप रहा है। सम्भवत: मई जून तक पूरा हो जायेगा।

२. बौधायन श्रौतसूत्र (दर्शपूर्णमास)—बौधायन श्रौतसूत्र के दर्शपूर्णमास भाग अति प्राचीन भवस्वामी जी की व्याख्या सहित प्रकाशित किया जा रहा है।

३. निरुक्त-श्लोक-वार्तिक—निरुक्त की प्राचीन एक मात्र उपलब्ध जीर्ण ताडपत्र पर लिखित प्रति के आधार पर डा० श्री पं० विजयपाल जी विद्यावारिधि इस ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे हैं। यह ग्रन्थ भी सन् १९८१ में प्रकाशित हो जायेगा।

४. संस्कृत पठन पाठन की अनुभूत सरलतम विधि का अंग्रेजी अनुवाद—यह अंग्रेजी अनुवाद आगरा निवासी श्री सुन्दरलाल जी ने किया है। हमारे पाणिनि विद्यालय के आचार्य डा० श्री पं० विजयपाल जी विद्यावारिधि ने इस का संशोधन किया है। इस से अंग्रेजी भाषा के माध्यम से संस्कृत पढ़नेवालों को बहुत लाभ होगा। यह ग्रन्थ भी जून १९८१ तक छप जायेगा ऐसी आशा है।

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

वेद और कर्म काण्ड

१ यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथम भाग) अप्राप्य—
यजुर्वेदभाष्य-विवरण (द्वितीयभाग) —२०-००
२. ऋग्वेदभाष्य भाग १ ३५-००
भाग २ — ३०-०० भाग ३ — ३५-००
३. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर १ ५०
अथर्ववेदभाष्य—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय
काण्ड १८,१९—१६-००; काण्ड२० —१५-००
५. माध्यन्दिनपदपाठः—(यजुर्वेद पदपाठ) २-००
६. गोपथ ब्राह्मण (मूल) ४०-००
७. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा यु० मी० ३०-००
८. ऋग्वेद की ऋक्संख्या— ,, १-००
९. वेद-संज्ञा-मीमांसा — ,, ०-७५
१०. वैदिक-छन्दोमीमांसा — ,, २-००
११. वेदों का महत्त्व, वेदार्थ-मीमांसा—,, ४-००
१२. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का स्वरूप श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ०-७५
१३. वेद और निरुक्त— ,, ०-७५
१४. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—, ० ७५
१५. त्वाष्ट्री-सरण्यू आख्यान का वास्तविक स्वरूप—पं० धर्मदेव निरुक्ताचार्य ०-७५
१६. वेद में आर्य-दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री ०-७५
१ यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—
सजिल्द १२-५०, बढ़िया जिल्द १५-००
१ वैदिक-पीयूष-धारा—श्री देवेन्द्रकुमार कपूर।
सजिल्द १०-००, बढ़िया जिल्द १५-००
१ शिवशंकरीय लघुग्रन्थ पञ्चक— वसिष्ठ-नन्दिनी, चतुर्दश भुवन आदि ५-००
२ संस्कारविधि— ४-७५ सजिल्द ६-००
आर्य-समाज-शताब्दी संस्करण—विविध सूचियों सहित सजिल्द १०-००,राज-संस्करण १२-००
२१. संस्कारविधि-मण्डनम्—वैद्य रामगोपाल ३-००
२२ वैदिक-नित्यकर्म-विधि— (व्याख्या सहित) युधिष्ठिर मीमांसक ३-००, सजिल्द ४-००
२३. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—मूलमात्र ०-६०
२४. पञ्चमहायज्ञप्रदीप—मदनमोहन विद्या० ३-००
२५. हवनमन्त्र —(मूलमात्र) ०-३०
२६. सन्ध्योपासनविधि —(अर्थसहित) ०-६५
२७ सन्ध्योपासनविधि —अर्थ और दैनिक हवन-मन्त्र सहित - ०-५०

शिक्षा-निरुक्त-व्याकरण

२८. वर्णोच्चारणशिक्षा —ऋषि दयानन्द ०-५०
२९ शिक्षासूत्राणि —आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र १-५०
३०. शिक्षा-शास्त्रम् जगदीशाचार्य ५-००
३१. अरबी शिक्षा-शास्त्रम् — ,, ५-००
३२. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—शुद्ध पाठ २-००
३३. अष्टाध्यायी परिशिष्ट— ४-००
३४. धातुपाठ धातु सूची सहित २-००
३५. अष्टाध्यायी-भाष्य —प्रथम भाग — २४-००
द्वितीय भाग—यन्त्रस्थ, तृतीय भाग २०-००
३६. महाभाष्य—यु०मी० कृत हिन्दीव्याख्या सहित।
प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-००
तृतीय भाग २५-००
३७. संस्कृत पठनपाठन की अनुभूत सरलतम विधि
प्रथम भाग ७-००, द्वितीय भाग ८-००
३८. उणादिकोष—ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित। शतशः टिप्पणियों और विविध परिशिष्टों सहित अजिल्द ७-००, सजिल्द १०-००
३९. दैवम्-पुरुषकारवार्तिकोपेतम् — ८-००

४०. काशकृत्स्न-व्याकरणम्— ४-००
४१. काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्— १०-००
४२. वामनीय लिङ्गानुशासन—नया संस्करण ६-००
४३. लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि— २-००
४४ शब्दरूपावली—(विना रटे स्मरण योग्य) १-००
४५. भागवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति ४-००

आध्यात्मिक

४६. ध्यानयोगप्रकाश—स्वामी लक्ष्मणानन्द ८-००
४७. अनासक्ति-योग—मोक्ष की पगडण्डी—१२-००
४८. आर्याभिविनय—ऋ० द० सजिल्द ४-००
४९. Aryabhivinaya English Translation and notes स्वामी भूमानन्द सजिल्द ५-००
५०. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्) ४ भाग। प्रति भाग १२-५०, सैट ५०-००
५१. वैदिक-ईश्वरोपासना—ऋ० द० ०-८०
५२ श्रीमद्भगवद् गीता भाष्यम्—श्री पं० तुलसी राम स्वामी कृत। चिरकाल से अप्राप्य। गीता की सरल सुबोध व्याख्या। ५-००
५३. हंसगीता—महाभारत-अन्तर्गत ०-५०
५४. अगम्य पन्थ के यात्री को आत्मदर्शन—२-००

इतिहास-नीतिशास्त्र

५५. वाल्मीकि-रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित)—युद्ध काण्ड मात्र १०-५०
५६. सत्याग्रहनीतिकाव्य—भाषानुवादसहित ५-००
५७. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास नया संस्करण तीन भाग। पूरा सैट ६०-००
५८. संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि— १०-००

५९. विरजानन्द-चरित्र — नया परिवर्धित परि सं
६०. ऋषि दयानन्द सरस्व स्वकथित आत्म-चरि
६१. ऋषि दयानन्द और साहित्य को देन—

दर्शन-आ

६२. मीमांसा-शाबरभाष्य मीमांसक कृत। प्रथम भाग ३०-००, राज सं० ४०-०० तृतीय भाग ५०-००
६३. परमाणुदर्शनम्— ५-००, सजिल्द ६-०
६४. षट्कर्मशास्त्रम्— ८-००, सजिल्द ९-०
६५. नाड़ी-तत्त्व-दर्शनम्—(हिन्दी सहित) १५-००

प्रकीर्ण

६६. सत्यार्थप्रकाश—अजिल्द ५-००, सजिल्द ६-५०
आर्यसमाज-शताब्दी संस्क०—(बड़ा) २४-००
" " (राज-संस्करण) ३०-००
६७. व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्द १-००
६८. भागवत-खण्डनम्—" " ०-५०
६९. आर्योद्देश्यरत्नमाल—" " ०-२५
७०. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह—१४ ग्रन्थ २५-००
७१. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—नया परिवर्धित सं०। प्रथम भाग ३५-०० २-३ छप रहे
७२. अष्टोत्तरशतनाममालिका—व्याख्या सहित ५-०
७३. प्यारा ऋषि—श्री आनन्द स्वामी १-००
७४. आर्य-मन्तव्य-प्रकाश—श्री पं० आर्यमुनि जी प्रथम भाग ४-००, द्वितीय भाग ५-००
७५. Vegetarianism Vs : Meat-Eating ०-५०
७६. अमीरसुधा—भक्त अमीचन्द ०-७५

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)
२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—
गुरु बाजार, अमृतसर ❀ ५१ सुतारचाल, बम्बई ❀ नई सड़क, देहली ❀ बिरहाना रोड, कानपुर
३. आर्यसमाज मन्दिर, आर्यसमाज मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-५
४. डा० शंकरसिंह आर्य, वैदिक साहित्य भण्डार, आर्यसमाज: मल्हारगंज, इन्दौर।
५. श्री हरिकिशन [illegible], सी० सी० कालोनी, दिल्ली।